जीवनका काव्य

[हमारे त्योहारोंका परिमल]

लेखक

काका कालेलकर

अनुवादक

श्रीपाद जोशी

अुत्सवप्रियाः खलु मनुष्याः।



नवजीवन प्रकाशन मन्दिर

अहमदाबाद

मुद्रक और प्रकाशक
जीवणजी डाह्याभाओी देसाओी
नवजीवन मुद्रणालय, अहमदाबाद – ९

सर्वाधिकार नवजीवन प्रकाशन संस्थाके अधीन

पहली बार — २०००, १९४७
पुनर्मुद्रण — २०००

दो रुपये

मार्च, १९५३

निवेदन

सत्याग्रह आश्रमकी पाठशालाका अेक नियम यह था कि जब वहाँका विद्यार्थी-मण्डल किसी अुत्सवके लिअे अपना कोअी अच्छा-सा कार्यक्रम तैयार करके शिक्षकोंके पास पहुँचे, तभी अुस दिनका अुत्सव मनानेकी अिजाज़त दी जाय। माना यह जाता था कि बिना किसी कार्यक्रमके सुस्ती और बेकारीमें ही दिन बितानेको अुत्सव कहा जाता हो, तो शिक्षाकी दृष्टिसे बेहतर यह है कि वैसा अुत्सव मनाया ही न जाय।

अुत्सव-प्रिय विद्यार्थी कुछ कार्यक्रम तो तैयार करते ही थे। अगर कार्यक्रम तैयार करनेके आलस्यके कारण अुन्हें अुत्सव खोना पड़े, तो वह अुनकी युवक शोधक बुद्धिके लिअे लांछनरूप ही न हो! लेकिन अगर मनचाहे अुत्सव मनाने हों, तो कार्यक्रमोंमें नवीनता और विविधता भी होनी चाहिये। अिसलिअे अिस पर अपनी बुद्धि खर्चकर चुकनेके बाद विद्यार्थी शिक्षकोंसे सुझाव माँग-माँगकर अुन्हें परेशान किया करते। शिक्षक भी अुत्सव द्वारा अपनी शिक्षण-कलाका विकास करनेके लिअे अुत्सुक थे ही; फिर, धार्मिक और सामाजिक शिक्षाके लिअे अुत्सवसे बढ़कर सुलभ और सरस साधन दूसरा क्या हो सकता था?

दोनों तरफ़की अिस भूखका विचार करके शिक्षक-मंडलने यह निश्चय किया कि अुत्सवके समारोह, अुसके कार्यक्रमकी दिशा, अुस पर खर्च किया जानेवाला समय, अुसका सामाजिक और धार्मिक महत्त्व, वगैरा कअी तरहके प्रश्नों पर विचार करके अेक छोटा मार्गदर्शक सूचनापत्र तैयार किया जाय। और, शिक्षक-मंडलने यह काम श्री

काकासाहब कालेलकरको सौंपा । 'जीवनके काव्य' का यह निवेदन अुसीका परिणाम है ।

गुजरातीमें अिस पुस्तकके पहले दो संस्करणोंका आशासे अधिक स्वागत हुआ । अिससे पता चलता है कि हमारे धार्मिक जीवनकी जड़ें जितनी हम मानते हैं, अुससे ज्यादा गहरी हैं । यदि आजकलकी समीक्षक दृष्टिके साथ समाजमें पुराना धार्मिक वाचन अेक सामाजिक रिवाज या संस्थाके रूपमें रूढ़ होता, तो अुससे समाजको क़ीमती लोक-शिक्षण मिला होता । जब तक दूसरी तरहसे अिस कमीकी पूर्ति न हो, तब तक अिन त्योहारोंके बारेमें अलग-अलग अवसरों पर श्री काकासाहबने जो लेख या टिप्पणियाँ लिखी हैं, अुनका संग्रह कर देनेसे समाजको अपने सामाजिक और धार्मिक जीवनको फिरसे सजीवन करनेमें थोड़ा मार्गदर्शन अवश्य प्राप्त होगा, अिस विचारसे अैसे लेखोंका संग्रह अिस पुस्तकमें किया गया है ।

आजके ज़मानेमें निरी श्रद्धासे काम नहीं चलता, और न कोरी तार्किक अश्रद्धासे ही समाजकी आत्माको सन्तोष होता है । लोक-हृदयको पौष्टिक आहार तो अैसे ही लेखोंसे प्राप्त हो सकता है, जिनमें अिन दोनोंका समन्वय किया गया हो ।

यहाँ अिस बातकी कोअी कल्पना नहीं की गअी है कि पिछले सौ-दोसौ वर्षोंमें जिस मुग्ध रीतिसे हमारा धार्मिक जीवन निभता आया है, अुसका वही ढंग हमेशा बना रहे । हमें अपने युगको अपनी व्यापक आवश्यकताओंके अनुसार नअी-नअी कृतियोंसे सजाना होगा । आशा है, अिसके लिअे आवश्यक दृष्टिका निर्माण करनेमें ये लेख सहायक होंगे और धार्मिकताका वातावरण अुत्पन्न करेंगे ।

३१–५–'३९ — प्रकाशक

विषय-सूची

छोटे त्योहार

जीवनका काव्य

१

जीवित त्यौहार

भेड़ियेके समान खाना, बिल्लीके समान जँभाना और अजगरके समान पड़े रहना ही कहीं कहीं त्यौहारका प्रमुख लक्षण हो गया है। अेक त्यौहारके मानी हैं कमसे कम तीन दिनकी खराबी। अिस हालतमें से त्यौहारोंको बचाना हमारा प्रधान कर्तव्य है।

हमने अिस दृष्टिसे भी विचार किया कि 'त्यौहारोंको निकाल ही दिया जाय तो क्या हो?' हर रोज़की आवश्यक और स्फूर्तिदायक प्रवृत्तिको शिथिल करना, अैसे कपड़े पहनना जो अपनी हैसियतसे बाहरके हों, तरह-तरहके मिष्टान्न खाकर अिन्द्रियोंको लालचकी लत लगाना, और ताश, शतरंज, चौसर आदि फ़िज़ूलके बैठे-खेलोंमें वक़्तको बरबाद करनेमें अेक-दूसरेको अुत्तेजन देना — अितना ही अगर त्यौहारोंका अर्थ होता हो, तो अुन्हें निकाल देना ही ठीक है।

लेकिन हमारी कल्पनाके अनुसार त्यौहारों और अुत्सवोंका जीवनमें अेक विशिष्ट और महत्त्वका स्थान है। त्यौहारोंके ज़रिये ही हम संस्कृतिके कअी अंगोंकी अच्छी तरह रक्षा और विकास कर सकते हैं। विशिष्ट प्रसंगों और अुनके महत्त्वोंको याद रख सकते हैं। ऋतुओंके परिवर्तनके अनुसार जीवनमें विशिष्ट परिवर्तन यथासमय संकल्पपूर्वक शुरू कर सकते हैं। और सामाजिक जीवनमें परस्पर सहकारके साथ ही अैक्यको भी ला सकते हैं।

कितनी ही वृत्तियाँ मनुष्य-हृदयके लिअे अितनी स्वाभाविक हैं कि अगर अुनका नियमन न किया जाय, तो वे अमर्याद बढ़कर सारी ज़िन्दगीको बरबाद कर देती हैं। अुनका सीधा विरोध या बाह्य निरोध करना संभव अथवा सुरक्षित नहीं होता। दबावकी वजहसे वे विकृत

बनती हैं और चोरीसे या अस्वाभाविक रीतिसे अपनी तृप्तिकी तलाशमें रहती हैं। अिनमें से कअी वृत्तियाँ मर्यादित स्वरूपमें क्षम्य ही नहीं, बल्कि हितकारक भी होती हैं। अुनका नाश करनेके बजाय अगर अुन्हें विशुद्ध बनाकर अुन्नतिके रास्तेकी ओर मोड़ दिया जाय, तो सम्पूर्ण शिक्षामें अुससे काफ़ी मदद पहुँचती है। यह कार्य कभी-कभी सामाजिक रीतिसे ही भली-भाँति सधता है। अिसमें अिन त्यौहारोंसे खासी मदद मिल सकती है।

त्यौहारोंके बारेमें हमने यह दृष्टिबिन्दु रखा ह कि त्यौहारका दिन चाहे जिस तरह समय अुड़ाने या आराम करनेका छुट्टीका दिन नहीं है। त्यौहार और अुत्सव दोनों शिक्षाके नैमित्तिक और क़ीमती अंग हैं। और अिसीलिअे जहाँ तक हो सके, पुरानी प्रथाको ध्यानमें रखकर त्यौहारोंके कार्यक्रम अिस तरहके सुझाये गये हैं कि अुस दिनका वैशिष्टच तो भली-भाँति समझमें आ ही जाय और फिर भी प्रत्येक कार्यक्रम अितना हलका रहे कि त्यौहारकी थकानको दूर करनेके लिअे अुसके बादका दिन खराब न करना पड़े। अैसी अनिष्ट स्थिति नहीं आनी चाहिये कि रात तो जागरणमें बिता दी और अगला दिन दिवानिद्रामें।

कुछ त्यौहार ही अैसे हैं कि जो महत्त्वके होते हुअे भी अुनके पीछे कोअी खास कार्यक्रम नहीं हो सकता। हमने अुन्हें आधे दिनका त्यौहार माना है।

अिससे भी आगे जाकर हमने कअी प्रसंग अैसे माने हैं कि जो आज अुत्सवों या त्यौहारोंमें नहीं गिने जाते; फिर भी जिनका महत्त्व विद्यार्थियोंके सामने वर्षानुवर्ष रखना ही चाहिये। अैसे प्रसंगोंके लिअे दिनमें अगर अेकाध घंटा दे दिया जाय तो काफ़ी है। हमारी सिफ़ारिश है कि चालीस मिनट, पौन घंटा या अेक घंटा जिस प्रकारका समय विभाग होगा, वैसा अेक विभाग अैसे प्रसंगोंके लिअे दिया जाय।

अुत्साही संस्थायें हर साल नये-नये त्यौहार खोज सकेंगी और अुससे त्यौहारोंकी बड़ी संख्यामें और भी वृद्धि कर सकेंगी।

लेकिन अुसमें अगर अुचित संयम न हो, तो अल्पजीवी क्षुद्र त्यौहारोंके बढ़ जानेकी बहुत आशंका है। कअी त्यौहार अैसे हैं जिन्हें चाहिये कि वे जीवनधर्मका अनुसरण करके विस्मृतिके गर्भमें लुप्त हो जायँ और नये त्यौहारोंके लिअे जगह खाली कर दें। त्यौहार तो मानव-जीवनके लिअे हैं। अिसलिअे मानव-जीवनके साथ अुनमें परिवर्तन होना ही चाहिये।

कुछ त्यौहार महावृक्षकी तरह सैकड़ों या हज़ारों बरस जीवित रहते हैं। कुछ सामान्य वनस्पतिकी तरह थोड़े समयके लिअे जीवित रहकर अपना कार्य समाप्त करते हैं। पुराणप्रिय सनातन धर्ममें जो कअी दीर्घजीवी त्यौहार हैं, अुनकी क़द्र हमारी योजनामें की हुअी दिखाअी देगी। अुनमें कअी नये त्यौहार मिलाये गये हैं और वह भी संयमपूर्वक। हमारी न यह अपेक्षा है और न अिच्छा ही कि अिस नअी वृद्धिके सभी त्यौहार दीर्घजीवी हो जायँ! आज अुनका महत्त्व है। जब तक अुनका यह महत्त्व क़ायम रहेगा, तब तक वे जीवित रहें तो काफ़ी है।

श्रीविष्णुकी आज्ञासे प्रवर्तित अितिहासक्रमके कारण हिन्दुस्तानमें दुनियाके क़रीब-क़रीब सभी धर्म अिकट्ठा हो गये हैं। हिन्दमाताकी अमृतदृष्टिके कारण ये सब धर्म अेक ही कुटुम्बके बालकोंकी तरह यहाँ रहेंगे। अिस कुटुम्बधर्मका स्वीकार करके हरअेक धर्म दूसरे धर्मोंके त्यौहारोंको अपनी-अपनी मान्यताके अनुसार अपने जीवनमें स्थान दे यह अुचित है। अिस तत्त्वको ध्यानमें रखकर हमने अपनी योजनामें कअी त्यौहार बढ़ा दिये हैं। अिस तत्त्वका स्वीकार करने पर भी हमने अुसका नियम नहीं बनाया है। यही अुचित क्रम होगा कि अपने जीवनमें जो-जो चीज़ स्वाभाविक रूपसे दाख़िल हो जाय अुसका विचारपूर्वक स्वागत किया जाय। हमारी अिस योजनामें पारसी त्यौहारोंको स्थान नहीं दिया गया है। अिसका कारण यह नहीं है कि हम अिस धर्मका कम महत्त्व समझते हैं, बल्कि यह है कि हमारी संस्थामें (आश्रममें) अभी तक यह सहकार नहीं बढ़ पाया है।

हम दृढ़ताके साथ यह मानते हैं कि हिन्दुस्तानमें बसे हुअे सभी धर्मोंके पीछे हिन्दमाताका अेक सर्वसंग्राहक विश्वप्रेमी प्रेमधर्म है। अिस अुदार और सर्वसहिष्णु धर्मका प्रभाव जैसे-जैसे हरअेक धर्मके अूपर पड़ता जायगा, वैसे-वैसे सब धर्मोंमें कौटुम्बिक भाव बढ़ता जायगा। हमारी योजनामें अिस बातको स्वीकार किया गया है। फिर भी हमने अैसी कोशिश नहीं की है कि जानबूझकर भविष्यके प्रवाहको किसी विशिष्ट मार्गमें ही मोड़ दिया जाय। पुरानी चीज़ोंमें से जो चीज़ें सार्वभौम धर्मतत्त्वकी विरोधी और देशकालके लिअे अनुचित मालूम हुअीं अुन्हें छोड़ दिया है। जो निर्दोष होते हुअे भी क्षीणसत्त्व और कालग्रस्त हो गअी हैं, अुन्हें कृत्रिम रीतिसे टिकानेका प्रयत्न हमने नहीं किया है। हमारी योजनामें भविष्यकालकी तैयारीकी दृष्टि है। फिर भी अुसका ज़्यादा असर योजना पर नहीं पड़ने दिया है। क्योंकि भविष्यकालकी दिशाका निश्चित दर्शन होनेमें अभी कुछ देर है। वर्तमानकालकी आकांक्षायें और भूतकालसे मिली हुअी नक़द विरासतका ही हमने विशेष विचार किया है।

निरुत्साही और निर्जीव शिक्षा-विभागकी शिक्षणप्रथा सब जगह फैली हुअी है। अिसलिअे स्कूलोंकी तरफ़से त्यौहार मनानेका कार्य मुश्किल है, यह समझकर और निरुद्यमी समाजके अुद्यमी होनेके प्रयत्नमें त्यौहार बाधारूप न हो जायँ, अिसलिअे हरअेक त्यौहारका कार्यक्रम बहुत ही हलका रखा है। फिर भी अुनमें सृजनात्मक अथवा विधायक शिक्षाके विकासका स्पष्ट बीजारोपण है। शालीन (शालेय) जीवन जैसे-जैसे समृद्ध होता जायगा, वैसे-वैसे अिस बीजका विकास आप ही आप होता जायगा। लेकिन यह सब शिक्षकोंकी प्रतिभा और विद्यार्थियोंके अुत्साह पर निर्भर है।

कुछ नहीं तो हमारे शिक्षक, विद्यार्थी और माँबाप, सबको प्रसन्न परिस्थितिमें अेकसाथ ले आनेके प्रसंगोंके रूपमें तो ये त्यौहार महत्त्वके हैं ही। समाज-सुस्थितिका चिन्तन करनेवाले चतुर शिक्षक अैसे अुत्सवोंसे

लाभ अुठाकर अनायास सामाजिक प्रश्नोंके बारेमें लोकमानसको जाग्रत करेंगे और अिस तरह लोकशिक्षणका छोटा-सा प्रारम्भ करेंगे। दूसरे, हमारे बढ़ते हुअे सामाजिक जीवनमें अेक ही दिशामें, लेकिन अलग-अलग मार्गोंसे जानेवाली संस्थाओंका परस्पर परिचय बढ़ानेमें भी हमारे अुत्सव काफ़ी हिस्सा ले सकते हैं। स्नेह-सम्मेलनोंकी अपेक्षा समाजमान्य अुत्सवोंके प्रसंग ही अिस प्रकारका परिचय नम्रताके वायुमंडलमें अधिक स्वाभाविक रीतिसे करा सकते हैं। सारांश, विद्यार्थियोंका सर्वांगीण विकास हो, हृदयके अुच्च भाव विशिष्ट रीतिसे विकसित हों, और अुनके द्वारा मुख्यतः धार्मिक और सामान्यतया सामाजिक शिक्षाका आह्लाददायक साधन मिले, यही अुद्देश्य हमने अपने सामने रखा है।

२

अुत्सवके अुपवास

अेक मित्र पूछते हैं, 'जन्माष्टमी या रामनवमी जैसे दिनोंको तो असलमें अुत्सव और आनन्दके दिन मानना चाहिये। अुस दिन मिष्टान्न भोजन करनेके बदले अुपवास करनेकी प्रथा क्यों पड़ गअी होगी?'

प्रश्न पूछनेवाले तो मानो अैसा ही मानते मालूम होते हैं कि अुपवास दुःख या शोकके अवसर पर ही किया जाय। अुनसे हम पूछते हैं कि अगर अैसा ही होता, तो रूढ़िचुस्त लोग अितने बड़े-बड़े मृतभोज क्यों करते होंगे? अुपवासको हमने दुःख या संकटका चिह्न नहीं बनाया है। बात सही है कि जब चित्तमें ग्लानि हो, दुःखसे दबे हुअे हों, तो अैसे अवसर पर आरोग्यके नियमके अनुसार न खाना ही अुचित है। हृदयकी स्वाभाविक प्रेरणा भी यही सुझाती है। आरोग्यके नियमकी दृष्टिसे देखा जाय, तो जिस वक्त दिलको

बहुत खुशी हुअी हो अुस वक़्त भी हमें कुछ नहीं खाना चाहिये। मिष्टान्न भोजन या अतिआहार तो करना ही नहीं चाहिये। दुःखमें जिस तरह पाचनशक्ति क्षीण हुअी होती है, अुसी तरह आनन्दकी अुत्तेजनामें और क्षोभमें भी अैसी ही हालत होती है। अिसलिअे किसी भी कारणवश चित्तका स्वास्थ्य नष्ट हो गया हो, तो अुस समय अनशन या अल्पाहार ही अुचित है।

जन्माष्टमी जैसे अुत्सवके अवसर पर हम जो अुपवास करते हैं अुसका अुद्देश्य अिससे भी विशेष है। जन्माष्टमी कृष्णजन्मका समारोह नहीं, बल्कि कृष्णजन्मकी साधना है। द्वापर या त्रेतायुगमें कृष्णजन्म हुआ अुससे हमें क्या मतलब? जब हमारे हृदयमें कृष्णजन्म होगा अुसी समय हम पुनीत होंगे।

हमारे बचपनमें अिस प्रकारके अुपवास करनेका हमें अधिकार न था। अुपवास तो घरके बड़े-बूढ़े लोग ही करते थे। हम तो लड़के थे। दोनों शाम डटकर भोजन करके पूजामें मदद करना ही हमारा धर्म था। हालत यह थी कि घरके बड़े लोगोंको अुपवास करते देख हम भी अुपवास करनेका हठ करते और रो-धोकर और कभी मार खाकर भी न खानेका अधिकार प्राप्त करते।

सच देखा जाय तो अुपवास अेक साधना है। जिस तरह नहानेसे पवित्रताका अनुभव होता है, और मौन धारण करनेसे आध्यात्मिक वातावरण प्राप्त किया जाता है, अुसी तरह अुपवाससे हम अन्तर्मुख होते हैं; और सात्त्विक वृत्तिको भी विकसित कर सकते हैं। हरअेक भोजनके साथ शरीरमें अेक प्रकारकी जड़ता तो आ ही जाती है। अुसे टालकर शरीरका बोझ हलका करनेसे ध्यान या अुपासनाके लिअे अनुकूल परिस्थिति पैदा होती है। अुपनयन, अुपनिषद्, अुपवास और अुपासना ये चारों शब्द अेकसे हैं। जिस तरह ब्रह्मचर्यका मूल अर्थ वीर्यरक्षा नहीं है, अुसी तरह अुपवासका मूल अर्थ भी अनशन नहीं है। ब्रह्मचर्यके मानी हैं, अीश्वर-प्राप्तिके लिअे वेदशास्त्रके अध्ययनमें तन्मय

हो जाना। चूँकि यह कार्य वीर्यरक्षासे ही संभव है, अिसलिअे वीर्य-रक्षाको ही खास करके ब्रह्मचर्य नाम दिया गया। अुपवासमें भी यही भाव है। अुपवास यानी परमात्माके पास रहना, अुसके सान्निध्यका अनुभव करना। जो व्यक्ति अिन्द्रियोंकी तृप्ति करनेमें लगा रहता है, वह अीश्वरका नाम लेते हुअे भी अीश्वरके सान्निध्यका अनुभव नहीं कर सकता। आहार-मात्रका त्याग करके अथवा शरीर प्रकृतिके साम्यकी रक्षा करनेके लिअे अल्प मात्रामें सात्विक आहार करके परमात्माका स्मरण करना, अुसकी भक्ति करना, अुसकी निकटताका अनुभव करना — अिसका नाम है अुपवास। यही अुपासना है। यह देखकर कि अुपासकके लिअे आहार कम करनेके अलावा दूसरा मार्ग ही नहीं है, धार्मिक साधनाके लिअे किये हुअे अन्नत्यागको ही अुपवास कहने लगे। कृष्णजन्म या रामजन्मके दिन यह आध्यात्मिकता, यह साधकवृत्ति, लानेके लिअे अुपवास रखा गया है।

३
जयन्ती

अीश्वरकी सृष्टिमें असंख्य मनुष्य पैदा होते हैं। अुन सबकी जयन्ती हम नहीं मनाते। जिनके जीवन-रहस्यका अपने हृदयमें पुण्य-पावन अुदय हुआ हो अुन्हींकी जयन्ती हम मनाते हैं। करोड़ों लोगोंका जीवन तो आये दिनको किसी तरह काटनेमें ही बीत जाता है। मनुष्यको परेशान करनेवाले, अुसे पामर बनानेवाले, कअी शत्रु हैं। अुनके विरुद्ध लड़नेवालोंकी संख्या अत्यन्त अल्प होती है। शत्रुको किसी तरह टाल देना अथवा कायरताके साथ अुससे समझौता करना और युद्धकी तकलीफ़से जान बचाना — यही सामान्य लोगोंका जीवनक्रम होता है। लेकिन अिस तरीकेसे शत्रु नहीं टलता। वह तो बार-बार सामने खड़ा रहता ही है। और हरअेक बार समझौतेकी अधिकाधिक कीमत माँगता

जाता है। यह क़ीमत केवल पैसेसे नहीं चुकाअी जा सकती। वह तो प्राण, तेजस्विता और स्वतंत्रतासे चुकानी पड़ती है। हरअेक मनुष्यके दिलमें अिन तीनों चीज़ोंकी चाह तो हुआ ही करती है, लेकिन सिरके बदलेमें तेजस्विता और स्वतंत्रताको सम्हालने या प्राप्त करनेका प्राण (जीवट) जिसके अन्दर हो, अुसीको वीरपुरुष कहा जाता है, अुसीको विजयी कहते हैं। मनुष्य-जातिके शत्रु पर जिसने विजय पाअी है, अुसीकी जयन्ती हम मनाते हैं। जयन्तीका अर्थ ही यह है।

लेकिन हम जयन्ती मनाते ही किस लिअे हैं?

दो क़िस्मके लोग जयन्तियाँ मनाते हैं: अेक वे हैं, जो वीर पुरुषोंसे प्रेरणा पानेकी अिच्छा रखते हैं, और दूसरे वे, जो अुनसे रक्षा चाहते हैं। अेक वर्ग वीरोंका अुपासक होता है और दूसरा अुनका आश्रित। पहले वर्गको वीरोंके वीरकर्मोंसे प्रेरणा, अुत्साह और प्राण मिलते हैं। वीरोंकी अुपासना करके वे स्वयं वीर बन जाते हैं। दूसरा वर्ग पामर होता है। ये लोग हमेशा भयभीत दशामें रहते हैं; त्यागसे डरते हैं। कहते हैं, 'अिस भयभीत दशासे जो हमें मुक्त करेगा, हमें आश्वासन देगा, वही हमारा स्वामी है। अुसीका हम जयजयकार करेंगे, अुसकी प्रसन्नता प्राप्त करेंगे, और अुसके वीरकर्मके आश्रयमें हम सुखी रहेंगे। वह अगर चला जाय, तो अीश्वरसे हम प्रार्थना करेंगे कि हे प्रभो! हमारे लिअे दूसरा कोअी नाथ भेज दे! हमें सनाथ कर!'

अनाथ लोग जब वीरपूजा करते हैं, तो अुस पूजाके पीछे अिसी प्रकारकी अनाथोंकी याचना-वृत्ति रहती है।

बिल्लीका बच्चा कहता है, 'अय मेरी माँ, आ और मुझे अुठाकर किसी सुरक्षित स्थानमें रख!' पक्षियोंके बच्चे कहते हैं, 'हमारी माँ अपने पंखोंको फड़फड़ाकर बताये तो हम भी वैसा ही करेंगे।' अिस प्रकार जयन्तियाँ दो तरहसे मनाअी जाती हैं।

हिन्दुस्तानमें जब तक अनाथवृत्तिसे जयन्तियाँ चलेंगी, तब तक देशमें पुरुषार्थ नहीं आनेका। जैसी श्रद्धा वैसा फल! 'विश्वंभर

प्रभुके मनमें जब दया स्फुरेगी, तब वह हमें अलौकिक पुरुष दे देगा, और हम अुसे निचोड़कर — बाज़ारमें बेचकर — सुखी हो जायेंगे।' अिस प्रकारकी वृत्तिमें जितनी सलामती है, अुतना ही अधःपतन भी है। पुण्यपुरुषोंके बलिदानसे अिस लोकका वैभव प्राप्त करनेमें पुण्यक्षय है; प्राणक्षय है। पुण्यपुरुषके बलिदानसे जब हममें भी बलिदानकी वृत्ति जाग्रत होगी, तभी यह समझा जायगा कि हमने अुसकी सच्ची अुपासना की है। और तभी हमारा सच्चा अुत्कर्ष होगा।

आज हमें अीश्वरसे अैसी प्रार्थना नहीं करनी चाहिये कि 'हम तो पामर ही रहेंगे। तुम अवतार धारण करके हमारा दुःख-निवारण करो।' हमें परमात्मासे तो यह कहना चाहिये कि, 'हे जनार्दन! हमारे हृदयमें ही तुम्हारा अवतार हो जाय। वानरोंको भी वीर पुरुष बनानेवाले अवतार हमें चाहियें। जो हमें स्वावलम्बनकी शिक्षा देंगे, वैसे अवतार हमें चाहियें। क्योंकि स्वावलम्बनमें हमारा सदैवका अुद्धार है। परावलम्बनमें हमारी अवनति है, हमारा अपमान है।'

स्वावलम्बनकी वीरवृत्तिके साथ महात्माओंकी जयन्ती मनानेमें हम अुनके माहात्म्यके अधिकारी बन जाते हैं। परावलम्बी पामर वृत्तिसे जयन्ती मनानेमें हम महात्माओंकी दयाके पात्र हो जाते हैं।

और दयाके मानी हैं तिरस्कारका सज्जन स्वरूप।

३।९

४

त्यौहारोंकी सूची

चैत			
	सुदी १	ध्वजारोपण	अेक समय
	" ९	रामनवमी	१ दिन
	" १३	महावीर जयन्ती	" "
	" १५	हनुमान जयन्ती	" "
बैसाख			
	सुदी ३	अक्षय तृतीया	आधा दिन
	" १०	शंकर जयन्ती	" "
	" १५	बोधि जयन्ती	" "
जेठ			
	सुदी १५	वट सावित्री	१ दिन
असाढ़			
	सुदी ११	महाअेकादशी	आधा दिन
	" १५	गुरु पूर्णिमा	अेक समय
सावन			
	सुदी ५	नागपंचमी	१ दिन
	सर्वसोमवार	श्रावण सोमवार	आधा "
	सुदी १५	रक्षा-बंधन	१ दिन
	बदी ८	जन्माष्टमी	" "
भादों			
	सुदी ४	गणेशचतुर्थी	१ दिन
	" ५	ऋषिपंचमी और पर्युषण	" "
	बदी १२	चरखा द्वादशी	१ "

कुआर

सुदी	८-९	सरस्वती पूजन	२ दिन
”	१०	दशहरा	१ ”
”	१५	शरत् पूर्णिमा	१ ”
बदी	१३	धनतेरस	१ ”
”	१४	नरकचतुर्दशी	१ ”
”	३०	दीवाली	१ ”

कार्त्तिक

सुदी	१	विक्रमवर्षारंभ	१ ”
”	२	भैयादूज	१ ”
”	११	महाअेकादशी	आधा ”

अगहन

सुदी	११	गीताजयन्ती	” ”
”	१५	दत्तजयन्ती	१ ”

पूस

		मकरसंक्रान्ति	१ ”

माघ

सुदी	५	वसंतपंचमी	१ ”
”	८	भीष्माष्टमी	अेक समय
बदी	१४	महाशिवरात्रि	आधा दिन

फागुन

सुदी	१५	होली	१ दिन
बदी	३	शिवाजी जयन्ती	१ ”

अन्यधर्मीय त्यौहार :

दिसं०	२५	बड़ा दिन	१ ”
		मुहर्रम	१ ”
		बकरीद	१ ”

राष्ट्रीय त्यौहार :

अप्रैल ६-१३	राष्ट्रीय सप्ताह		८ दिन
फरवरी १९	गोखले	पुण्यतिथि	अेक समय
जून १६	देशबन्धु	"	"
जून ३०	दादाभाओ नौरोजी	"	"
अगस्त १	तिलक	"	१ दिन

संत जयन्ती :

चोखामेला	अेक समय
जनाबाओ	"
नरसिंह महेता	"
मीरा	"
अखो	"

५

ध्वजारोपण

[अेक पत्र]

(चैत सुदी १)

आज हमारा वर्षारंभ है। श्री रामचन्द्रके ज़मानेमें वानरराज बालिके ज़ुल्मसे दक्षिणकी भूमिकी मुक्तिके आनन्दमें घर-घर अुत्सव मनाकर लोगोंने ध्वजायें खड़ी की थीं। यह रिवाज आज तक दक्षिणमें चला आ रहा है। अिस वर्षारम्भको महाराष्ट्रमें 'गुड़ी पाड़वा' (गुड़ी = ध्वज, पाड़वा = पड़वा) कहते हैं।

वर्षके प्रारम्भका दिन नये संकल्पका दिन है। क्योंकि वर्षारंभका दिन अेक तरहका वार्षिक सुप्रभात है। सवेरे जिस तरह थकान दूर होकर नअी स्फूर्ति आ जाती है, अुसी तरह वर्षारंभके दिन जीवनका नया पन्ना खोलना होता है। 'अब तक जो हुआ सो हुआ, आजसे

नया प्रारम्भ'—अिस तरह अपनेको समझाकर मनुष्य नया संकल्प करता है। नया संकल्प करनेसे पहले सिंहावलोकन करना भी मनुष्यका स्वभाव है। सिंहावलोकन यानी सिंहकी तरह पीछे मुड़कर देखना। कहते हैं कि फलांग मारता हुआ सिंह बीच-बीचमें रुककर निरीक्षण करता है कि मैं कहाँ तक आया हूँ, कितना रास्ता तय कर चुका हूँ। प्रगतिशील मनुष्यके लिअे भी यह आदत कामकी है। अब तक हमने कौन-कौनसे संकल्प किये, अुनमें से कितने पूरे किये, कितनोंमें सुधार करने पड़े, और कितनोंको छोड़ देना पड़ा, — अिस सबका निष्कर्ष निकालनेके बाद ही नया संकल्प किया जा सकता है। पहले-पहले अुत्साह या जोशमें आकर मनुष्य अपना संकल्प कह डालता है। मानो कथनी ही करनी है। लेकिन यह भी है कि बोल देनेसे बुद्धि दृढ़ होती है। मित्रमंडलकी सहानुभूतिके कारण संकल्प पूरा करनेमें अनुकूलता अुत्पन्न होती है। कहते-कहते विचार स्पष्ट हो जाते हैं। कार्यमें अेकाग्रता आ जाती है। और अपने लिअे अपनी ही वाणीका बंधन तैयार हो जाता है। यह सब होते हुअे भी बोलनेमें संयम होना चाहिये, नहीं तो जैसा कि पुराने लोग कहते हैं, बोलनेसे भाप निकल जाती है, ध्यान ढीला पड़ जाता है, और संकल्पकी आयु वाणी तक ही सीमित रह जाती है। अिसी विचारसे निम्नलिखित श्लोक बनाया गया है:

मनसा चिन्तितं कार्यं वचसा न प्रकाशयेत्।
अन्यलक्षितकार्यस्य यतः सिद्धिर्न जायते॥

(जिस कार्यका हम मनमें चिन्तन करते हैं, अुसे वाणीसे दूसरों पर प्रगट नहीं करना चाहिये; क्योंकि दूसरोंका ध्यान खींचनेवाला कार्य सिद्ध नहीं होता।)

अिस श्लोकका रचयिता कोअी व्यवहारी मनुष्य होना चाहिये। अुसकी दलील हमारे गले भले ही न अुतरे, लेकिन अुसकी दृष्टि ज़रूर सोचने लायक है।

वर्षारंभके दिन संकल्प-सिद्धिके लिअे कोअी व्रत लिया जाता है। सबसे अुत्तम व्रत है चित्त-रक्षा-व्रत।

चित्तरक्षाव्रतं मुक्त्वा बहुभिः किं मम व्रतैः?

(अेक चित्त रक्षाव्रतको छोड़कर और बहुतेरे व्रतोंसे मुझे क्या मतलब?)

फिर भी अिस महाव्रतकी मददके लिअे अेकाध छोटा-सा व्रत हम सब ले सकते हैं। अुसके लिअे नये वर्षके दिनकी या किसी दूसरे मुहूर्तकी आवश्यकता नहीं है। अैसे ही अेक व्रतकी यहाँ कुछ चर्चा करना चाहता हूँ।

अगर अपने अनुभवका हम निरीक्षण करें, तो हमें यह दिखाअी देगा कि बहुत बार वस्तुस्थितिको अुलटा समझकर हमने औरोंके साथ अन्याय किया है। जितनी बार अपने किये हुअे अन्यायका हमें ध्यान आ जाय, अुतनी बार अगर दूसरे आदमियोंसे क्षमा माँगने जायें, तो हमें मालूम हो जायगा कि ग़लतफ़हमी कर लेनेकी कितनी शक्ति हममें है। पद-पद पर माफ़ी माँगनेके अितने मौक़े आ जायेंगे कि हम खुद शरमायेंगे। अिस बातको छोड़ दिया जाय, तो भी दूसरा आदमी हमारी चंचल वृत्तिको देखकर अूब जायेगा। बार-बार माफ़ी माँगनेसे अपनी क़ीमत कम हो जानेकी जो आशंका रहती है अुसे दूर करें, तो भी माफ़ीकी क़ीमत घट जानेका डर तो रह ही जाता है। अब सवाल यह है कि माफ़ीकी क़ीमतका घट जाना ठीक होगा या आपसी ग़लतफ़हमीको चलने देना ठीक होगा? व्यवहारकुशल समाज माफ़ीकी विशुद्धताकी अपेक्षा प्रतिष्ठाकी स्थिरताको ही अधिक चाहता है। लेकिन अैसा करके समाजने क्या हासिल किया है?

जितनी ग़लतफ़हमियाँ हमारे ध्यानमें आअीं अुनकी यह बात हो गअी। लेकिन जहाँ हमें अपने मनमें लगता है कि फलानी बात निश्चित है, अिसमें ग़लतफ़हमीको अवसर ही नहीं, वहाँ भी कभी-कभी घोर ग़लतफ़हमी हो जाती है। अिसका क्या किया जाय?

अिसके लिअे अेक ही अुपाय है कि किसीके बारेमें राय क़ायम करनेकी अुतावली नहीं करनी चाहिये। दो हेतुओंके विकल्पकी जहाँ संभावना हो, वहाँ अच्छे हेतुकी ही कल्पना करनी चाहिये। मनुष्यसे अच्छा परिचय होते हुअे भी अुसका सिर्फ़ बाह्य स्वरूप ही हमारे सामने खुला हुआ रहता है। अंतरका परिचय पाना बहुत मुश्किल है। कअी लोग अपना अभ्यंतर खोल ही नहीं सकते। विचार या कल्पना व्यक्त करनेकी भाषा तो मनुष्यने थोड़ी-बहुत विकसित की है, लेकिन हृदयको व्यक्त करनेकी भाषा तो अभी तक विकसित ही नहीं हुअी है। अिसलिअे मनुष्य कहता है अेक और सुननेवाला समझता है कुछ और ही। सभी जगह यही चलता है। अितना ध्यान रहे तो भी बहुत है। जो लोग बहुत बोलते रहते हैं, बहुत बकवास करते हैं, जो बातूनी या विनोदप्रियकी हैसियतसे पहचाने जाते हैं, वे अन्दरसे कितने दुःखी होते हैं यह कोअी जानता ही नहीं। बहुभाषी मनुष्य बहुत बार अन्तःकरणसे अेकाकी होता है, अिसे अगर हम समझ जायँ तो भी बहुत है। न्याय करनेवाले हम होते कौन हैं?

अितना विचार करने पर भी दूसरे लोगोंके बारेमें कुछ तीखी राय हमारे मनमें रहेगी ही। अुस वक्त अगर हम यह देख सकें कि वही दोष हममें भी कितना है, तो क्या ही अच्छा हो! अगर हम अपने अनेकानेक दोषोंके लिअे अपनेको क्षमा कर सकते हैं, तो औरोंके अपने सम्बन्धके अेकाध दोषको क्या हम दरगुज़र न करें?

अितना करने पर भी अगर किसी मनुष्यके प्रति हमारे मनमें सद्‌भाव पैदा न हो, तो मनमुटावके प्रसंग अुत्पन्न करनेकी अपेक्षा अुसके साथके सम्बन्धोंको ही संकुचित करना अुचित है। जहाँ सद्‌भाव नहीं है, वहाँ सहयोग करनेका हमें कोअी अधिकार ही नहीं। दुनियामें श्रमविभागके नाम पर जो जगद्व्यापी सहयोग चल रहा है, अुससे श्रेय ही हुआ हो सो नहीं। यह अुचित है कि अपने हृदयका जितना

विकास हुआ हो, अुतना ही विस्तार हम करें। ऋषिगण कहते हैं कि हृदयसे ही सत्यका ज्ञान होता है।

मिलकर काम करनेके लिअे 'महामनाः स्यात्' वाला व्रत आवश्यक है। फरवरी, १९२६

ध्वजारोपण

चैत्र सुदी १ **१ समय**

ज्योतिषशास्त्रका साल चैत्रसे शुरू होता है। शालिवाहन संवत्का प्रारंभ भी चैतकी पड़वासे होता है। लोग समझते हैं कि अिसी दिन श्रीरामचन्द्रजीने दक्षिण प्रदेशको बालिके जुल्मसे मुक्त किया था। अिसलिअे अिस दिनको स्वतन्त्रताका दिन मान कर ध्वजा खड़ी की जाती है। अिस त्यौहारके बारेमें पौराणिक कहानियाँ सुनाने और ध्वजा किस लिअे खड़ी की जाती है सो सब विद्यार्थियोंको अच्छी तरह समझानेके अलावा अिस दिन और कुछ करने लायक नहीं है।

अिस ऋतुमें नीमकी पत्ती खानेका रिवाज वैद्यककी दृष्टिसे अच्छा है। सवेरे अुठकर हींग, नमक, जीरा आदिके साथ नीमकी कोंपलें खाना अिस दिनकी ख़ास विधि है। हम तो सिर्फ़ कोंपल और नमक ही खायें।

अिस दिन अगर हम पुष्परचना कर सकें, तो वसन्तका सच्चा अुत्सव होगा। शालामें अैसी पुष्परचना करना संभव हो, तो यह आधे दिनका त्यौहार समझा जाय।

तिरंगे राष्ट्रीय झंडेका वन्दन तो अिस दिन रखा ही जाय। अुसके साथ झंडागीत और राष्ट्रगीत दोनों गाये जायें।

रामनवमी

चैत्र सुदी ९

रामजन्मका आनन्द अपूर्व है। आदिकवि वाल्मीकिने रामजन्मसे पहलेकी स्थितिका अच्छा वर्णन किया है। विश्वामित्र जब राजा दशरथसे धर्मरक्षाके लिअे दो विद्यार्थियोंकी याचना करते हैं, तब प्रथम तो मोहवश पिता अिन्कार करते हैं; लेकिन तुरन्त ही कर्त्तव्यका ज्ञान होने पर अपने प्राणप्रिय पुत्रोंको ऋषिके हाथ सौंप देते हैं।

अब राम-लक्ष्मणकी हर रोजकी मामूली शिक्षा बन्द हो जाती है। राजपुत्रोंकी शिक्षा बहुविध होती है। अुन्हें बहुतसे विषय सीखने पड़ते हैं। अुनकी सभी अिन्द्रियोंके विकासके हेतु कुलपति वसिष्ठने अुन्हें सर्वांगीण शिक्षा देनेका विचार किया था, लेकिन विश्वामित्रने अुस सबको अुलटपुलट कर दिया। वे राजपुत्रोंको प्रवासके लिअे ले गये। वहाँ अुन्होंने प्रकृतिके साथ अुनका परिचय करा दिया। देशकी स्थिति अपनी आँखों देखकर रामचन्द्रजी पूछते हैं: "अिस प्रदेशमें अितनी नदियाँ बहती हैं। अितनी प्राकृतिक समृद्धि है, फिर भी यहाँ आबादी क्यों नहीं है? और जो थोड़ीसी है, वह भी अिस तरह भयभीत दशामें क्यों है?"

तब विश्वामित्र अुन्हें अुस प्रदेशका अितिहास समझाने लगते हैं: "अेक समय था, जब यह प्रदेश सुखी था, समृद्ध था, लेकिन बादमें प्रजाभक्षक असुरोंका राज्य यहाँ हो गया; अिसीलिअे लोगोंकी यह हालत हो गयी है।" अपनी तेजस्वी आँखोंसे राम-लक्ष्मणको निहारकर वह राजर्षि आगे कहते हैं: "नवयुवको, अिस सब आतंकको दूर करनेका भार तुम लोगों पर है।"

शाम होने पर विश्वामित्र अिन राजपुत्रोंको रघुकुलकी अुज्ज्वल कीर्ति सुनाते हैं। राजा दिलीपकी दिग्विजय, भगीरथका महातप सब

कुछ कहते हैं। सवेरे नहा-धोकर जब राम-लक्ष्मण वन्दन करनेके लिअे आते, तब देशमें फैले हुअे जुल्मको दूर करनेके अुपाय, मंत्र, अस्त्र और अुनकी खूबियाँ आदिकी शिक्षा वे अुन्हें देते थे।

अिसी यथार्थ स्थितिका काव्यमय भाषामें अेक दूसरी जगह वाल्मीकिने वर्णन किया है। यह प्रसंग रामजन्मके पूर्वका है। असुर अुन्मत्त हो गये हैं। शूर्पणखा अपने सूपके जैसे बड़े और तीक्ष्ण नखोंसे सारे देशको खरोंच रही है। खर और दूषण देशभरमें अनीति फैला रहे हैं। प्रजाके बड़े-बड़े वर्गोंको कुंभकर्ण सारे के सारे निगल रहा है। सात्त्विक बुद्धिवाला विभीषण रावणके दरबारमें धर्मके नामसे अरण्यरुदन कर रहा है। साम्राज्य-मदसे अुन्मत्त हुअे राक्षस अुसकी नेक सलाहकी हँसी अुड़ा रहे हैं। बेचारा विभीषण अिस बातका निर्णय नहीं कर सकता कि अपने भाअीके साथ सहकार किया जाय या असहकार; अिधर रावण अपने राज्यके दशविध विभागोंके द्वारा अेकमुखी सत्ता चला रहा है। बेचारी नैसर्गिक शक्तियोंकी तो बात ही क्या, नवग्रह भी अुसके घर कहारका काम करते हैं। लोगोंके दिलोंमें शक पैदा होता है कि दुनियाका मालिक अीश्वर है या रावण! अपने द्वीपमें बैठा-बैठा वह सारे देशके कोने-कोनेको देख सकता है। रावणसे छिपा तो कुछ भी नहीं रह सकता!

रावणके घमंडकी कोअी हद नहीं रही है। वह अपने मनमें और अपने दरबारमें जाहिरा तौर पर भी कहता है: "अिस अेक शत्रुको मैंने मार डाला! अिसी तरह औरोंका भी खातमा करूँगा। मैं सबसे श्रेष्ठ हूँ। मैं ही सुखोपभोग करनेवाला हूँ। सारी सिद्धियाँ मेरी दासियाँ हैं। मेरी शक्ति सबसे ज्यादा है। मेरी जाति भी सबसे बड़ी है। मेरी ही संस्कृति सबसे अूँची है। दुनियाकी भलाअी करनेका भार भी मेरे ही सिर है। मैं ही दानी हूँ। सब प्रकारके सुख मेरे लिअे ही हैं।" अपनी अिस गर्वोक्तिसे रावणको सन्तोष नहीं होता, बल्कि सभीके मुँहसे अपना यही गुणगान वह करवाता है।

सभी अुसके बंदीजन हो गये हैं। अुसकी अिच्छाके अनुसार पंडित शास्त्रार्थ चलाते हैं। पुरातत्त्वविद् अुसीका यश अितिहास, भूगर्भ आदिमें से खोज निकालते हैं। हरअेक गुणी मनुष्य अितना पामर हो गया है कि वह अपनी सारी शक्ति अिस मदान्धके चरणों पर अर्पण करनेमें ही अपनेको धन्य मानता है।

अैसी हालतमें दीन-हीन बनी हुअी पृथ्वी सिरजनहारके पास जाकर कहती है: "प्रभो! अब यह बोझ असह्य हो गया है। मंगलता परसे मानवकी श्रद्धा अब अुठ गअी है। तपस्या छोड़कर लोग सुरापान कर रहे हैं। लंकाकी साम्राज्यदेवी हर रोज़ असंख्य प्राणियोंकी बलि ले रही है। शराबकी कितनी कोठियाँ हर रोज़ खाली हो रही हैं! देवोंके सब व्यवहार बंद पड़ गये हैं। यह हालत कब तक चलनेवाली है?" सिरजनहार कहते हैं: "हे पृथ्वी! तू श्रद्धा मत खो! अुस अीश्वर तत्त्वकी शरणमें जानेसे सब दुःखोंका निवारण होता है, जो चराचरको व्यापे हुअे है। राक्षस और मनुष्य जिन्हें जंगली बन्दर कहते हैं, अनाड़ी कहते हैं, राक्षसी संस्कृतिका जिन्हें स्पर्श तक नहीं हुआ है, जिनके मनुष्य होनेके संदेहसे जिन्हें 'वा-नर' कहा जाता है, अैसे भोले लोगोंमें यह अीश्वरी शक्ति प्रकट होगी। अुन्हींके हाथों रावणकी पराजय होगी। आर्यावर्तकी माताअें पहाड़ पर बैठ कर जो तपस्या कर रही हैं, वह जरूर सफल होगी और वज्रकौपीन, वज्रकाय बालक देशमें पैदा होंगे। धर्ममें फिरसे जाग्रति होगी और परमात्मा स्वयं अवतार लेंगे।" पृथ्वीके मनमें यह शंका अुठने पर कि यह कैसे मालूम होगा कि परमात्माका अवतार हो गया है, सिरजनहार कहते हैं: "जब देशमें ब्रह्मचारी अुत्पन्न होंगे, गृहस्थ अेकपत्नी-व्रतका पालन करेंगे, विद्यार्थी धर्म-रक्षक गुरुओंके वशमें रहेंगे, माँ-बाप जब मोहका त्याग करके अपने लड़कोंको मख (यज्ञ)की रक्षाके लिअे अर्पण करेंगे, भाअी-भाअी अपूर्व प्रेमसे अेक-दूसरेके साथ सम्बद्ध होंगे, अुच्च कुलके चारित्र्यसंपन्न लोग पतित स्त्रियोंका

अुद्धार करेंगे, राजपुत्र भीलों और गुहकोंके साथ समानभावसे मैत्री करेंगे, ब्राह्मण अपने अभिमानकी अैंठ छोड़ देंगे, ब्रह्मचर्यका तेज सत्य और धर्मकी सेवाका स्वीकार करेगा, प्रजामें श्रद्धाका अुदय होगा, और जब अूँचे खानदानके नौजवान शहरी जीवनके विलासोंका त्याग करके गाँव-गाँव और बन-बन घूमने लगेंगे — तभी समझना चाहिये कि अब अीश्वरका अवतार हो गया है।" पृथ्वीको सन्तोष हो गया, दिलासा मिल गया, और वह शान्त होकर अपने स्थान पर चली आअी।

दशरथने तपस्याका प्रारम्भ करके धर्मकी अग्निको चेताया। यज्ञपुरुषने पायसरूपी चैतन्य दे दिया। दुनिया राह देखने लगी। सारे संयोग भी अनुकूल होने लगे। ग्रह और अुपग्रह परस्पर अनुकूल बन गये। पापकी घटिका भर गअी और पुण्यका अुदय हुआ। रामजन्म हुआ।

अुसी दिन लोगोंने आनन्द मनाया।

हालांकि अभी तक रावण-राज्य नष्ट नहीं हुआ था; अभी ताड़काका वध नहीं हुआ था; अभी कांचनमृग मारीचकी माया प्रकट नहीं हुअी थी। फिर भी प्रजाने अुत्सव मनाया; क्योंकि रामजन्म हो चुका था। जिस तरह कोअी देहाती किसान आकाशके मेघोंमें ही सोलह आना फसल देख लेता है, अुसी तरह प्रजाने मेघश्याम रामचन्द्रमें स्वातंत्र्य देखा, धर्मराज्य देखा और मुक्ति देखी। अुस दिनसे आज तक लोगोंने चैत सुदी नवमीको अुत्सव मनाया है। क्योंकि अुस दिन मनुष्यके दिलमें मुक्ति साधनारूप सत्य, ब्रह्मचर्य और धर्म-सम्बन्धी श्रद्धा जाग्रत हुअी।

रामनवमी

चैत्र सुदी ९ **१ दिन**

रामनवमी और कृष्णाष्टमी दोनों भक्तिके ही त्यौहार हैं। रामकृष्णकी अुपासनासे हिन्दूधर्म जितना रंगा हुआ है, अुतना किसी भी दूसरी चीज़से नहीं रंगा है। अिसलिअे रामनवमीका अधिकसे अधिक अुपयोग करनेमें हमें समर्थ होना चाहिये। रामनवमीके दिन अुपवास करनेका रिवाज अच्छा है। हो सके तो छोटे-छोटे लड़के भी बारह बजे तक कुछ न खायें।

हृदयमें और समाजमें किस-किस प्रकारके राक्षस अुन्मत्त हो गये हैं, यह खोजनेमें अगर हम सवेरेका समय लगा सकें तो अच्छा। दस बजे मुक्तिकोपनिषद्में से अच्छे-अच्छे अुद्धरण लेकर विद्यार्थियोंको सुनाये जायँ। सब लोग अिकट्ठे होकर रामजन्मकी कथा अिस तरह सुनें कि वह ठीक बारह बजे खत्म हो जाय। अुसके बाद भजन और कीर्तन। दोपहरको गानेका कार्यक्रम रखकर अुसके बाद रामचरित्रके अलग-अलग प्रसंगोंका विवेचन किया जाय। रामराज्यके बारेमें अपनी-अपनी कल्पनाको विविध प्रकारसे विस्तृत करके अुसका विवेचन किया जाय। मनुष्य-जातिके लिअे आदर्श राजा कैसा होना चाहिये, अिसका जो अुदाहरण श्रीरामचन्द्रजीने प्रस्थापित किया अुसका रहस्य समझाया जाय। रामनवमीके त्यौहारके साथ अिसकी भी कोशिश की जाय कि हमारे राष्ट्रीय ग्रंथ रामायणका अध्ययन नये-नये ढंगसे हो। प्रजातंत्रकी कल्पनाको अिस दिन गाँव-गाँवमें स्पष्ट किया जाय।

रामनवमीके दिन सब मिलकर सवेरे स्नानके लिअे चले जायँ, भाँति-भाँतिके पुष्प चुनें, रामचन्द्रजीकी पूजा करें, पूजाके कमरेमें चौक (राँगोली) की कलाकारी की जाय, अगरबत्ती, धूप, चन्दन आदिकी सुगन्धसे पूजाका कमरा पवित्र करें। और छोटे-बड़े सबको खुश रखकर

यह दिन प्रसन्नताके साथ बिता दें। अिस दिन सीतासतीके चरित्र पर काव्य रचे जायँ। और स्वराज्यके लिअे जीवन अर्पण करनेकी प्रतिज्ञा भी की जाय।

१७–४–'२१

महावीर जयन्ती

चैत्र सुदी १३

१. महावीर स्वामी

जब हिन्दूधर्म और अुसकी मान्यतायें अितनी पुरानी हो गयीं कि अुनमें संस्कार किये बिना लोगोंको अुनमें से आश्वासन मिलने योग्य कोअी बात नहीं रही, तब अिस प्रकारका संस्कार करनेवाले अेक महापुरुष गौतमबुद्ध हो गये। लेकिन संस्कार करनेवाले वे अकेले नहीं थे। अुनके समयके अिस तरहके संस्कारकोंके पाँच-छः नाम मिल आते हैं। अुनमें वर्धमान महावीर ही अेक अैसे सत्पुरुष थे, जिन्हें गौतमबुद्धके जितनी ही प्रसिद्धि प्राप्त हुअी। वर्धमान महावीर जैन धर्मके संस्थापक कहे जाते हैं।

यों तो जैन धर्म बहुत ही प्राचीन है। भगवान् ऋषभदेवसे लेकर अुस धर्मके चौबीस तीर्थंकर हो गये। वर्धमान महावीर आख़िरी तीर्थंकर हैं। गौतमबुद्धकी तरह महावीरने भी बिहार प्रान्तमें जन्म लिया था। वैशाली नगरके पास अेक छोटेसे गाँवमें ज्ञातृ नामके कुलमें वर्धमानका जन्म हुआ था। अुनकी माँ लिच्छवी राजा कटककी बहन थी। बचपनसे ही अुनके मनमें वैराग्य पैदा हो गया। लेकिन वह अेकनिष्ठ मातृपितृभक्त थे, अिसलिअे वृद्धोंको राजी रखनेके लिअे यशोदा नामकी अेक राजकन्याके साथ ब्याह करके घर-गृहस्थी चलाने लगे। अुनके प्रियदर्शना नामकी अेक कन्या भी हो गयी थी। जब वे तीस

बरसके हो गये, तब अुनके माता-पिताकी मृत्यु हो गयी, और वे घर-गृहस्थीसे मुक्त हो गये। अुन्होंने घोर तप शुरू किया और भगवान् पार्श्वनाथके पंथमें शामिल होकर शान्ति प्राप्त की।

अहिंसा धर्मका असाधारण अुत्कर्ष हमें महावीरमें दिखाअी देता है। लगभग चालीस सालकी अुम्रसे अुन्होंने अुपदेश देना शुरू किया और बत्तीस साल तक यह काम करते रहे। बुद्ध भगवान् मध्यममार्गका अुपदेश करते थे, अिधर महावीर विषयसुखके आत्यन्तिक त्यागको पसन्द करनेवाले थे। तपश्चर्याका सेवन करके अिन्द्रिय-निग्रहकी पुरानी परम्पराको महावीरने चलाया और देहदंडनका महत्त्व बढ़ा दिया। हिन्दुस्तानमें अेक समय अैसा था, जब बौद्धधर्म खूब फैला हुआ था। लेकिन आज वह नष्टप्राय हो गया है। जैन धर्म भी बौद्ध धर्मकी तरह फैला हुआ मालूम होता है, लेकिन बौद्ध धर्मकी तरह अुसका लोप नहीं हुआ। आज बंगालकी तरफ, गुजरातमें तथा और-और स्थानोंमें जैन लोग काफ़ी तादादमें हैं।

बौद्ध धर्मकी तरह जैन धर्मका प्रचार करनेके लिअे किसी समर्थ राजाकी तरफसे (गुजरातके राजा कुमारपालको छोड़कर) या किसी दूसरे ढंगसे प्रचार नहीं हुआ है।

अहिंसाधर्मका विचार करते करते जैन लोगोंने सूक्ष्म जीव कहाँ कहाँ होते हैं, अिसकी भलीभाँति खोज की है। वनस्पतिमें कितने प्राण होते हैं, हवा और पानीमें जीव किस तरह रहता है, आदि बातोंका अुन्होंने अेक बड़ा शास्त्र तैयार किया है। जैन पंडितोंने साहित्यकी बहुत सेवा की है। जैन लेखकों द्वारा अनेक शास्त्रों पर लिखे हुअे ग्रंथ संस्कृतमें हैं। जैन लोग भी मूर्तिपूजक हैं। अिसलिअे अुन्होंने स्थापत्य और शिल्प कलाओंमें सविशेष अुन्नति की है। जैन लोगोंके बनाये हुअे गुजरातके कअी मंदिर सारे हिन्दुस्तानमें असाधारण समझे जाते हैं। आबू-देलवाड़ाके जैन मंदिरोंकी कारीगरी देखकर सारी दुनियाके मुसाफ़िर आश्चर्यान्वित हो जाते हैं। अिन जैनमन्दिरोंसे यह

स्पष्ट हो जाता है कि कठिन पत्थरमें मोमकी या फूलोंकी कोमलता लानेकी कितनी जबर्दस्त शक्ति हिन्दुस्तानके कारीगरोंमें है।

जैनोंमें श्वेताम्बर और दिगम्बर नामक दो भेद पड़ गये हैं। महावीरने कैवल्यप्राप्तिके बाद वस्त्रका भी त्याग किया था, अिसलिअे अुनकी पूजा वस्त्रके साथ की जाय या बिना वस्त्रके, यह मतभेदकी बात थी। अिसीको लेकर दो पंथ पैदा हो गये। और अब तो अुनमें पूजाविधि और कलाके आदर्शके विषयमें भी फर्क आ गया है।

जैन धर्मके पहले तीर्थंकर ऋषभदेवका अुल्लेख श्रीमद्‌भागवतमें आया है। वहाँ अुनके त्याग और वैराग्यका आदरपूर्वक वर्णन किया गया है। अैसा दिखाअी देता है कि हिन्दू समाजको संस्कारी और सभ्य बनानेमें ऋषभदेवका बड़ाभारी हिस्सा था। कहा जाता है कि विवाह-व्यवस्था, पाकशास्त्र, गणित, लेखन आदि संस्कृतिके मूल बीज ऋषभदेवने ही समाजमें बोये। अगर यों कहें तो भी चलेगा कि यह सब करके और अन्तमें अुसका त्याग करके, ऋषभदेवने प्रवृत्ति और निवृत्ति दोनों मार्गोंका आचरण करके दिखाया।

ऋषभदेवके बाद और महावीरके पहले दूसरे बाअीस तीर्थंकर हो गये। अुनमें से आखिरी पार्श्वनाथ थे। अुनके पंथका महावीर पर बहुत असर हुआ। अपने अनुभवसे महावीरने पार्श्वनाथके अुपदेशमें वृद्धि की। और संयम-धर्मको अधिक स्पष्ट और संपूर्ण किया। सत्य, ब्रह्मचर्य, अहिंसा और अस्तेय रूपी 'यम' को सम्पूर्ण बनानेके लिअे अुनमें अपरिग्रह व्रतको जोड़ दिया। पार्श्वनाथके मतके अनुसार पापका स्वीकार करनेकी विधि (प्रतिक्रमण) व्यक्तिकी अिच्छा पर छोड़ दी गयी थी। महावीरने अुसे आवश्यक कर दिया।

महावीर स्वामीको आखिरी तीर्थंकर समझा जाता है। तीर्थंकरका अर्थ है, स्वयं तरकर असंख्य जीवोंको भवसागरसे तारनेवाला। तीर्थ यानी मार्ग बतानेवाला। जो सच्छास्त्र रूपी मार्ग तैयार करनेवाला है, वह तीर्थंकर है।

बौद्ध धर्ममें जैसे बोधिसत्वकी कल्पना है, वैसे जैन धर्ममें तीर्थंकरकी कल्पना है। कुछ लोगोंकी राय है कि वैदिक धर्मने जैन और बौद्ध धर्मकी नकल करके अुसी तरहकी अवतारकी कल्पना खड़ी की है। यह माना जाता है कि विष्णुके दस अवतार हैं। दूसरे हिसाबसे चौबीस अवतार माने जाते हैं। दस अवतारोंमें बुद्धावतारको लिया जाता है और चौबीस अवतारोंमें ऋषभदेव हैं, यह बात खास ध्यानमें रखने लायक है।

गौतमबुद्धकी तपस्याकी तरह महावीरकी तपस्या भी बहुत अुग्र थी। अुन्होंने तितिक्षाकी सीमा करके दिखाअी। लाट देशमें वीरप्रभुको काफ़ी तकलीफ़ बरदाश्त करनी पड़ी। प्रवास करते समय कुत्ते आकर जब वीरप्रभु पर टूट पड़ते और अुन्हें काटते, तो वहाँके लोग कुत्तोंसे अुनकी रक्षा नहीं करते थे। अितना ही नहीं, बल्कि वे भगवान्को पीटते थे और कुत्तोंको छू लगाकर अुनके अूपर छोड़ते थे। लेकिन महावीरने यह सब सहन किया और विजय प्राप्त की। आज अुसी देशमें अुनकी आदरपूर्वक पूजा होती है।

पापकी जिम्मेदारी सिर्फ़ पाप न करनेसे पूरी नहीं होती। महावीर स्वामीने अुपदेश दिया है कि पाप न करें, न करायें, और अुसे अनुमोदन भी न दें, तभी पापसे मुक्ति मिल सकती है। अुन्होंने पापके साथ सम्पूर्ण असहकार करनेकी नसीहत दी है।

जैन तत्त्वज्ञान और जैन विधियोंमें अेक ही वस्तु सर्वत्र देखनेमें आती है। वह है, मनुष्यको संयमी बनाकर आत्म-प्राप्तिकी ओर ले जाना। जैन परिभाषामें बाह्य प्रवृत्तिको 'आस्रव' कहते हैं। अिस आस्रवमें से परावृत्त होकर आत्माभिमुख होना 'संवर' कहलाता है।

जैन धर्म और योगदर्शनमें बहुत साम्य है। अहिंसा, सूनृत, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह ये पाँच महाव्रत; मैत्री, करुणा, मुदिता, और अुपेक्षा ये चार भावनायें; धर्मके दशविध लक्षण आदि चीजें

वैदिक, बौद्ध और जैन धर्मोंमें समान ही हैं। यात्रा और व्रतोंका माहात्म्य भी तीनोंमें अेकसा है। भेद सिर्फ़ परिभाषाका है।

जैनोंमें दिगम्बर और श्वेताम्बरके अलावा 'स्थानकवासी' नामका अेक नया पंथ पैदा हो गया है। अिसमें मूर्तिपूजा नहीं है।

जैन धर्ममें पुराण भी बहुत हैं। अुनकी कअी कथायें वैदिक पुराणोंकी कथाओंसे कुछ-कुछ मिलती-जुलती हैं। जैन पुराण, शाक्त पुराण और वैदिक पुराण अिन तीनोंमें तुलना करनेसे अिस बातकी अटकल लगाअी जा सकती है कि पुराणोंमें अैतिहासिक भाग कितना होगा और अुसका असली स्वरूप क्या होना चाहिये। अिस ढंगसे पुराने साहित्यका अभी तक अुपयोग नहीं किया गया है।

बौद्ध और जैन धर्ममें चाहे जिस व्यक्तिका प्रवेश हो सकता है। और चाहे जिस जातिका मनुष्य भिक्षु या यति बन सकता है। जैन और बौद्ध धर्मोंमें जातिभेदके बारेमें पूर्ण अुदासीनता है। शायद विरोध भी होगा। फिर जातिभेदकी गन्दगीरूप अस्पृश्यताको तो जैन धर्ममें कहाँसे स्थान होगा?

२. विश्वधर्म

[फुटकर विचार]

'महावीर' नाम श्रीविष्णुको भी दिया गया है। अुनके वाहन गरुड़को भी महावीर कहते हैं। श्रीरामचन्द्रजीको भी महावीर कहते हैं। और अुनके अेकनिष्ठ सेवक हनुमान भी महावीर ही हैं। आज हम श्रीपार्श्वनाथके अनुगामी श्रीवर्धमानको महावीरके नामसे पहचानते हैं।

'महावीर' शब्दसे कौनसा अर्थबोध होता है? सर्वत्र फैलकर, आसुरी शक्तिको हराकर विश्वका पालन करनेवाले विष्णु महावीर हैं। अमृत प्राप्त करनेकी शक्ति रखनेवाला मातृभक्त गरुड़ महावीर हैं।

पिताके वचनका पालन करनेके लिअे, प्रजाका कल्याण करनेके लिअे और धर्मनिष्ठाका आदर्श प्रस्थापित करनेके लिअे राज्य, सुख और पत्नीका त्याग करनेवाले श्रीरामचन्द्रजी महावीर हैं। किसी प्रकारके प्रतिफलकी अिच्छा रखे बिना सेवा करनेवाले और शक्तिका अुपयोग शिवकी ही सेवामें करनेवाले ब्रह्मचारी सेवानन्द हनुमान भी महावीर हैं। मातृभक्ति, सुखत्याग, भूतमात्रके प्रति अपार दया और अिन्द्रिय-जयका अुत्कर्ष दिखानेवाले ज्ञातृपुत्र वर्धमान भी महावीर हैं। आर्यजातिने सर्वोच्च सद्‌गुणोंकी जिस मनोमय मूर्तिकी कल्पना की है, जिस आदर्शको निश्चित किया है, अुस तक पहुँचनेवाले व्यक्ति महावीर हैं। विजय प्राप्त करनेवाला वीर है। जो अन्तर्बाह्य दुनिया पर विजय पाता है, वह है महावीर! वीर यानी आर्य और महावीर यानी अर्हत्।

*   *   *

हिन्दूधर्म राष्ट्रीय धर्म है। अेक महान् राष्ट्रका धर्म होनेसे अुसे महाराष्ट्रीय धर्म भी कह सकते हैं। लेकिन हिन्दूधर्मके तत्त्व सार्वभौम हैं, विश्वधर्मके हैं। अुनका प्रचार सर्वत्र होने लायक है। हिन्दूधर्मने मनुष्यजातिका जीवनधर्म खोज निकाला है। हिन्दूधर्मने बहुत पहलेसे निश्चित कर रखा है कि क्या करनेसे मनुष्यजाति शान्तिसे रह सकेगी, अुसका अुत्कर्ष होगा, तथा वह परमतत्त्वको पहचान कर अुसे प्राप्त कर सकेगी। 'स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्' (जिस धर्मका अल्प स्वल्प (पालन) भी बड़े बड़े भयोंसे रक्षा करता है)। 'न हि कल्याणकृत्कश्चित्दुर्गतिं तात गच्छति' (हे तात, शुभ कर्म करनेवाले किसीकी दुर्गति नहीं होती)। 'धर्मो रक्षति रक्षितः' (जो धर्मका रक्षण करता है, अुसकी रक्षा धर्म करता है)। अिस तरहकी श्रद्धा या अनुभवको अिस धर्मने अंकित कर रखा है। फिर भी हिन्दूधर्म प्रचार-परायण (मिशनरी) धर्म नहीं है। सारी दुनियामें

अपना प्रचार करनेका हिन्दूधर्मका आग्रह नहीं है। हिन्दू अपने धर्मको अपने आचरणमें लानेका प्रयत्न करता रहता है। अुसमें अगर अुसे सफलता मिल गयी, तो अुसकी छाप पड़ौसियों पर पड़ेगी ही। यह समझकर कि प्रभाव डालनेके लिअे जानबूझकर कोशिश करनेमें अुतावली और अधीरता है, यानी जीवनका कच्चापन है, हिन्दू व्यक्ति अधिक प्रयत्नपूर्वक आत्मशुद्धि ही करता रहेगा।

सामाजिक हिन्दूधर्मके मानी हैं अिन सनातन तत्त्वोंको अपने विशिष्ट समाजके अनुकूल बनानेका प्रयत्न करना । दूसरा समाज अिन्हीं तत्त्वोंको अलग तरीकेसे अपने जीवनमें ला सकता है। हिन्दू-धर्मके अिन सनातन तत्त्वोंको समाजमें दाखिल करनेके अनेक प्रयत्न अिस देशमें हुअे हैं। रूढ़ सनातन धर्म अिस देशके बाहर बिलकुल नहीं फैला है। अुसे फैलानेके प्रयत्न किसी समय हुअे हैं या नहीं अिसका हमें पता नहीं है। अिस देशमें ही अुसे नष्ट करनेके प्रयत्न हुअे हैं और वे प्रयत्न निष्फल हुअे हैं अितना हम जानते हैं। लेकिन रूढ़ सनातन पद्धतिको छोड़ दूसरे ढंग पर किये गये प्रयोग दुनियामें अच्छी तरह फैल गये हैं। बौद्धधर्म अिस बातका सबूत है। यही सबसे पहला मिशनरी धर्म दिखाअी देता है। अिससे पहले अगर मिशनरी कार्य हुआ हो, तो अुसका हमें ठीक-ठीक पता नहीं है। अैसा भी लगता है कि वर्णव्यवस्थायुक्त जीवनधर्म प्रचारक धर्म हो ही नहीं सकता। (जीवनधर्म यानी केवल माननेके लिअे रचा हुआ धर्म नहीं, बल्कि जीनेके लिअे विकसा हुआ धर्म।)

बौद्ध और जैनधर्ममें काफी भेद हैं, फिर भी दोनोंमें साम्य भी कुछ कम नहीं है। दोनों मिशनरी धर्म होने लायक हैं। दोनों विश्व-धर्म हैं। स्याद्वादरूपी बौद्धिक अहिंसा, जीवदयारूपी नैतिक अहिंसा और तपस्यारूपी आत्मिक अहिंसा (भोग यानी आत्महत्या — आत्माकी हिंसा। तप यानी आत्माकी रक्षा — आत्माकी अहिंसा) अैसी त्रिविध अहिंसाको जो धारण कर सकता है वही विश्वधर्म हो

सकता है। वही अकुतोभय विचर सकता है। 'यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते चयः' (जो लोगोंसे नहीं अूबता, जिससे लोग नहीं अूबते) यह वर्णन भी अुसी पर चरितार्थ हो सकता है। अूपर बताअी हुअी प्रस्थानत्रयीके साथ ही व्यक्तिगत अेवं सामाजिक जीवनयात्रा हो सकती है। आत्माकी खोजमें यही पाथेय काम आने योग्य है।

* * *

मिशनरी धर्म अपने तत्त्वोंके प्रति अवश्य वफादार रहे, लेकिन अपने स्वरूपके सम्बन्धमें आग्रह न रखे। 'जैसा देश, वैसा वेश' का नियम धर्म पर भी — खासकर विश्वधर्म पर — घट सकता है। विश्वधर्म यदि सच्चा विश्वधर्म है, तो वह अपने नामका भी आग्रह नहीं रखेगा।

* * *

अैसा समझनेके लिअे कोअी कारण नहीं कि किसी समय दुनियामें विश्वधर्म तो अेक ही हो सकता है। जिस तरह किसी कमरेमें रखे हुअे चार-पाँच दीपक अपना-अपना प्रकाश सारे कमरेमें सर्वत्र फैलाते हैं, सारे कमरेके राज्यका अुपभोग करते हैं, और फिर भी अपने-अपने व्यक्तित्वकी रक्षा करते हैं, अुसी तरह अनेक विश्वधर्म अेकसाथ सारे जगके राज्यका अुपभोग कर सकते हैं। धर्ममें द्वेष या मत्सर कहाँसे आयेगा? अेक म्यानमें दो तलवारें नहीं रहेंगी, अेक दरबारमें दो मुत्सद्दी (राजनेता) कार्य नहीं करेंगे, लेकिन दुनियामें अेक साथ चाहे जितने धर्म साम्राज्यका अुपभोग कर सकते हैं, क्योंकि धर्म तो स्वभावसे ही अहिंसक होता है। धर्मके मानी ही हैं अद्रोह। जहाँ धर्म धर्मके बीच झगड़े चलते हैं, और संख्याबलकी आकांक्षा दिखायी देती है, वहाँ यह मान ही लेना चाहिये कि धर्ममें धार्मिकता नहीं रही है, धर्मके नामसे अधर्मकी हुकूमत चल रही है। धर्मका वीर्य

क्षीण हो गया है। अैसी हालतमें वही दुनियाको अुबार सकेगा जो धर्मवीर होगा। महावीर होगा।

अहिंसाके सम्पूर्ण स्वरूपको हमें समझ लेना चाहिये। अहिंसा महावीरका धर्म है। सारी दुनियाको जीतनेकी आकांक्षा रखनेवाले जिनेश्वरका धर्म है। जब तक दुनियाके अेक कोनेमें भी हिंसा होती रहेगी, तब तक यह अहिंसा धर्म पराजित ही है। सिर्फ़ सूक्ष्म जंतुओंको कृत्रिम तरीकोंसे भरण-पोषण देकर जिलानेसे ही अहिंसा धर्मको सन्तोष नहीं होना चाहिये। जो महावीर है अुसको चाहिये कि वह महावीरकी तरह तमाम दुनियाका दर्द —— पाँचों खंडोंका दर्द —— खोज कर देख ले; और अपने पासकी सनातन दवा वहाँ पहुँचा दे। महावीरके अनुयायियोंको हृदयकी विशालता और अुत्साहकी शूरता प्राप्त करके सभी जगह संचार करना चाहिये। संग्रामका वीर शस्त्रास्त्र लेकर दौड़ेगा। अहिंसाका वीर आत्मशुद्धि और करुणासे सुसज्जित होकर दौड़ेगा। सारी दुनियाको अेक 'अपासरे' (जैन साधुओंका मठ) में बदल देना चाहिये। छोटेसे अपासरेमें कितनोंको आश्रय मिल सकेगा?

२७–४–'२४

महावीर जयन्ती

चैत सुदी १३ **अेक दिन**

अिस दिन ऋषभदेव, पार्श्वनाथ, महावीर, नेमीनाथ आदि तीर्थंकरोंकी जानकारी करायी जाय; और मनुष्येतर प्राणी भी मानव-जातिके छोटे-छोटे भाअी ही हैं, अुन्हें दुःख नहीं देना चाहिये, अुनका भी भला चाहना और करना चाहिये, क्योंकि हम अुनके पालक और रक्षक हैं, आदि बातें विद्यार्थियोंको समझानी चाहियें। यह बात भी अुनके दिलमें बिठानी चाहिये कि वही जीवन अुत्तम है, जिसमें औरोंको कम-से-कम पीड़ा दी जाती हो। अिस दिनका विशिष्ट बोध यह है कि अहिंसा ही अमृतत्व है और अपरिग्रह ही अमीरी है।

लोगोंका हनुमान

१

चैत सुदी १५

हिन्दूधर्मकी यह अेक खूबी है कि अुसके चित्र अिस प्रकार खींचे हुअे होते हैं कि वे छोटे-बड़े, शिक्षित-अशिक्षित, अुच्च अभिरुचि रखनेवाले और भोलेभाले, सभी लोगोंको प्रिय हो जायें।

मनुष्य मनुष्यके बीच जितना रागद्वेष होता है, अुतना मनुष्य और मनुष्येतरोंके बीच नहीं होता। पशुपक्षियोंके प्रति हमारा समभाव स्वाभाविक होता है। अुनके प्रति या तो कुतूहल होता है, या दयाभाव या अुपेक्षा! लेकिन अीर्ष्या, मत्सर, द्वेष आदि मिश्र और हीनभाव नहीं होते। अिसलिअे पुराणकारोंने कअी आदर्शोंको पशु-पक्षियोंके रूपमें चित्रित किया है। आदर्श ब्रह्मचारी, आदर्श सचिव, आदर्श भक्त-सेवक और निष्काम समाज-हितकर्ता हनुमानका चित्र

अितना भव्य है कि मनुष्य कोटिमें वह वास्तविक-सा नहीं मालूम होगा; अिसीलिअे शायद वाल्मीकिने अुन्हें वानरका रूप दिया। 'वानर' के मानी हैं 'निकृष्ट' नर। लेकिन हनुमानके बारेमें तो अिसके मानी अुलटे हैं, क्योंकि वे नरश्रेष्ठोंमें भी श्रेष्ठ हैं। 'बुद्धिमतां वरिष्ठ' हैं।

अिन्हीं गुणोंका अुत्कर्ष मनुष्यमें दिखानेके लिअे वाल्मीकिने लक्ष्मणजीका भी चित्र खींचा। चौदह वर्ष तक कंद-मूल-फलाहार करके अुन्होंने अपने ब्रह्मचर्यको निभाया। राम-सीताकी सेवा अुन्होंने अनन्य निष्ठाके साथ की। लेकिन वह थे मनुष्य। अुन्हें सीताका ताना सहना ही पड़ा।

भरत भी अैसे ही आदर्श राजसेवक और राजभक्त थे। भरतसे अधिक श्रेष्ठ वाअिसरॉय (राज-प्रतिनिधि) दुनियामें किसीने नहीं देखा होगा। लेकिन वे भी मनुष्य ही थे। अिसीलिअे अुनके बारेमें तुच्छ कल्पना करके कैकेयीने दशरथसे राज्य माँग लिया। वे मनुष्य थे, अिसीलिअे कैकेयी अुनका अिस तरह अपमान कर सकी। खैर यह बात जाने दीजिये। आदर्शबन्धु लक्ष्मण भी अेक बार — अेक बार ही सही — भरतके बारेमें सशंक हो गये। मनुष्य-मनुष्यके बीच अिनकी अपेक्षा श्रेष्ठ सम्बन्ध कहाँसे लायें?

अिस तरह हार जानेके बाद, वाल्मीकिने मनुष्यकी मिट्टीको छोड़ बन्दरकी मिट्टी हाथमें ले ली और अुसमें से हनुमानको बनाया। और वहाँ वे सफल हो गये।

२

वाल्मीकिने हनुमानको वानर बनाया और बहुजन समाजके स्वभावमें रही हुअी वानरवृत्तिको जगा दिया। हनुमान वानर हैं, अिस बातको लेकर लोगोंने अैसी-अैसी कहानियाँ रच डालीं, जो वाल्मीकि-रामायणमें नहीं हैं। वाल्मीकि-रामायण, आध्यात्म-रामायण,

आनन्द-रामायण, अद्भुत-रामायण, सीता-रामायण, तुलसी-रामायण, कृत्तिवास-रामायण, कंबन-रामायण, मंत्र-रामायण, 'परन्तु'- रामायण, दाम-रामायण, आदि-आदि अनगिनत रामायणें हैं। जिस प्रकार रचयिताओंकी भूमिकाअें अलग अलग हैं, अुसी प्रकार हरअेकके अनुमान भी अलग अलग हैं। लोगोंको अुछल-कूद अच्छी लगती है। बालकोंको कृतिमें और बड़ोंको स्मृतिमें ही क्यों न हो — खेलकूद तो चाहिये ही। और अिसीलिअे लोगोंने हनुमानके नये-नये संस्करण निकाले हैं। अिस तरह हनुमाम लोकमान्य हो गये, लेकिन अिसके लिअे अुन्हें तकलीफ़ें भी कुछ कम नहीं अुठानी पड़ीं। अपने राजाको वचन-दुर्बल हुआ देखकर अुसे आड़े हाथ लेनेवाले सचिव हनुमान कहाँ और रावणकी नाकमें अपनी पूँछका बारीक छोर घुसेड़कर अुसे छिंकाछिंकाकर अुसके मुकुटको नीचे गिरानेवाले मर्कट हनुमान कहाँ? जिस तरह प्रजारंजक राजाको प्रजाकी बहुतसी बातें सहनी पड़ती हैं; प्रजासेवक लोकनायकोंको प्रजाकी भक्तिके नीचे बेहाल होना पड़ता है; लोकमानसमें जिस तरह महात्माओंके चित्रविचित्र संस्करण तैयार हो जाते हैं; अुसी तरह राष्ट्रीय या धार्मिक ग्रंथोंको — प्रजाके आदर्शोंको भी — लोकसुलभ विकृतियोंके कारण हैरान होना पड़ता है।

लेकिन अिसीमें अुनकी अुपयोगिता है। अिसीमें अुनकी सार्वभौम लोकमान्यता निहित है। अिसीमें आदर्शोंका चिरंजीवित्व है।

३

हनुमान अपनेको रामसेवक मानते थे। रामचन्द्रजीने कभी अपनेको हनुमान-स्वामी माना है? अुनके हृदयमें हनुमानजीके बारेमें कौनसा भाव रहा होगा? बुज़ुर्गीका? पितृ-वात्सल्यका? बन्धु-प्रेमका या कृतज्ञता-बुद्धिका?

नारदजीके मनमें अेक बार यही शंका अुत्पन्न हुअी। वे अुठे और चले रामसे पूछनेके लिअे। नारदजी तो स्वयं दुनियाके

सम्वाददाता ठहरे। औरोंसे प्राप्त हुअी खबरें अुनके काम नहीं आनेकी। अिससे अच्छा और क्या हो सकता है कि वे स्वयं जाकर अुनसे मुलाकात करें? लेकिन बेचारोंको अुसी दिन कड़ुवा अनुभव हुआ। द्वारपाल अन्दर ही न जाने देता। कहने लगा: 'महाराज रामचन्द्र पूजामें लगे हैं। अिस समय आप अन्दर नहीं जा सकते। पूजा पूरी होने दीजिये, फिर शौक़से अन्दर चले जाअिये।' आश्चर्यान्वित नारद ऋषि मनमें विचार करने लगे, 'राम तो प्रत्यक्ष परमेश्वर, त्रैलोक्यके स्वामी हैं। चारों वेद गाकर ब्रह्मा थक गये, लेकिन रामरहस्य न समझ सके। योगीराज शंकर हलाहल पी गये; अुस समय रामनामसे ही अुन्हें शांति मिली। अैसे ये भूतनाथ और शरण्य श्री रामचन्द्रजी और किसकी पूजा करते होंगे? नारदको अपमानकी अपेक्षा कुतूहल अधिक असह्य हो गया। अेक-अेक पल अुन्हें युगके समान दीर्घ मालूम होने लगा। आखिर अिजाज़त मिल गयी। अन्दर जाकर देखते क्या हैं कि कितनी ही सुवर्णकी मूर्तियाँ सामने रखकर रामचन्द्रजी आरती कर रहे हैं। तैंतीस करोड़में से यह कौनसे धन्य देवता हैं, जिनकी श्री रामजी अुपासना कर रहे हैं? नारदजी घूर-घूर कर देखने लगे।

अरे यह क्या? यह तो लक्ष्मणकी मूर्ति। यह रहे भरत। और अिनसे भी अूँची जगह बिठाये हुअे यह कौन हैं? यह तो भक्तराज हनुमान हैं। अहो आश्चर्य! अहो आश्चर्य! नारदने कितनी ही बार भगवान्के सहस्र नाम गाये थे, लेकिन 'भक्तके भक्त' यह अीश्वरका नाम अुन्होंने कभी सुना न था। और जब अुन्होंने हनुमानजीके पास ही खड़ी चोटीवाली छोटीसी मूर्ति देखी, तब तो बेचारे शरमके मारे पानी-पानी हो गये। और मुलाक़ातके सवाल बिना पूछे ही संच्छिन्न-संशय हो कर वहाँसे चलते बने।

मार्च, १९२९

हनुमान-जयन्ती

चैत सुदी १५ **१ दिन**

वच्चे और नवयुवक अिस त्यौहारको अपना निजी त्यौहार समझते हैं। रामभक्त, रामसेवक, बालब्रह्मचारी, 'बुद्धिमतां वरिष्ठ' हनुमान ही विद्यार्थियोंके आदर्श बन सकते हैं। श्रीरामचन्द्रजी अपना अवतार-कार्य समाप्त करके निज धामको चले गये, लेकिन निरपेक्ष निरलसतासे रामकार्य चलानेके लिअे हनुमानजी चिरंजीवी होकर पीछे ही रहे हैं। आर्य हनुमानके आदर्शसे विद्यार्थीगण आवश्यक प्रेरणा ले सकते हैं। अिस दिन स्कूलके कार्यक्रममें खेल, कसरत और ख़ासकर मलखम और कुश्ती रखनी चाहिये। समाजमें जाकर काम करनेका मौक़ा अगर मिल सके, तो अिस दिन किसी-न-किसी क्षेत्रमें सेवाका अुपक्रम करना चाहिये। जहाँ अखाड़े नही हैं, वहाँ अुनकी स्थापना करना, ग़रीब विद्यार्थियोंको गायका दूध मिल सके अिसलिअे चंदा अिकट्ठा करना आदि बहुत-कुछ किया जा सकता है।

अगर स्वास्थ्यके लिअे अनुकूल हो तो हनुमान-जयन्तीके दिन कोअी भी पका हुआ अन्न न खानेका कार्यक्रम रखा जा सकता है। भीष्माष्टमीकी तरह अिस दिन भी ब्रह्मचर्यकी महत्ताको विद्यार्थियोंके दिल पर अंकित करना चाहिये। यह बात अगर विद्यार्थियोंकी समझमें आ जाय कि कार्तिक स्वामी और हनुमान वज्रकाय सेनापति हो गये, अुसका कारण अुनका 'काया वाचा मनसा' ब्रह्मचर्य ही था, तो समझना चाहिये कि अिस त्यौहारका अुद्देश्य सफल हो गया। कहते हैं कि हनुमानको आकके फूल प्यारे लगते हैं। ब्रह्मचारियोंके लिअे तो अैसे ही फूल अच्छे हैं न?

वानरसेना अपना सम्मेलन अिस दिन रख सकती है।

परशुराम और बुद्ध

बैसाख सुदी ३

जिस तरह द्रौपदी और सीता दो अलग-अलग आदर्श हैं, अुसी तरह राम और कृष्ण भी अलग-अलग आदर्श हैं। प्राचीन कालसे अिन दो आदर्शोंके बीचका साधर्म्य और वैधर्म्य, साम्य और वैषम्य हम देखते आये हैं। अन्तमें हमने दोनों आदर्शोंका सार अपने जीवनमें अुतारकर अुन दोनोंमें समन्वय कर दिया है। जिस दिन हमने अिस प्रकारका समन्वय किया, अुसी दिन हमें 'रामकृष्ण' यह सामासिक नाम सूझा। राम ही कृष्ण हैं, शान्ता ही दुर्गा है, शिव ही रुद्र हैं, जनार्दन ही विश्वंभर हैं, यह जिस दिन हमें सूझा अुस दिन हिन्दू तत्त्वज्ञानमें समाधान पैदा हुआ; तात्त्विक खोजमें अेक पूर्ण विराम आया। पूर्ण विरामसे नया वाक्य शुरू होता है। दो आदर्शोंके विवाहसे नअी सृष्टि पैदा होती है।

परशुराम और बुद्ध दोनों विष्णुके ही अवतार माने जाते हैं। लेकिन क्या हम अुन्हें कभी कल्पनाके क्षेत्रमें भी पास-पास लाये हैं? परशुराम और बुद्ध ! दोनोंमें साधर्म्य या वैधर्म्यका क्या कुछ सम्बन्ध भी है?

परशुराम ब्राह्मण क्षत्रिय हैं; भगवान् बुद्ध क्षत्रिय ब्राह्मण हैं। परशुरामने ब्राह्मण होते हुअे भी मन्यु (क्रोध) को छूट देकर शरीरबल पर ही आधार रखा। शाक्यमुनिने राजवंशी होने पर भी क्षमाको प्रधानपद देकर आत्मिक बलका गौरव बढ़ाया। परशुरामको क्षत्रिय सत्ता प्रजापीड़क मालूम हुअी। अीश्वरने मनुष्यको दो ही बाहु दिये हैं, और वह भी अुद्योगके लिअे। क्षत्रिय अगर सहस्रबाहु बन जायँ और प्रत्येक बाहु शस्त्र धारण करे, तो

बेचारा दीन समाज जाये कहाँ ? क्षत्रिय रक्षा करनेके लिअे हैं। वे ही अगर प्रजाभक्षक बन जायँ तो प्रजाकी रक्षा कौन करेगा? परशुरामको लगा कि क्षत्रियका शास्ता ब्राह्मण है। बात तो सही है। लेकिन क्षत्रियका शासन करनेमें ब्राह्मणको अपना ब्राह्मण्य तो खोना ही नहीं चाहिये। परशुरामने हाथमें भारी परशु लेकर सहस्रबाहुके हाथ काटने शुरू किये। क्षत्रियोंका ज़ुल्म दूर करनेके लिअे अुन्होंने अिक्कीस बार अुन पर ज़ुल्म किया!!

परशुरामने क्षत्रियके सभी गुण प्राप्त कर लिये थे। क्षत्रिय यानी सिपाहीको अपने सरदारके हुक्मकी, अेक क्षण भी विचार किये बिना, तामील करनी चाहिये। मातृभक्त परशुरामने पिताका हुक्म होते ही अपनी माताका शिरच्छेद किया। ब्राह्मण तो अैश्वर्यसे दूर ही रहता है। जो क्षत्रिय होगा, वही पृथ्वीको जीत लेगा और अुसका दान करेगा। परशुरामने भी त्यागका नहीं किन्तु 'जीत और दान' का ही रास्ता पसन्द किया।

अब बुद्धको देखिये। अुन्होंने राज्यका त्याग ही किया। अपनी शान्तिके द्वारा मार पर विजय प्राप्त की। करुणाका प्रचार किया। परशुरामके कारण क्षत्रिय भयभीत हो गये और अुन्होंने आत्मरक्षाके लिअे संघबलका साम्राज्य स्थापित किया। भगवान् बुद्धके कारण अुनके शिष्य निर्वैर हो गये और अुन्होंने अभयका साम्राज्य स्थापित किया।

परशुरामके सद्भावका प्रभाव अुनके समयमें चाहे जितना हुआ हो, मगर आज वह नहीं के समान ही है। परशुरामके कारण साम्राज्यकी कल्पना अुत्पन्न हुअी। साम्राज्यकी कल्पनाने दिग्विजयका मोह पैदा किया और दिग्विजयकी कल्पना यानी निरन्तर विग्रह। जैसा कि भगवान् बुद्धने धम्मपदमें कहा है, 'जीत कलहका मूल है।' क्योंकि पराजित व्यक्तिके हृदयमें अपमानका शल्य चुभता रहता है, अुसे नींद भी मुश्किलसे आती है; और वह दुनियाको चैन नहीं लेने देता।

जयं वेरं पसवति दुक्खं सेते पराजितो।
अुपसंतो सुखं सेति हित्वा जय पराजयं॥

भगवान् बुद्धका प्रभाव परशुरामकी अपेक्षा अधिक गहरा भी हुआ और अधिक व्यापक भी। परशुरामका मार्ग हिंसाका था; और बुद्ध भगवान्का अहिंसाका। हिंसामें वीर्य नहीं है। हिंसाने आज तक न तो किन्हीं अच्छे तत्त्वोंका नाश किया है और न किन्हीं बुरे तत्त्वोंका ही। हिंसाने जिस तरह दुष्ट लोगोंके शरीरका नाश किया है, अुसी तरह सज्जन लोगोंके शरीरका भी अुतना ही नाश किया है। लेकिन दुनियामें रही हुअी सज्जनता और दुर्जनता हिंसासे अस्पृष्ट ही रही है।

अहिंसाकी विजय स्थायी होती है; बशर्ते कि वह राजसत्ताकी मददके बिना हुअी हो। सत्य और सत्ता परस्पर विरोधी हैं। जब-जब सत्यने सत्ताकी मदद ली है, तब-तब सत्य अपमानित हुआ है और पंगु बना है। सत्यका शत्रु असत्य नहीं है, असत्य तो अभावरूप है, अंधकाररूप है। सत्यको असत्यके साथ लड़ना नहीं पड़ता। जहाँ सत्यका प्रकाश नहीं पहुँचा है, वहीं असत्यका अंधकार रहता है। असत्यका स्वतंत्र अस्तित्व ही नहीं है। सत्यका शत्रु है सत्ता। परशुरामने सत्ताके द्वारा — बलके प्रभावके द्वारा — सत्यका यानी न्यायका प्रचार करना चाहा। बुद्ध भगवान्के अनुयायियोंने भी जब साम्राज्यकी प्रतिष्ठाके जरिये सत्यका प्रचार करना चाहा, तब सत्य लज्जाके कारण संकुचित हो गया।

अब समय आ गया है कि जब परशुरामकी न्यायनिष्ठा और बुद्ध भगवान्की अवैर-निष्ठाका मिलन होना चाहिये। मनमें जरा भर भी द्वेष या विष रखे बिना अन्यायका प्रतिकार करना और सत्ताके साथ लड़ना, यही आजका युगधर्म है। क्या यही सत्याग्रह नहीं है?

१९२२

अक्षय तृतीया

बैसाख सुदी ३ **आधा दिन**

अक्षय तृतीया कृतयुगके आरम्भका दिन है। अिस दिन सत्य और अहिंसाकी मीमांसा की जाय। किसानोंका वर्ष अिस दिनसे शुरू होता है। अिसलिअे श्रमजीवनके महत्त्वका आज निरूपण किया जाय। अक्षय तृतीयासे पेड़ोंको नियमित रूपसे पानी देनेकी ओर विशेष ध्यान देना चाहिये। खेतीसे सम्बन्ध रखनेवाला कोअी कार्यक्रम अगर अिस दिन रखा जा सके तो अच्छा हो।

श्रमजीवी, बुद्धिजीवी, पूँजीजीवी और भिक्षाजीवी लोगोंके जीवनके तारतम्यके बारेमें अिस दिन खूब विवेचन किया जाय।

हर अमावसके दिन समुद्रमें ज्वार आता है, लेकिन कहते हैं कि चैतकी अमावसके बाद आनेवाली अक्षय तृतीयाका ज्वार और सब ज्वारोंसे कहीं बढ़ा-चढ़ा होता है।

यही दिन परशुराम-जयन्तीका भी है। परशुरामका चरित्र जाननेके बाद ही श्रीरामचन्द्रजीके अवतारका रहस्य ध्यानमें आ सकेगा।

ब्राह्मण और क्षत्रियोंके बीचके झगड़े मिटाकर दोनोंको विश्व-कल्याणकी ओर मोड़नेका कार्य श्रीरामचन्द्रजीने किया। लेकिन ये झगड़े किस प्रकारके थे, कहाँ तक चलते रहे, आदि सब बातें हमें परशुरामकी जीवनीसे ही मिल सकेंगी। क्षत्रिय-रक्तसे अनेक कुण्ड भरनेवाले परशुराम ब्राह्मण धर्मका अधःपात सूचित करते हैं।

धर्ममणि श्री शंकराचार्य

बैसाख सुदी १०

अिस कलिकालके याज्ञवल्क्य और व्यास अगर कोअी हैं, तो वे हमारे श्री शंकराचार्य। लेकिन अुनका जीवन-मंत्र था : 'मुहूर्तं ज्वलितं श्रेयः न च धूमायितं चिरम्।' (अेक घड़ीके लिअे जलते रहना अच्छा है, न कि चिरकालके लिअे धुआँ अुगलते रहना।) बत्तीस बरसकी अुम्रमें हिमालयकी पवित्र भूमिमें अपना तपःपूत कलेवर छोड़कर परमात्मामें विलीन होनेवाले अिस संन्यासीकी विभूति हिमालयसे तनिक भी कम न थी। हिमालयकी शोभाके साथ — जहाँ काले पत्थर और सफ़ेद बरफ़को छोड़कर कुछ मिलता ही नहीं — शंकराचार्यके अद्वैत वेदान्तके तत्त्वज्ञानकी ही तुलना की जा सकती है। वनस्पतिके लिअे जहाँ अवकाश ही नहीं, अुस हिमालयसे ही जिस तरह वनस्पति-सृष्टिकी और फलतः प्राणीमात्रकी मातायें सिन्धु, सतलज, गंगा, यमुना, सरयू और ब्रह्मपुत्रा जैसी छोटी-मोटी असंख्य नदियाँ निकलती हैं और देशको समृद्ध करती हैं, अुसी तरह शंकराचार्यके अद्वैत सिद्धान्तसे ज्ञान, भक्ति, कर्म और अुपासनाकी नदियाँ बहती हैं और हिन्दूधर्मको आजका यह बहुरूपी समृद्ध और संगठित रूप देती हैं।

शंकराचार्यके जीवनमें करुण और अद्भुत, वीर और शान्त अनेक रस भरे हुअे हैं। अुनकी मातृभक्ति अुनकी प्रखर ज्ञाननिष्ठासे जरा भी कम नहीं थी। वासनाओं पर विजय पानेवाला यह वैराग्य-वीर हृदय-धर्मसे बेवफ़ा नहीं हुआ था।

दूरदर्शी लोगोंने कायर होकर जिस संन्यास-धर्मको हिन्दूधर्मसे रुख़सत दी थी, अुसी संन्यास-धर्मका शंकराचार्यने पुनरुद्धार और प्रचार किया। अितना ही नहीं, किन्तु संन्यासियोंके अलग-अलग दस पंथ भी स्थापित किये। आगे जाकर संन्यासियोंके रूढ़ धर्मको ताक पर रखकर अुन्होंने स्वयं अपनी माताके अंतकालके अवसर पर अुसकी सेवा

की और अुसका श्राद्ध भी किया। भेदमात्रका नाश करने पर भी भक्तिमार्गकी आर्द्रतासे अुन्होंने हिन्दूधर्मको सजीव रखा। और अिस दुनियाको मायारूप करार देने पर भी अिसी दुनियाकी धर्मसंस्थाको संशुद्ध किया —— अुसका संगठन किया।

पुरी, बदरीनारायण, द्वारका और शृंगेरी अिन चार कोनोंमें चार मठोंकी स्थापना करके शंकराचार्यने धर्मका अध्ययन, अुसका प्रचार और धर्मव्यवस्थाकी रचना प्रचलित की। यह दुःखकी बात है कि हम लोग शंकराचार्यके वेदान्तके दार्शनिक और तार्किक पहलुओंका ही अध्ययन करते हैं। अद्वैत यानी अमीर व ग़रीबके बीचका अभेद, पापी और पुण्यवानके बीचका अभेद, स्त्री और पुरुषके बीचका अभेद, जीवात्मा और परमात्माके बीचका अभेद, तमाम प्रतिष्ठित और अप्रतिष्ठितोंके बीचका अभेद —— अद्वैतके अिस पहलूके महत्त्व पर हम लोग ध्यान नहीं देते। अद्वैतके सिद्धान्त पर रचा हुआ समाजशास्त्र अब तक हमने कहाँ खड़ा किया है?

मायावादके परिणामस्वरूप अपनी जिम्मेदारीको भूल जानेके बदले लोग अगर अपने दुःखको भूल जायँ, अपनी कायरताको भूल जायँ, औरोंके किये हुअे अपकार और अपमानको भूल जायँ और अैसा समझें कि यह सब मायारूप है, तो कितना अच्छा हो! सबकी आत्मा अेक ही है, अिसके बारेमें जिन्हें शक नहीं है, अुन्हें अब यह भी जान लेना चाहिये कि सबका मन और हृदय भी अेक ही है। मनुष्य-जाति अगर अितना जान ले कि सुख-दुःख, हित-अहित, अुन्नति-अवनति आदि सभी हालतोंमें हम दुनियाके साथ बँधे हुअे हैं, अेकरूप हैं, तो अैहिक और पारलौकिक दोनों मोक्ष संपन्न होंगे। अिस दृष्टिसे देखा जाय, तो शंकराचार्यका मिशन या जीवन-कार्य अिसके बाद शुरू होनेवाला है।

गंगाके किनारे अुत्तराखंडमें जो श्रीनगर है, अुसे सिद्धपीठ कहा जाता है। अिस जगह की हुअी साधना व्यर्थ नहीं जाती और शीघ्र

फलदायी होती है। देवी-भागवतमें अिस स्थानका बहुत महत्त्व बताया है। पहले यहाँ अेक अैसे पत्थरकी पूजा होती थी, जिस पर श्रीचक्र खुदा हुआ है। कहते हैं कि अिस स्थान पर प्राचीन कालमें प्रतिदिन अेक नरमेध होता था। आद्य शंकराचार्य जब श्रीनगर गये, तब मनुष्य-वधका यह अनाचार देखकर अुनकी धर्म-भावना अुबल पड़ी। अुन्होंने अेक सब्बल लेकर श्रीचक्रके पत्थरको औंधा कर दिया, और आज्ञा दी कि आजसे नरमेध बन्द!

प्रस्थानत्रयीके अूपर भाष्य लिखकर और नितान्त रमणीय स्तोत्र लिखकर शंकराचार्यने हिन्दूधर्मकी जो सेवा की है, अुससे नरमेध बन्द करनेकी यह सेवा कहीं बढ़कर है, अिसके बारेमें क्या किसीको शक हो सकता है? भाष्य लिखनेके लिअे बुद्धि-वैभवकी आवश्यकता होती है। स्तोत्रोंके लिअे भक्ति न होकर केवल कल्पना-अल्लास ही हो तो भी काफ़ी है। लेकिन धर्मान्ध समाजके खिलाफ जाकर प्राचीन कालसे चलती आयी घातक रूढ़िको अेकदम बन्द कर देनेके लिअे तो तपस्तेज, धर्मनिष्ठा और हृदय-सिद्धि ही चाहिये।

नरमेध बन्द करानेकी यह कहानी जबसे मैंने सुनी है, तबसे शंकराचार्यकी वह नाटी और मोटी मूर्ति — गेरुअे वस्त्र, रुद्राक्षमाला और भस्म-विलोपनसे मंडित और आगलात् मुण्डित मूर्ति — आँखोंसे ओझल ही नहीं होती। निर्दय शाक्त कर्मकाण्डी ब्राह्मण चारों तरफ़ हाहाकार मचा रहे हैं, और अुनके बीच हाथमें सब्बल लेकर अिस तेजस्वी संन्यासीकी मूर्ति खड़ी है। अेक भी कर्मवीर पास आनेकी हिम्मत नहीं करता। और ये ज्ञानवीर तपस्वी थरथराते हुअे होठोंसे याज्ञवल्क्यकी तरह अेक-अेकको या सभीको मिलकर शास्त्रार्थके लिअे आह्वान देते हैं। लेकिन किसीकी बुद्धिप्रभा अिस धर्ममूर्त्ति दिग्विजयी संन्यासीके सामने प्रकाश नहीं कर सकती। याज्ञवल्क्यकी तरह वे गरज रहे हैं कि, ‘ब्राह्मणा भगवन्तो यो वः कामयते स मा पृच्छतु,

सर्वे वा मा पृच्छत, यो वः कामयते तं वः पृच्छामि, सर्वान् वा वः पृच्छामीति। ते ह ब्राह्मणा न दधृषुः।'

भेदमें अभेद रखनेकी गीताकी शिक्षाको शंकराचार्यने हम हिन्दुओंकी अुपासनामें भी पूरी तरह बुन लिया। तैंतीस करोड़ देवी-देवताओंसे भी न अघानेवाले हमारे लोगोंने आर्य-अनार्य, स्वदेशी-विदेशी, नया-पुराना, भला-बुरा, देव-पीर, भूत-प्रेत आदि अनेक अुपास्योंकी खिचड़ी पका रखी है। अिन सबमें से पाँच देवोंका आयतन बनाकर अुन्होंने यह करार दिया कि बाकी सभी देवी-देवता अिन पाँचोंके ही अवतार हैं। और अिस तरहकी व्यवस्था कर दी कि अिन पाँचोंमें से चाहे जिस अिष्टकी पूजा करो, लेकिन अुसके आसपास बाकीके चार देवताओंको बिठाने पर ही पूजा हो सकेगी।

पंचायतन-पूजाके द्वारा सब देवोंके समन्वयका और अभेदका अुन्होंने जबसे सूचन किया, अुसी दिनसे हिन्दू-अुपासना-पद्धतिमें समन्वय दाखिल हुआ और विग्रह मिट गया। सर्वसमन्वय और अभेद यह श्री आद्य शंकराचार्यकी हिन्दूधर्मको बड़ी-से-बड़ी भेंट है।

२५–५–'३८

RAMAKRISHNA MISSION LIBRARY
MUTHIGANJ ALLAHABAD

शंकर-जयन्ती

बैसाख सुदी १० **आधा दिन**

अद्वैत सिद्धान्तकी दार्शनिक दृष्टिसे यह त्यौहार नहीं मनाना है। यह अिस तरह मनाना चाहिये जिससे कि सभी सम्प्रदायके लोग अिसमें हिस्सा ले सकें। श्री शंकराचार्यकी मातृभक्ति, धर्मनिष्ठा, अीश्वरपरायणता, शास्त्राध्ययन और हिन्दूधर्ममें नयी व्यवस्था लानेकी अुनकी शक्ति, आदि बातोंके कारण अुनका कार्य अखिल जनताके लिअे शिक्षाप्रद हो गया है। अिस दिन शंकराचार्यके तथा औरोंके भी बनाये हुअे सुन्दर-सुन्दर स्तोत्र गानेका और अुन पर विवेचन करनेका कार्यक्रम रखा जाय। अिस दिनका यह प्रधान कार्यक्रम होना चाहिये कि सामाजिक और राष्ट्रीय अद्वैतकी दृष्टिसे ब्राह्मणसे लेकर अन्त्यज तक सबकी आत्मा अेकसी है, अिसके बारेमें विवेचन किया जाय। अिसके बारेमें तो मतभेद होगा ही नहीं कि अीश्वरकी अुपासना ही सत्य है और जगत्की अुपासना मायामोह है।

अिस दिन मोहमुद्गर स्तोत्र गाया जाय और अुसके प्रसंगका वर्णन किया जाय।

बोधि-जयन्ती

१. बोधिप्राप्ति

बैसाख सुदी पूनम

महाप्रयाससे कोलम्बसने अमेरिका जानेका रास्ता खोज निकाला। अब हमें वह प्रयास नहीं करना पड़ता। महाप्रयाससे भगीरथ गंगा ले आये। हमें अब वह मेहनत नहीं अुठानी पड़ती। अेक व्यक्तिने प्रयास किया; सारी दुनियाका लाभ हुआ। कृतज्ञतापूर्वक अुसका स्मरण करना, अुसका श्राद्ध करना, अिससे ज्यादा हमारे लिअे कुछ करनेको बाकी नहीं रहता।

अिस भवचक्रमें से छूट जानेका रास्ता बैसाख सुदी पूर्णिमाके दिन शाक्यमुनि गौतमने खोज निकाला और वह बुद्ध हो गये। अब हमें चिन्ता करनेका कुछ कारण नहीं है। हमारा काम तो सिर्फ़ अितना ही है कि बुद्ध भगवान्का स्मरण करके अुनके बताये हुअे 'अष्टांगिक' नामके राजमार्ग पर सीधे चलें। अगर श्रद्धा हो और रास्ता बतानेवाले अिस ऋषिका तर्पण या श्राद्ध किया जाय तो अधिक अच्छा! लेकिन मोक्षका मार्ग, निर्वाणका मार्ग और स्वर्गका राज्य प्राप्त करनेका साधन अितना आसान नहीं है। वेदकालके ऋषियोंने यह रास्ता खोज निकाला था, फिर भी शाक्यमुनि और महावीरको अुसे फिरसे खोजना पड़ा। 'महता कालेन' यह रास्ता बार-बार नष्ट होता है और बार-बार अुसे खोजना पड़ता है। युगकी तो बात ही क्या, परमेश्वरको व्यक्ति-व्यक्तिके हृदयमें स्वतंत्ररूपसे अवतार लेना पड़ता है, बोधिको प्रकट करना पड़ता है; और अुससे पहले हरअेक व्यक्तिको मारके साथ लड़ना पड़ता है। शैतानके साथ झगड़ना पड़ता है। प्रत्येक व्यक्तिके मार्गमें काम-क्रोधादि परिपंथी (बटमार) हैं ही। अुनके साथ झगड़े बिना योग नहीं प्राप्त होता, बोधि नहीं

मिलती। हरअेकको स्वयं यह अमृतकुंभ प्राप्त कर लेना चाहिये। वह जब तक न मिले तब तक अुसे सावधान रहना चाहिये। जिस तरह बुद्ध भगवान्ने मारके साथ युद्ध किया, अुसी तरह हरअेकको लड़ना चाहिये। भगवान् बुद्ध जिस तरह,

'अिहासने शुष्यतु मे शरीरं त्वगस्थिमांसं प्रलयं च यातु।'

[अर्थात्: अिसी आसन पर बैठे-बैठे मेरा शरीर सूख जाय, और हड्डियों और मांसका लय हो जाय।] के निश्चयसे बोधि (ज्ञान) प्राप्त करनेके लिअे बैठ गये थे, अुसी तरह हरअेकको बैठ जाना चाहिये। जिस तरह बुद्ध भगवान्को बोधि मिल गअी और वे तृष्णा-विरहित हो गये, अुसी तरह हरअेक व्यक्तिके लिअे मोक्ष प्राप्त करनेका मार्ग खुला है। अुस मार्ग पर चलना प्रत्येक व्यक्तिका कर्तव्य है, और जब अुस मार्गसे हमें बोधि मिलेगी, तभी हमारे हृदयमें, हमारे जीवनमें बोधि-जयन्तीका सच्चा अुत्सव होगा। अुस समय तक विश्वासको दृढ़ करनेके लिअे, श्रद्धा-वृक्षका सिंचन करनेके लिअे, बुद्ध भगवान्की बोधि-जयन्तीका हम स्मरण करें।

मअी, १९१८

२. भगवान् बुद्ध

१

हिमालयकी तराअीमें, नेपालकी हदमें, कपिलवस्तु नामका अेक छोटासा राज्य था। वहाँ कोअी राजा न था। वहाँके शाक्य लोगोंमें जो थोड़े-से बड़े-बड़े घराने थे, अुनके बुज़ुर्ग मिलकर अपना वह छोटा-सा राज्य चलाते थे। अिन बुज़ुर्गोंको 'राजा' कहते थे। राजा शुद्धोदन अिन्हींमें से अेक था। शुद्धोदनको बड़ा सम्राट् बननेकी जबर्दस्त अभिलाषा थी।

अिस राजाकी रानी मायादेवीने अेक पुत्रको जन्म दिया। राजाने आगम करवाया। ज्योतिषीने कहा, 'राजन्, तुम्हारे भाग्यका पार नहीं है। तुम्हारा यह लड़का या तो सारी पृथ्वीका सम्राट् होगा या फिर धर्म-सम्राट्। अिसके दिलमें अगर वैराग्य पैदा हो जाय, तब तो यह धर्म-सम्राट् ही होगा।'

राजाने पूछा, 'वैराग्य किन कारणोंसे अुत्पन्न होता है?' बुद्धिमान जोशीने कहा, 'जन्म, जरा, व्याधि और मृत्युका दुःख देखनेसे।'

राजाने निश्चय किया कि तब तो हम भविष्यको परास्त कर देंगे। लड़केको अिस तरह रखेंगे कि वह अिन चार चीज़ोंको देखने ही न पायेगा। गरमीके दिनोंका महल अलग, जाड़के दिनोंका अलग और चौमासेका तो अिनसे भी जुदा होगा। घरमें कोअी बीमार, बूढ़ा या अुदास नौकर नहीं मिलेगा। राजमहलके बगीचेके पेड़ों पर मुरझाया हुआ फूल या पीला पत्ता तक नहीं दिखायी देगा, सब तरफ सुगंध, संगीत और काव्य-साहित्य ही होगा — अिस तरह अिसे पालूँगा।

पुत्र गौतम अिस स्थितिमें रहा। लेकिन अिस प्रकारके सुखसे क्या कोअी सुखी हो सकता है? अुसका जी अिन सारी चीज़ोंसे अुकता गया। बचपनसे ही वह विलक्षण बुद्धिमान था और कअी बार वह गहरे विचारमें डूब जाता। पिताने सोचा कि लड़केका विवाह किया जाय, तो वह ठिकाने आ जायगा। लड़केने भी अुसे स्वीकार किया। अेक स्वयंवरमें जाकर वहाँ अपना युद्ध-कौशल्य, बुद्धि-कौशल्य और कला-कौशल्य सिद्ध करके यह सिद्धार्थकुमार रूप-रमणी यशोधराको ब्याह लाया। पिताने सोचा कि अब बेटा विलासमें डूब जायगा, लेकिन बेटा तो विचारमें डूब गया। अुसके दिलमें यह सवाल अुठने लगा कि 'यह दुनिया क्या है? जो कुछ आसपास है, वह सब खोखला मालूम होता है।' लड़केने पितासे यह माँग की कि मुझे सच्ची दुनिया देखनी है। बाप सहम गया। अगर ना कहे, तो बेटेको दुःख होगा और अुस दुःखसे ही शायद अुसके दिलमें वैराग्य पैदा हो जाय। और अगर हाँ भरे, तो भगवान् जाने क्या होगा।

बापने सारे शहरको सजवाया और ढिंढोरा पिटवाया कि कोअी भी वृद्ध या अशक्त मनुष्य बाहर न निकले। लेकिन बेटेको तो सच्ची दुनिया देखनी थी। वह सब जगह घूमा, सब कुछ देखा। दरवाज़े पर आते ही अुसने शहरके बाहर रथ हाँकनेको सारथिसे कहा। वहाँ अुसने अेक दुबले, अपंग और दुःखसे पीड़ित वृद्ध पुरुषको देखा। अुसे देखकर अुसने सारथिसे पूछा, 'छन्न! यह क्या है?' सारथिने समझाया, 'महाराज, यह बूढ़ा है, बीमार है और दुःखी है। थोड़े दिन बाद यह मर जायगा।'

कुमारने पूछा, 'सो क्यों?'

छन्न बोला, 'महाराज, यह संसारका नियम ही है। जितनोंने जन्म लिया है, अुन सब पर रोग, दुःख, बुढ़ापा और मृत्यु तो आयेंगे ही। वे अटल हैं। सारे संसारकी यही हालत होगी।'

'और क्या अिसकी कोअी दवा नहीं है?' कुमारने सवाल किया।

जन्म, मृत्यु, जरा और व्याधिका यह दर्शन कुमारके हृदयमें तीरकी तरह चुभ गया। अगर बचपनसे ही वह ये सब बातें देखता रहता, तो हमारी तरह अुस कुमारका हृदय भी कठिन हो जाता। लेकिन आज तक जो कभी नहीं देखा था, वह अेकाअेक देखनेमें आया। अिसलिअे वह अुस कुमार-हृदयको असह्य हो गया। अुसी क्षण अुसने मन-ही-मन निश्चय किया कि "अिस दुःखमें रहनेमें कोअी पुरुषार्थ नहीं। जबकि सारा जन-समाज दुःखमें डूबा हुआ है, तब अिसकी कुछ-न-कुछ दवा तो होनी ही चाहिये। और अुसे मैं खोजकर ही रहूँगा। अरे, जब कि सारा देश अिस प्रकारके दारुण दुःखमें जल रहा है, तब फिर भोग-विलास कैसा? स्त्रीके साथ प्रणय कैसा? पुत्रका मोह कैसा? (कुमारको अिस बीच अेक पुत्र भी हुआ था।) जिसका मैं अुद्धार नहीं कर सकता, अुसका अुपभोग मैं क्योंकर करूँ? मैंने अपने ये सत्ताअीस साल मुफ्त गँवाये।"

कुमारके हृदयमें वैराग्यने प्रवेश किया और अुसने अपने घर, राज्य, पत्नी यशोधरा और पुत्र राहुल — सबका त्याग किया। पिता रोते थे, माता मायादेवी तो अुसके जन्मके सातवें दिन ही मर गयी थीं, सौतेली माँ महाप्रजापतिने — जो अुसकी मौसी भी लगती थी — तो रो-रोकर आक्रन्दन किया। लेकिन कुमार जो घर छोड़कर गया सो गया ही।

अनोमा नदीके किनारे जाकर कुमारने अपने माथे परसे लम्बे लम्बे सुन्दर बाल अुतार दिये। रेशमके नाजुक बहुमूल्य वस्त्र फेंक दिये। अपने प्यारे कंथक घोड़ेसे बिदा ली और महा-भिनिष्क्रमण किया।

पहले-पहल भिक्षा माँगकर लाया, तो रातके बासी और बिलकुल सूखे हुअे रोटीके टुकड़े गलेके नीचे अुतरते ही न थे।

राजविलासी जीवन और तपस्वी जीवनके बीच दारुण युद्ध शुरू हो गया। लेकिन अेक ही क्षणमें वह खतम भी हो गया। अुसके बाद फिर कभी अिस प्रकारकी कठिनाओीका अुसे भान नहीं हुआ।

गुरुकी खोजमें अनेक दिन बिताये। अुस समयके समाजसे और शास्त्रोंमें से जितना कुछ मिल सका, अुतना ले लिया; जितना अपना सका, अुतना अपना लिया; फिर भी शान्ति न मिली। अैसी दवा भी हाथ नहीं आयी, जिससे दुनियाको शान्ति दिलायी जा सके। भाँति-भाँतिके योग शुरू किये, देह-दंडन किया; लेकिन कोओी थाह नहीं पायी।

अन्तमें बिहारके धन्य प्रदेशमें, निरंजना नदीके किनारे, वह अनशन व्रत लेकर बैठ गया। दिमागमें विचार तो भट्ठीकी तरह धधक रहे थे। अशुद्ध विचार जलने लगे, विश्वका रहस्य पिघलने लगा और तपस्वीको निश्चय हो गया कि अिसके बादकी यात्रा — अनुभवकी यात्रा — अिस तरहके काया-क्लेशसे, देहको दुःख देनेसे, होनेवाली नहीं है। बल्कि सुख और दुःखको छोड़ बीचकी जो समान स्थिति होती है, अुसीको धारण करनेसे आगे बढ़ा जा सकेगा।

तपस्वीने फिरसे आहार शुरू किया। आसपास जमा हुअे साधकोंने सोचा, तपस्वी हार गया, ढीला पड़ गया, अब अिसके साथ रहनेमें कोओी लाभ नहीं। अुसे छोड़कर सब चले गये। लेकिन तपस्वी तो आगे बढ़ता ही चला जाता था।

अंतमें कसौटीकी घड़ी आ गयी। महायुद्ध ठन गया, मनुष्य-जातिके शत्रु, हृदय-स्वामीके प्रतिस्पर्धी और कुटिल तर्कोंके आद्यगुरु 'मार'ने अपना दस प्रकारका सारा दलबल अिस दयामय विश्वबन्धु पर छोड़ा।

अहोभाग्य अिस मनुष्य-जातिका कि अन्तमें वैशाख पूर्णिमाकी अुस रातमें 'मार'की हार हुओी और सिद्धार्थ यथार्थमें सिद्ध-अर्थ हो गये — तथागत बुद्ध बन गये।

२

जिसने अपना अुद्धार किया है, वही दुनियाका अुद्धार कर सकता है; जो स्वयं जगा हुआ है, वही दुनियाको जगा सकता है — 'बुद्ध' यानी 'जगा हुआ'। जिस क्षण सिद्धार्थ 'मारजित' हुअे, अुसी क्षण सारे विश्वका रहस्य अुनकी दृष्टिके सामने खुल गया और वे लोकजित होनेके योग्य हो गये।

अुन्होंने देख लिया कि हम देहधारी हैं, अिसलिअे अुस हद तक प्रकृतिके नियमोंके अधीन हैं ही। प्रकृतिका दुःख अटल भले ही हो, लेकिन असह्य नहीं है। जन्म, जरा, व्याधि, मरण, प्रिय वस्तुओंका वियोग और अप्रिय वस्तुओंका संयोग — ये छः तो हमेशा चलते ही रहेंगे। विवेकसे अुसके स्वरूपको समझ लें, तो अुसका दुःख कम होता है। दुनियाका सबसे बड़ा दुःख तो हम स्वयं ही पैदा करते हैं। कभी न बुझनेवाली तृष्णा ही हमें दुःखमें डुबो देती है और हमें अनन्तकाल तक दुःख-रसमें डालकर हमारे सारे जीवनका कड़वा अचार बना देती है।

जब तक यह तृष्णा नहीं मरेगी, तब तक हमारे दुःखका अन्त नहीं होगा। और अेक बार यह तृष्णा मर गयी, तो फिर दुःखका कुछ कारण ही नहीं रहता। अिसके बाद जो स्थिति रहेगी, वही हमारी विरासत है। वह स्थिति कैसी होगी, अिसकी चर्चा आज किसलिअे करें? रोग मिट जानके बाद क्या होगा?

क्या होना था? — कल्याण ही।

अिस स्थितिका नाम है निर्वाण। मुक्ति पाये हुअे सभी जीवोंका यही धाम है।

लेकिन यह ज्ञान सुनेगा कौन? यह दवा लेगा कौन? अिस रास्ते जायगा कौन? सारी दुनिया तृष्णाके पीछे पड़ी है। तृष्णाका नाच तो चलता ही रहेगा। अरेरे! तो फिर क्या किसीका अुद्धार

होगा ही नहीं? अितने परिश्रमसे जिसे प्राप्त किया, वह दवा क्या अकारथ ही जायगी?

अुस करुणामूर्तिने फिरसे विचार किया। प्रसन्न हृदयमें से जवाब मिला कि "जो शुभ-संस्कारी हैं, अुनके प्रति मैत्रीभाव रखा जाय; जो वैभवशाली हैं, अुनकी तरफ़ मुदिताका स्वीकार किया जाय, यानी अुनके सुखको देखकर हम खुश हों; जो दुःखी अथवा दुःस्थित हैं, अुनका तिरस्कार करनके बदले अुनके प्रति करुणा-भाव रखा जाय; और जो दुष्ट प्रवृत्तिके हैं, हर जगह जो द्रोह ही फैलाते हैं और अकारण वैर रखते हैं, अुनके प्रति द्वेषके बदले कुछ नहीं तो अुपेक्षा भाव रखा जाय, तो सारी दुनियामें विजय ही है।"

ये चार वृत्तियाँ ही ब्रह्माके चार मुख हैं। अिन चारों मुखोंमें ही चारों वेद समाये हुअे हैं। यह देखकर बुद्ध भगवान् दुनियाकी सेवा करने निकले। और धर्मचक्र घूमने लगा।

३

जिनसे क़र्ज़ लेकर अितना ज्ञान प्राप्त किया, अुनके बोझसे प्रथम मुक्त हो जाना चाहिये। बुद्ध भगवान्‌को आहार करते देख जिन शिष्योंने अुनका त्याग किया था, अुनके पास सबसे पहले वे गये। और अुन्हें ज्ञान देकर कृतार्थ किया। फिर क्या था? हरअेक दुःखी मनुष्य अुनके पास आने लगा। जोगी आये और जती आये; अमीर आये और ग़रीब आये; अैसे अभिमानी गुरु आये, जिनके पीछे हज़ारों शिष्य थे। और अैसे दुर्बल भी आये, जिनके पीछे अुनका अपना मन या शरीर भी नहीं जाता था।

संघ बढ़ गया और संघकी सेवा करनेवाले लोग भी बढ़ गये। बड़े-बड़े विहार बनाये गये, बड़े-बड़े राजा लोग बुद्ध भगवान्‌की सलाह लेने आने लगे और प्रजाके नेता भी अुन्नतिके मंत्र सुननेके लिअे अुनके पास आने लगे। यक्ष, गंधर्व, किन्नर सबको निर्वाणका रास्ता मिल गया और धर्मचक्र पूरे वेगके साथ घूमने लगा।

RAMAKRISHNA MISSION LIBRARY MUTHIGANJ ALLAHABAD

४

बेचारी यशोधराका क्या हुआ होगा? राहुलको कौन लाड़-प्यार करता होगा? राजा शुद्धोदनके दूसरा लड़का हुआ था, लेकिन वह सिद्धार्थको कैसे भूल सकता? अपने बेटेकी कीर्ति सुनकर अुसे बुलानेके लिअे राजाने अेक दूतको भेजा। लेकिन वह दूत वापस आवे तब न? वह तो शिष्य बनकर संघमें दाखिल हो गया। दूसरा दूत गया, अुसकी भी यही हालत हुअी। अब तीसरा कौन जायगा? आखिर वृद्ध अमात्य स्वयं गये। भगवान्‌के सत्संगका अेक साल तक लाभ अुठानेके बाद अुन्हें राजाका सन्देशा याद आया और वे बुद्ध भगवान्‌को अपने पिताके पास ले गये। बुद्धने चिरविधुरा यशोधरा, बालक राहुल और वृद्ध शुद्धोदन आदि सबको अुपदेश किया और स्वयं भिक्षाके लिअे निकल पड़े। कितनी शरम और नामूसीकी बात है कि राजाका बेटा दर-दर भीख माँगने जाता है! राजाने कहा, 'बेटा अपनी कुल-परम्परामें भिक्षा नहीं है।' बेटा बोला, 'राजन्, आपकी कुल-परम्परा अलग है। मेरी कुल-परम्परा बोधिसत्वोंकी है। वे हमेशा ग़रीबोंके साथ रहते आये हैं और लोगोंका स्वेच्छासे दिया हुआ भिक्षान्न ही खाते आये हैं।'

५

महाप्रजापतिने विचार किया कि बहन तो बेटेको जन्म देकर मर गयी। अुस दिनसे मैंने सिद्धार्थको पाला-पोसा और बड़ा किया। आज वही लड़का दुनियाका अुद्धारक बन गया है। अुसके पास जाकर मैं क्यों न दीक्षा ले लूँ? शाक्यकुलकी बहुतसी राजकन्यायें महाप्रजापतिके साथ बुद्ध भगवान्‌से मिलनेके लिअे निकल पड़ीं। प्रवासोंके कष्ट झेलते-झेलते अुनके पाँव सूज गये। अुन्होंने बुद्ध भगवान्‌से प्रार्थना की कि हमें भी संघमें स्थान दे दीजिये। भगवान्‌ने कहा, 'यह न हो

सकेगा। मेरा संघ बिगड़ जायगा।' स्त्रियोंमें घोर निराशा फैल गअी, अिसलिअे बुद्ध भगवान्‌के प्रिय शिष्य और सेवक आनन्दने पूछा, "तो क्या भगवन्, स्त्रियोंके लिअे धर्मका साक्षात्कार अशक्य है?" बुद्ध भगवान्‌ने कहा, 'अैसी बात तो नहीं है। वे भी निर्वाणकी अुतनी ही अधिकारिणी हैं। अुनमें भी धर्मको जाननेकी बुद्धि है।' आखिर बुद्ध भगवान्‌ने स्त्रियोंके लिअे अेक अलग संघ खोला। अिस संघमें अत्यन्त धर्मनिष्ठ और अधिकारी व्यक्ति हो गये हैं।

जीवनके अस्सी साल तक धर्मका अुपदेश करके, कुशीनारा नामके स्थान पर अुन्होंने अपना पवित्र चोला छोड़ा। धीरे-धीरे बुद्ध भगवान्‌का अुपदेश पृथ्वी पर फैलने लगा। पाटलिपुत्रके महान् राजा अशोकवर्द्धनने बौद्ध धर्मोपदेशकोंको देश-देशान्तरमें भेजकर तथागत (बुद्ध भगवान्)का अुपदेश सारी दुनियाको सुनाया। आज चीन, जापान, ब्रह्मदेश, सीलोन आदि देशोंमें बौद्धधर्म प्रचलित है। और बुद्ध भगवान्‌का अुपदेश तो सारी दुनियाके विचारवान लोगोंके गले अुतरने लगा है।

अक्तूबर, १९२६

३. अेशियाका धर्मसम्राट्

महाभारतीय युद्धके बाद कितना ही समय बीत गया। हिन्दुस्तानमें सर्वत्र छोटे-छोटे राज्य कायम हुअे। बहुतसे राज्य तो पाँच दस गाँवके ही मालिक रह गये थे। बहुतसे राज्योंमें राजा न था, बल्कि प्रतिष्ठित कुलके अगुआ निगम-सभामें बैठकर राजकाज चलाते थे। अिस पद्धतिको महाजनसत्ताक राज्य-पद्धति कहते हैं। हिमालयकी तराअीमें नेपालके पास शाक्य लोगोंका अिस प्रकारका अेक राज्य था। वहाँ कपिलवस्तु नगरीमें शुद्धोदन नामका राजा राज्य करता था। अुस राजाके सिद्धार्थ नामका अेक सुलक्षण पुत्र हुआ। ज्योतिषियोंने भविष्य बताया कि यह राजपुत्र या तो चक्रवर्ती राजा होगा या जगत्का अुद्धार करनेवाला अेक धर्मसंस्थापक। अगर अिसके मनमें वैराग्य अुत्पन्न हो जाय, तो यह दूसरे मार्ग पर चलेगा। राजाने सोचा कि बुढ़ापा, रोग और मरण देखकर मनुष्यके दिलमें वैराग्य पैदा होता है। अिसलिअे अिस लड़केको अिस तरह रखें कि यह अिन तीनोंमें से अेक भी चीज़ न देख सके।

चैन और अैश-आरामके वायुमंडलमें सिद्धार्थकी परवरिश की गयी। यशोधरा नामकी अेक अत्यन्त रूपवती और सद्‌गुणवती राजकन्याके साथ अुसका ब्याह कर दिया गया। लेकिन संयोगवश व्याधि, जरा और मृत्युके अुसे दर्शन हुअे। अुसके मन पर बहुत बड़ा आघात पहुंचा। लेकिन यह सोचकर कि दुनियाका यह सारा दुःख दूर करनेका कुछ-न-कुछ अुपाय होना ही चाहिये और मुझे अुसकी खोज करनी ही चाहिये, सिद्धार्थने अपने राज्य और सुखोपभोगका त्याग किया और वह संन्यासी बन गया।

बहुतसे अच्छे-अच्छे गुरुओंसे अुसने ज्ञान प्राप्त किया। कठिन तप किया। ४९ दिन तक कुछ भी नहीं खाया और धर्म-बोधकी

प्राप्तिके लिअे प्रयास किया। अुसे भुलावेमें डालनेके लिअे मारने, जो कि मनुष्यका शत्रु और सभी खराब वासनाओंका राजा है, मोहक वस्तु, अूब, भूख, प्यास, विषय-वासना, आलस्य, भीति, कुशंका, गर्व, लाभ-सत्कार, पूजा और बुरे मार्गसे मिलनेवाली कीर्ति आदि अपने पूरे दलबलके साथ सिद्धार्थ पर धावा बोल दिया। लेकिन सिद्धार्थ अपनी शान्ति और विवेक पर डटा रहा और अुसने मार पर विजय पायी। मारके अूपर विजय मिलनेके बाद तुरन्त ही अुसे दुनियाका दुःख मिटानेका ज्ञान मिल गया, जिसे बौद्ध लोग बोधि कहते हैं। सिद्धार्थ बुद्ध हो गया और अुसे परम आनन्द हुआ।

दुनियामें सब जगह जो दुःख है, अुसका कारण वासनारूपी प्यास है। अुसके ज्ञानका यह सार था कि अिस वासनारूपी प्यासको मिटानेसे दुःख दूर होगा और अुसके लिअे मनुष्यको योग्य ज्ञान, योग्य अिच्छा, योग्य भाषण, योग्य कर्म, योग्य धन्धा, योग्य साधना, योग्य चिन्तन, और योग्य ध्यानका सेवन करना चाहिये। अिस दयाकी बुद्धिसे कि अपनेको मिला हुआ मार्ग अगर में दुनियाको दे दूँ, तो दुनियाका भी भला होगा बुद्धने धर्मोपदेश करनेके लिअे घूमना शुरू किया। काशीजीके पास सारनाथ नामके तीर्थस्थानमें अुसने अपने अुपदेशका प्रारम्भ किया। हजारों लोग तथागतका अुपदेश सुननेके लिअे अिकट्ठा होते। बुद्धका अुपदेश जिनके गले पूरी तरह अुतरता, वे घरबार छोड़कर बौद्ध भिक्षु अथवा श्रमण बन जाते। भोग-विलासके पीछे सारा जीवन नष्ट करना या शरीरको कष्ट देनेमें ही सन्तोष माननना, ये दोनों सिरे बुद्ध भगवान्‌को पसन्द न थे। अुन्होंने बीचके मार्गको पसन्द किया। बौद्ध भिक्षु अुपदेश सुनकर बुद्ध, अुनके धर्म, और अुनके प्रस्थापित भिक्षुसंघकी शरणमें जाकर काषाय वस्त्र धारण करते। भक्त लोगोंने अैसे लोगोंके रहनेके लिअे बड़े-बड़े विहार बनवा दिये थे, अिस परसे मिथिला और मगध देशका नाम ही बिहार पड़ गया।

अजातशत्रु नामके अुस समयके राजाने बुद्धके अुपदेशका स्वीकार किया था। अुस समयके कर्मकाण्ड और यज्ञयागके विरुद्ध बुद्ध भगवान्‌ने अेक भारी विप्लव खड़ा किया। अुनका यह सिद्धान्त था कि धर्मके नाम पर पशुओंकी हत्या करनेसे स्वर्ग या मोक्ष नहीं मिलेगा। और चाहे जितने यज्ञ करने पर भी किये हुअे पापोंसे मुक्ति नहीं मिलेगी; किये हुअे कर्मोंको भुगतनेके अलावा कोअी दूसरा मार्ग ही नहीं। फिर जो करे, वही भुगते। औरोंके बलिदानसे हमें पुण्य नहीं मिल सकेगा। बुद्धने यह शिक्षा दी कि हम स्वयं पुण्यकर्म करें, पापकर्म छोड़ दें और अहंकारका त्याग करें, तभी सब कल्याण प्राप्त होगा। अेक दूसरेके साथ लड़कर बदला लेनेवाली हिंसक दुनियाको बुद्ध भगवान्‌ने घोषणा करके बतला दिया कि प्रतिशोधसे बैर बढ़ता है; प्रेमसे, क्षमा करनेसे ही वैर शान्त होता है। विजय शान्तिका मार्ग नहीं है, क्योंकि हारे हुअे मनुष्यके हृदयमें खार रह ही जाता है। शान्तिका यह अुपदेश दुनियाको देते हुअे अपनी अुम्रके अस्सी साल तक वे घूमे और अन्तमें कुशीनारा नामके गाँवमें अेक ग़रीब भक्तका आतिथ्य स्वीकार करके अुन्होंने निर्वाण पाया। अुनके शिष्यवर्गने अुनके शरीरके अवशेष, यानी अस्थि और राखको आपसमें बाँट लिया और अुन पर बड़े-बड़े स्तूप बनाये। जिस बुद्धने यह शिक्षा दी थी कि सारा संसार शून्य है, क्षणिक है, दुःखमय है, अिसमें से छूटना ही निर्वाण है, अुसी बुद्धके शरीरके अवशेषोंके लिअे अुसके शिष्य-राजा लोग बादको आपसमें लड़े और बुद्धके अुपदेशको अेक तरफ़ रखकर अुसकी मूर्ति बनाकर अुसीकी पूजा करने लगे। मनुष्य अपने सत्कर्मोंसे ही निर्वाण प्राप्त कर सकता है, बुद्धके अिस अुपदेशके बदले अैसी मान्यता फैल गयी कि बुद्ध जैसे पुण्यप्रतापी सत्त्वोंकी कृपासे ही निर्वाण प्राप्त हो सकेगा; और लोग समझने लगे कि अपनी अिन्द्रियोंको वशमें रखनेके बदले केवल प्राणीमात्रकी सेवा करनेसे ही निर्वाण मिल सकेगा।

बौद्ध लोगोंने बुद्ध भगवान्‌के चरित्रका कअी तरहसे वर्णन किया है। अुनके जन्मके बारेमें बहुतसी दन्तकथायें लिखी हुअी हैं। हिन्दू-धर्ममें जिस तरह अवतारकी कल्पना है, अुसी तरह बौद्ध लोगोंमें बोधिसत्त्वोंकी कल्पना है। बौद्ध लोगोंमें यह धारणा दृढ़ हो गअी कि अेक ही जीव अर्हत्‌पद प्राप्त करनेकी महत् अिच्छासे अनेक जन्मोंमें अनेक प्रकारकी पारमितायें यानी प्राविण्य प्राप्त करके अन्तमें बुद्ध हो जाता है। बुद्ध भगवान्‌ने अपने पूर्वजन्मकी कअी कथायें कही थीं। अुन परसे तरह-तरहकी जातक-कथायें रची गयीं और बुद्धका लीला विस्तार बढ़ गया। अिन नये-नये गढ़े हुअे अनेक प्रकारके चमत्कारोंमें बुद्धका अैतिहासिक सादा जीवन ढँक गया और बुद्धके अुद्देश्यके रहस्यको अुनके जीवनमें देखना मुश्किल हो गया। फिर भी अिस प्रकारकी जातक-कथाओं और बुद्धचरित्रों परसे अुस समयकी लौकिक धारणाओं और धार्मिक कल्पनाओंका अितिहास हमें मिलता है।

बुद्ध भगवान्‌ने अपने संघके लिअे दूरंदेशीसे अनेक चतुराअीपूर्ण नियम बनाये। संघमें मतभेद हो जाय तो किस तरहका वर्ताव किया जाय, संघमें गन्दगी न आने पाये अिसलिअे कौन-कौनसी बातोंमें सचेत रहना चाहिये आदि अनेक सूचनायें अुन्होंने कीं। नियमोंकी अधिकता होकर मूल अुद्देश्य टूट न जाय अिसलिअे अुन्होंने अपने मतको अनेक प्रकारसे स्पष्ट किया। और, अैसी शिक्षाप्रणालीके नीचे तैयार हुअे अपने शिष्योंको धर्मोपदेश देनेकी अनुज्ञा दी। बुद्ध भगवान्‌को अपने समयके पुराने विचारके लोगोंके साथ लड़ना पड़ता था। अितना ही नहीं बल्कि पुराने विचारके लोग जिन्हें नास्तिक या पाखंडी कहते थे, अुन अपने-जैसे दूसरे सुधारकोंके साथ भी अुन्हें जूझना पड़ता था। अिन सब कारणोंसे बुद्धका अुपदेश निश्चित शब्दोंमें और व्यवस्थित रूपमें रखा गया। सामान्य लोगोंके लिअे बुद्ध भगवान्‌ने निम्नलिखित नियम बतलाये थे :

किसीकी हिंसा नहीं करनी चाहिये।
अन्यायसे कुछ भी नहीं लेना चाहिये।
शारीरिक पवित्रता नहीं छोड़नी चाहिये।
असत्य भाषण नहीं करना चाहिये।
चुगली नहीं खानी चाहिये।
कटुवचन नहीं कहने चाहियें।
बेकार बकझक या निंदा नहीं करनी चाहिये।
औरोंके द्रव्यका लोभ नहीं रखना चाहिये।
मनसे क्रोधको निकाल देना चाहिये।
मिथ्या दृष्टि यानी नास्तिकता नहीं रखनी चाहिये।

भिक्षुओंके लिअे :

ब्रह्मचर्यका पालन करना;
मादक पदार्थोंका सेवन न करना;
दोपहरके बाद न खाना;
नृत्य, गीत आदि अुद्दीपक बातें न सुनना या न देखना;
माला, चन्दन आदिका अुपयोग न करना;
अूँचे या मुलायम बिछौने पर न सोना;
सोने-चाँदीका स्वीकार न करना;
आदि अतिरिक्त नियम बुद्ध भगवान्‌ने बना दिये थे।

अैसे भिक्षु आठ महीनों तक देशमें सर्वत्र घूमकर धर्मोपदेश करते और चौमासेमें विहारमें अेक जगह बैठकर धर्मका अध्ययन और चिन्तन करते थे। धर्मोपदेशके लिअे घूमते वक्‍त लोगोंकी तरफ़से आसानीसे जो भिक्षा मिलती वही खाकर भिक्षु रहते थे।

बुद्धके संघमें सभी जातिके शिष्य आ सकते थे। स्त्रियोंके लिअे भी बुद्ध भगवान्‌ने अेक अलग संघकी स्थापना की थी। बुद्धकी स्त्री-शिष्योंमें क्षेमा, अुत्पलवर्णा, आदि महान् भिक्षुणियाँ हो गयी हैं। अुन्होंने

स्त्रीवर्गको ही नहीं, बल्कि पुरुषवर्गको भी अुपदेश देकर अुन्हें सन्मार्ग दिखाया था। अुन जैसी भिक्षुणियोंको स्थविरा अथवा थेरी कहते थे।

बुद्ध भगवान्का संघ दुनियाकी सबसे पहली 'धर्मशीलों (मिशनरियों) की संस्था' कही जा सकती है।

१९२३

४. बुद्ध अवतार

भगवान् बुद्धको हम श्री विष्णुका अवतार मानते हैं। मुझे अैसा लगता है कि अगर तथागतको अवतार मानना ही हो, तो फिर महादेवका अवतार क्यों न मानें? वह भवपालक नहीं, भवरोगघ्न — भवनाशक है। लेकिन शाक्यमुनिको अवतार मानना ही मुझे पसन्द नहीं है। अवतारके मानी क्या हैं? दुनियाका दुःख देखकर, ज्ञानका लोप देखकर शुद्ध, बुद्ध, नित्य, मुक्त परमेश्वर दुनियावी रूप धारण करके 'नीचे अुतरता है'। मनुष्योंमें रहकर मनुष्योंकी तरह वह भले ही बर्ताव करे, लेकिन वह मनुष्य नहीं है। अुसकी जाति ही अलग है। अुसके अनुग्रहसे हमारा अुद्धार भले ही हो, लेकिन अुसका अनुकरण करनेकी अिच्छा हमें नहीं होती। हम कृष्णके अुपासक बन सकते हैं, परन्तु कृष्णका अनुकरण तो करते ही नहीं। गौतमबुद्ध अवतार नहीं थे, मनुष्य थे। दुनियाका दुःख देखकर, सम्यक् ज्ञानका अभाव देखकर 'वह चढ़े', अीश्वरकी तरह 'अुतरे' नहीं। सामान्य परन्तु श्रद्धावान जीव अनेक जन्म तक चढ़ते-चढ़ते बोधिसत्त्वका बुद्ध हो गया; मनुष्यका देव बन गया; शुद्ध, बुद्ध, मुक्त बन गया। आर्य था, अर्हत् बन गया। अुसका जीवन अनुकरणीय है। सीता-सावित्रीकी तरह बुद्ध भगवान्ने दुनियाको यह बता दिया है कि मनुष्य कहाँ

तक चढ़ सकता है। वह श्रद्धा और करुणाकी मूर्ति थे। यमराजके यहाँ जानेवाले नचिकेताकी श्रद्धा बुद्ध भगवान्में थी। गुरुसे ब्रह्मज्ञान प्राप्त करके निर्भय हो जानेके बाद जनक राजा राज्यसर्वस्व छोड़नेके लिअे तैयार हो गये। गुरुकृपासे जीवनके सार्थक होनेके विश्वाससे गोपीचन्दने राज्य त्याग किया, लेकिन शाक्यमुनिका त्याग अिससे कठिन था।

'सांसारिक लोगोंका दुःख देखकर मेरा मन रोता है; अिसलिअे अुस दुःखको दूर करनेकी दवा होनी ही चाहिये; अतः मुझे अुसे प्राप्त करना ही होगा' अिस श्रद्धा — अंतःश्रद्धा — से अुन्होंने राज्यका त्याग किया। यह वीरकर्म तब तक गाया जायगा, जब तक मनुष्यजाति दुनियामें रहेगी। हरअेक जमानेके कविगण अिस महाभिनिष्क्रमणका प्रसंग गाकर अपनी वाणीको पुनीत करेंगे। सिद्धार्थका गृहत्याग सफल हुआ और आर्यावर्तमें धर्मचक्र प्रवर्तन शुरू हो गया। बुद्ध भगवान्का धर्म गूढ़वादी नहीं है, 'अतिवादी' नहीं है, फिर भी वह सामान्य नीतिधर्म भी नहीं है। सदाचारके अुपरान्त अुसमें अहंभावका नाश अुद्दिष्ट है, और निर्वाण अुसका प्राप्तव्य है।

यह विषय अत्यन्त महत्त्वका है कि बौद्धधर्मका सामाजिक स्वरूप क्या था और अुस धर्मका आर्यावर्त पर क्या असर पड़ा। लेकिन विद्यार्थीगण बड़ी अुम्रमें अिसका विचार कर सकेंगे।

बुद्ध भगवान्की जीवनी पढ़कर किसी नवयुवकके मनमें गृहत्याग करनेका विचार आ जानेकी संभावना है। अुसे अिस बातका ध्यान रखना चाहिये कि जो महावीर होगा, वही त्यागको चरितार्थ बना सकेगा। सरस्वतीचन्द्र* बननेमें कोअी श्रेय नहीं। 'अगर त्याग करो, तो अुस त्यागके लायक बनो।'

अप्रैल, १९२२

---

* गुजरातीके अेक सर्वमान्य अुपन्यासका नायक।

बोधि-जयन्ती

बैसाख सुदी पूनम **आधा दिन**

गौतमबुद्धको अिसी दिन ज्ञान प्राप्त हुआ। अिस रहस्यको हृद-यंगम करनेका यह दिन है कि दुनियाके दुःखोंकी दवा द्रव्यमें नहीं, राजसत्तामें नहीं, ज़ुल्म-ज़बरदस्तीमें नहीं, बल्की ज्ञानमें, शिक्षामें, और शुद्ध जीवनमें ही है।

यह त्यौहार प्रायः गरमीकी छुट्टियोंमें लुप्त हो जाता है। अिस-लिअे अैसा प्रबन्ध हो जाना चाहिये, जिससे पाठशालाओंमें नहीं किन्तु सारे समाजमें यह मनाया जाय।

बुद्धके गृहत्याग और ज्ञानकी खोजके बारेमें अिस दिन विवेचन हो। अेकाध नाटक, जो अिस दिनके अुपयुक्त हो, खेला जा सकता है।

यह भी आज समझाना चाहिये कि जातिभेद, और खास करके अुसमें आनेवाली अुच्चनीचता, हिन्दूधर्मका सच्चा लक्षण नहीं है। अन्तमें यह भी समझा दिया जाय कि बुद्ध भगवान्के अुपदेशमें से अुत्त-मोत्तम हिस्सोंको हिन्दूधर्मने किस तरह अपनानेका प्रयत्न किया है।

'धम्मपद' में से अच्छे-अच्छे वचन कण्ठ करनेके लिअे विद्यार्थियोंको दिये जायें।

मृत्यु विरुद्ध प्रेम

वनवासके कष्ट सहन करती हुअी द्रौपदीको आश्वासन देनेके लिअे ऋषियोंने जो अनेक कथायें सुनायीं, अुनमें सीताकी और अुसके बाद सावित्रीकी कथा कहनेमें अुन्होंने कितना औचित्य दिखाया है! सीता, सावित्री और सती (अुमा) आर्य रमणियोंका त्रिविध आदर्श है।

मद्रदेशके अधिपति अश्वपतिके संतान नहीं है। नगरवासी तथा ग्रामवासी लोगोंको राजा अत्यन्त प्रिय है। अन्तःकरणके अुदार, सत्यप्रतिज्ञ, जितेन्द्रिय और क्षमाशील राजाकी परंपरा अबाधित रहनेकी चिन्ता प्रजाको भी होती है। राजाने अनेक प्रकारकी कठिन तपस्या की और अिन्द्रियोंका दमन करके परमात्म-शक्तिकी आराधना की।

कोअी महान् जीवनकार्य अेक जन्ममें पूरा नहीं होता। समाज-सेवा या राष्ट्रसेवा जब पुश्त-दर-पुश्त चलती है, कुलधर्म वंशपरंपरागत चलता है, तभी अपेक्षित फलप्राप्ति होती है। राजाने संततिकी अिच्छा अिसलिअे की कि कुलव्रत सतत चलता रहे; 'सन्तानं परमो धर्मः'। अैसा समझकर कि पुत्र ही कुलधर्मका पालन कर सकते हैं, पुत्रके बिना गति नहीं है, राजाने पुत्रकी अिच्छा की। परन्तु परमात्माको यह दिखलाना था कि धर्मका अुत्कर्ष साधनेमें पुरुषोंकी तरह स्त्रियाँ भी समर्थ हो सकती हैं। पुत्र माँगनेवाले राजाको भगवान्‌की ओरसे कन्यारत्न मिला। पुत्रके लिअे लालायित माता-पिताको जब कन्या-प्राप्ति होती है, तब अुसका लाड़ और परवरिश पुत्रकी ही तरह हो तो अुसमें क्या आश्चर्य? सावित्री अिसी प्रकार संस्कारी स्वतन्त्रताके वायुमंडलमें पली। देवकन्याको सोहनेवाली अुत्तम शिक्षा अुसे मिली। परिणामस्वरूप लड़की तेज-स्विनी हुअी। पवित्रता, निर्भयता और अुच्च संस्कारिताके कारण

सब जगह लड़कीका अितना तेज फैलने लगा कि अुसके सामने अच्छे-अच्छे राजपुत्र भी फीके मालूम होने लगे। अेक भी राजपुत्रमें अैसा आत्म-विश्वास न रहा कि मैं सावित्रीके योग्य हूं। जो प्रेम करने आता, वह पूजा ही करने लगता। बेटी सयानी हो गअी। सभी तरह संस्कार-सम्पन्न दिखायी देने लगी। शरीरसे भी अंग-प्रत्यंग पूर्ण विकसित और प्रौढ़। राजा सोचने लगा कि अगर वंशविस्तार न होगा, तो अिन सब संस्कारोंकी परम्परा कैसे चलेगी ? पिताने जान-बूझकर लड़कीको स्वतंत्रताकी शिक्षा दी थी। अिसलिअे अुसने सावित्रीसे विश्वासपूर्वक कहा, "क्षत्रियोंके रिवाजके अनुसार राजपुत्रोंको तेरी माँग करनी चाहिये थी, लेकिन कोअी हिम्मत नहीं करता। तू अपना कुलव्रत जानती है। सब शुभ संस्कारोंसे तू युक्त हुअी है। तू स्वयं अपना पति चुनकर मुझे बता दे। मैं अुस बात पर योग्य विचार करके तेरे पसन्द किये हुअे युवकको ही तुझे अर्पण कर दूँगा। मैं चाहता हूँ कि तू अपनी अिच्छाके अनुसार अपना पति खोज ले। ब्राह्मणोंने मुझसे कहा है कि यह मार्ग रूढ़ भले ही न हो, किन्तु है तो धर्मसम्मत ही।

"अिस बारेम यदि मैं अुदासीनता दिखाअूँ, तो देवता लोग मुझे दोष देंगे।"

बेटीने पिताके वृद्ध मंत्रीको साथ लेकर प्रयाण किया। सावित्रीको अपने योग्य वर आसानीसे मिल ही नहीं सकता था। वह कितने ही नगरों, देशों और वनोंमें घूमी। अिस तरह यात्रा करते समय अत्यन्त मूल्यवान शिक्षा भी अुसे मिलती गयी। आख़िर अुसे अपने योग्य पति मिल गया। पिताकी सम्मतिके बिना बात तो हो नहीं सकती थी; अिसलिअे सावित्री सीधी घर वापस आयी और पितासे मिलने गयी। वहाँ भगवद्भक्त, जनहितैषी नारदमुनि आये हुअे दिखायी दिये। अुनका तो त्रैलोक्यमें अप्रतिहत संचार था। नारदका आगमन यानी धार्मिक और लौकिक ज्ञानका भोज। सुर तथा असुर, मनुष्य

तथा गंधर्व-किन्नर सभी 'सर्वभूतहिते रत' नारदको चाहते थे। सावित्रीने पिताको और ब्रह्मदेव-पुत्र नारदको प्रणाम किया। नारदने कुशलक्षेमके बाद प्रश्न पूछा, 'कन्या सयानी हो गयी है, अिसका विवाह कब करोगे, राजन् ?' राजाने अपना आदर्श बताया और कहा, 'सावित्री अपना वर खोजने ही गयी थी, सो अभी आअी है। अुसकी बातें हम सुनें।' सावित्रीने कहा, "शाल्वदेशके द्युमत्सेन राजाका नाम तो प्रख्यात ही है। आज वे राज्यभ्रष्ट होकर वनमें वनवासीकी तरह दिन काटते हैं। अुनकी आँखें जाती रही हैं। राज्यभ्रष्ट होनेसे जो कष्ट भुगतने पड़ते हैं, अुनमें अुन्होंने दारुण तपस्याको और जोड़ दिया है। फिर भी अुनकी तितिक्षाका भंग नहीं हुआ है। मैंने निश्चय किया है कि अुनका सुशील पुत्र सत्यवान ही मेरे योग्य है और अुसके साथ मैं मनसे विवाह भी कर चुकी हूँ।" नारदऋषिके मुँहसे दुःखका अुद्गार निकल गया, 'अरेरे बुरा हुआ !' राजाने सोचा कि स्वयंवरमें बेटीकी प्रवंचना हो गयी है। किन्तु राजाके चेहरे पर चिन्ता देखकर नारद बोले, "लड़कीने घर तो अच्छा पसन्द किया। माता और पिताके अत्यन्त सत्यनिष्ठ होनेसे ही ब्राह्मणोंने अुस बेटेका नाम सत्यवान रखा है। जंगलमें रहते हुअे अुसने शिक्षा भी अच्छी पायी है। बचपनमें वह मिट्टीके घोड़े और तरह तरहकी गुड़ियाँ अितनी अच्छी बनाता था और चित्र भी अितने सुन्दर खींचता था कि अुसका दूसरा नाम 'चित्राश्व' पड़ गया है।"

"अिसका क्या ठिकाना है कि बचपनके गुण बड़ी अुम्रमें टिकते ही हैं?" राजाने पूछा, "लेकिन यह राजपुत्र आज कैसा है? वह आज सत्यनिष्ठ, तेजस्वी, बुद्धिमान, क्षमासंपन्न, शूर और पितृभक्त न हो, तो समझना होगा कि मेरी कन्याने चुनाव करनेमें भूल की है। नारदकी वाग्धारा बहने लगी। सत्यवानका स्तुति-स्तोत्र गाते-गाते राजर्षिकी अेक भी अुपमा बाकी न रही। सत्यवान रूपवान, अुदार और प्रियदर्शन तो था ही। लेकिन राजाके लिअे आवश्यक सभी गुण

नारदने अुसमें देखे थे। अुन्होंने अुसमें यह और जोड़ दिया कि "तेजस्विताके साथ साथ मर्यादशीलता और सरलता आदि विशेष गुणोंके लिअे शीलवृद्ध और आचारवृद्ध लोग अुसकी तारीफ़ करते हैं।"

"तो फिर बुरा क्या हुआ?"

अुदास होकर नारदने कहा, "अिस सर्वगुण-सम्पन्न राजपुत्रके आयुष्यका अब अेक ही साल बाकी रहा है। मैं देखता हूँ कि अुसकी मृत्यु टालनेकी किसीमें शक्ति नहीं है।" "तो फिर अैसा जमाअी कौन पसन्द करे?" राजा और नारदने लड़कीसे सिफारिश की कि 'दूसरा वर खोजना ही अुचित है।' शीलपरायण राजकन्याने अुस सूचनाका तनिक भी आदर नहीं किया। अुसने कहा, "सज्जनोंका यह मार्ग नहीं है। जिसके साथ मैंने अेक बार मनसे विवाह किया, वह दीर्घायु हो या अल्पायु, सगुण हो या निर्गुण, अुसके साथ ब्याह हो चुका है। अब दूसरेको पसन्द नहीं कर सकती। किसी भी वस्तुका प्रथम मनमें संकल्प होता है, अुसके अनुसार अुसका शब्दमें अुच्चारण किया जाता है और अुसके बाद अुसके अनुसार कृति होती है। मनके निश्चयके अूपर वाणी और कृति आधार रखती है और अिन दोनोंकी प्रेरणा भी अुसीमें से होती है। अिसलिअे मन ही मेरे मतसे प्रमाण है।" **'प्रमाणं मे मनस्ततः'** अैसे धार्मिक निर्णयके आगे राजा भी क्या कह सकता और नारद भी क्या समझाते? सावित्रीको अुसके निश्चय पर बधाअियाँ देकर, मुँहसे जो निकले सो आशीर्वाद देकर, नारद संचार करनेके लिअे निकल पड़े और राजाने द्युमत्सेनके आश्रमको जानेकी तैयारी की।

प्रथम तो द्युमत्सेन राजाको यह सब असंभव-सा ही लगा। राज्य-भ्रष्ट, अंधे और वनवासी राजाके पुत्रको सावित्री जैसी अुत्कृष्ट और तेजस्विनी कन्या देनेके लिअे अुसका पिता स्वयं आता है! अिससे अधिक अद्‌भुत क्या हो सकता है? अश्वपतिने अुत्तर दिया, "मेरी बेटी भी जानती है और मुझे भी ज्ञात है कि सुख और दुःख दोनों

अस्थायी हैं; दोनोंका नाश है। अच्छे आदमियोंको अुनका विश्वास नहीं करना चाहिये। गौरवकी दृष्टिसे तो हम दोनोंके कुल समान हैं और मेरी बेटीने विचारपूर्वक स्वयं ही यह सम्बन्ध मनोनीत किया है।"

आश्रममें जो पद्धति संभव थी, अुस पद्धतिसे दोनोंका विवाह हो गया। अपने पिताको बुरा न मालूम हो, अिसलिअे सावित्रीने जब तक पिता अुपस्थित थे तब तक अलंकार पहन रखे। पिताके पीठ फेरते ही सावित्रीने सब गहने अुतार दिये और तपस्विनीका गेरुआ वेष धारण कर लिया। शुश्रूषा, सदाचार, नम्रता और अिन्द्रिय-दमनको अपना आचार-धर्म बनाकर, प्रसन्नतासे रहकर सभीको प्रसन्न किया। सास, ससुर आदि सब सम्बन्धियों तथा पतिको अपने सद्गुणसे सन्तुष्ट करके, आश्रम-लक्ष्मीके समान वहाँ वह सोहने लगी। संस्कारी, धर्मपरायण, और जितेन्द्रिय स्त्रीके सहवासमें सत्यवानका आनन्द बढ़ता गया। सावित्रीको सेवाका तो आनन्द मिलता था; किंतु नारदकी की हुअी भविष्यवाणी अुस आनन्दको जलाकर भस्म करती थी। महीने बीत गये और दिन बाकी रहे। अब तो चार ही दिन बाकी थे। सावित्रीने आहार और निद्राका त्याग किया। द्युमत्सेन राजा डर गया। तीन दिन बिलकुल खड़े रहनेका सावित्रीका व्रत था। वह कैसे पूरा होगा? सावित्रीने अुत्तर दिया, "तात, आप चिन्ता न करें। मैंने निश्चयपूर्वक व्रत शुरू किया है और निश्चय ही कार्यसिद्धिका कारण है। **व्यवसायश्च कारणम्।**"

सुशीला सावित्रीका विरोध कौन करे? तीन दिन किसी तरह निकल गये। आखिरी रातका अेक-अेक क्षण सावित्रीके लिअे कैसा बीता होगा? सबेरा होते ही नित्यकर्म पूरा करके सावित्रीने प्रदीप्त अग्निमें हवन किया। वृद्धोंको प्रणाम किया। आशीर्वाद देकर सबोंने अुसे भोजन करनेका आग्रह किया। सावित्रीको आहार-निद्रादि देह-धर्म कहाँसे सूझते? अुसने नम्रताके साथ सास-ससुरसे कहा कि सूर्यास्तके

बाद अमुक अिष्ट वस्तु पूरी करके ही भोजन करनेका मेरा संकल्प है।

अितनेमें कन्धे पर कुल्हाड़ी रखकर फल और अींधन लानेके लिअे सत्यवान जाने लगा। सावित्रीने दीनतासे कहा: "आप अकेले न जायँ। मैं भी आपके साथ आती हूँ। आज आपसे दूर रहनेको मेरा जी नहीं चाहता।" सावित्रीको घने जंगलमें घूमनेकी आदत कहाँसे होगी? और फिर आज तो अुसके अुपवासका चौथा दिन था। वह कैसे चल सकेगी? अुसे अनुज्ञा कौन देगा? लेकिन सावित्रीने सत्यवानकी अेक नहीं सुनी। अन्तमें सत्यवानने यह बात अपने माता-पिताके अूपर छोड़ दी। सावित्रीने अत्यन्त नम्रतासे किन्तु दृढ़तापूर्वक अपनी मनीषा सास-ससुरके सामने रखी। सास-ससुरने विचार किया कि बेटीने सारे वर्षमें अेक बार भी किसी चीजकी याचना नहीं की। आज अिसे 'ना' कैसे कहा जाय? अुन्होंने अन्तमें अनुज्ञा दे ही दी।

दोनों वनमें चले। वनवासके काव्यमय जीवनमें अरण्यकी शोभा ध्यान खींच ही लेती है। रास्तेमें मोर नाचते और केका करते थे। अनेक प्रवाह अपने निर्मल जलसे कलध्वनि करते थे और जहाँ-तहाँ छोटे-मोटे वृक्ष असंख्य फूलोंसे प्रफुल्ल हुअे थे। सत्यवान प्रत्येक रमणीय वस्तुकी ओर सावित्रीका ध्यान खींचता जाता था और अपना आनन्द द्विगुणित करता जाता था। सावित्री भी पतिके आनन्दमें सहभागी होनेका पूरा प्रयत्न करती थी। अुसे अितना ही समाधान था कि भाग्यका पासा पड़नेके समय मैं पतिके साथ हूँ। लेकिन हर क्षण अुसे अेक कल्पके समान भारी लगता था। मानो अुसके हृदयके टुकड़े-टुकड़े हुअे जाते थे।

दोनों वनमें पहुँच गये और सत्यवान फल चुनने लगा। अितनेमें सावित्रीने सुगन्धित फूल तोड़कर अुनकी अेक माला बनायी। आवश्यक फल अिकट्ठे हो जाने पर सत्यवानने कुल्हाड़ी लेकर सूखी

RAMAKRISHNA MISSION LIBRARY
MUTHIGANJ ALLAHABAD

लकड़ियाँ काटना शुरू कीं। यह काम अुसके लिअे कोअी नया नहीं था। अुसका शरीर भी कसा हुआ था। लेकिन न जाने क्यों आज अुसके सारे शरीरसे पसीना निकलने लगा। वह थक गया। अुसके सिरमें तीव्र वेदना होने लगी। अेकाग्रतासे पतिकी ओर निहारनेवाली सावित्रीके ध्यानमें यह बात आअी। अुसने पास जाकर प्रेमसे पूछा, "आज कोअी खास थकान मालूम होती है?" सत्यवान अपनी थकानको दबाना चाहता था। वेदनाको छिपानेकी अुसकी अिच्छा थी। लेकिन सावित्रीने जब अत्यन्त प्रेमके साथ प्रश्न पूछा, तब अुससे न रहा गया। अुसने कहा, "हाँ! आज कुछ हो रहा है, सही! सिरमें शूल अुठ रहा है और दिलमें कुछ बेचैनी-सी मालूम हो रही है।" थोड़ी देर बाद फिर अुसने कहा, "अब तो खड़ा भी नहीं रहा जाता। जरा सो जाअूँ तो अच्छा।" सावित्रीने वहीं जमीन पर बैठकर सत्यवानका मस्तक अपनी गोदमें ले लिया। सत्यवानको कुछ आराम मालूम हुआ; लेकिन सावित्रीके लिअे वह क्षण प्रलयकालका था। अुसे विश्वास हो गया कि नारदका बताया हुआ प्रसंग समीप आ गया है। अुसका हृदय, मन और आत्मा अुसकी आँखोंमें अेकत्र होकर सत्यवानकी ओर देखने लगे। चार दिनके अुपवासके कारण दृष्टि क्षीण हो जानी चाहिये; लेकिन सावित्रीकी तपस्या ही अितनी अुज्ज्वल थी कि अुसी क्षण अुसे दिव्य-दृष्टि प्राप्त हुअी।

अुसने देखा कि सामनेसे कोअी भव्य पुरुष निकट आ रहा है। अुसने लाल कपड़े पहने थे। माथे पर जगमगाता हुआ किरीट था। वह पुरुष कद्दावर और खूबसूरत था। तेजमें मानो प्रतिसूर्य ही था। अुसे श्याम कहनेकी अपेक्षा गौर कहना ही अधिक अुचित होता। अुसके हाथमें भयंकर पाश था। देखते ही आदर अुत्पन्न करनेवाली अुसकी आकृति देखकर सावित्री समझ गअी। अुसने धीरेसे पतिका मस्तक भूमि पर रख दिया और अुस दिव्य पुरुषके प्रति आदर दिखानेके लिअे वह खड़ी हो गयी। सावित्रीने पूछा, "भगवन्,

अितना तो मैं समझ सकती हूँ कि आपकी काया मानुषी नहीं है। आप कोअी दैवी पुरुष हैं। लेकिन क्या आप अितना कहनेकी कृपा करेंगे कि आप कौन हैं और किस अुद्देश्यसे आये हैं? " अुस दिव्य पुरुषने जवाब दिया, "हे सावित्री, तू पतिव्रता है और तपोनिष्ठ भी है। अिसलिअे तू मुझे देख सकी और अिसीलिअे तेरे साथ में बातचीत कर रहा हूँ। तू यह जान ले कि मैं पितरोंका अधिपति यम हूँ। तेरे पतिका आयुष्य नष्ट हो गया है, अिसलिअे मैं अुसे ले जानेको आया हूँ।"

"भगवन्, मानवोंको ले जानेके लिअे तो आपके दूत आया करते हैं। आज आप स्वयं किस लिअे पधारे हैं?"

"हम सत्त्वशील मनुष्यकी क़द्र करते हैं। यह तेरा सत्यवान धर्मसम्पन्न है, सुस्वरूप है, गुणोंका तो मानो महासागर ही है। अिसे ले जानेके लिअे स्वयं मुझे ही आना चाहिये न?"

यह कहते हुअे यमराजने सत्यवानके शरीरमें से अुसके जीवात्माको अपने पाशके द्वारा खींच निकाला। तुरंत ही सत्यवानका शरीर निस्तेज हो गया, श्वासोच्छ्वास बन्द हो गया, मुखकी कान्ति अुतर गअी और सभी अवयव ढीले पड़ गये। यमराजने सत्यवानके जीवात्माको अपने कब्जेमें लेकर दक्षिण दिशाका रास्ता पकड़ा। यम-नियम द्वारा सब सिद्धियाँ प्राप्त हो जानेसे सावित्री भी यमराजके पीछे-पीछे चलने लगी। अुसके हृदयमें दुःखका महासागर अुमड़ रहा था। सावित्रीको पीछे-पीछे आती देखकर यमराजने प्यारसे कहा, "सावित्री, अब तू वापस चली जा और सत्यवानका और्ध्वदैहिक कर। तूने अपने अिस धर्मका पूरी तरह पालन किया है कि पति जब तक जीवित है, तब तक पत्नी अुसके साथ रहे। पतिके ऋणसे तू मुक्त हुअी है। पतिके पीछे जहाँ तक जाना चाहिये, वहाँ तक तू जा चुकी है। अब वापस जा।"

"मैं कैसे वापस जाअूँ? जहाँ मेरे पति, वहाँ मैं। सनातन धर्मने ही यह व्यवस्था कर दी है। तप, गुरुभक्ति, पतिप्रेम, व्रत और

आपका अनुग्रह, अिन सब कारणोंसे मेरी गति अकुंठित है। अब मैं पतिको कैसे छोड़ सकती हूँ? आप मुझे वापस नहीं लौटा सकते।" सावित्रीको धर्मके अनुसार बातें करते देखकर यम — धर्म सन्तुष्ट हो गये। सावित्रीने बात आगे चलायी :

"विद्वान लोग कहते हैं कि सात पद चलनेसे या सात शब्द बोलनेसे सज्जनोंके बीच मैत्री हो जाती है। अिस मित्रताके अधिकारसे अगर मैं आपसे कुछ प्रार्थना करूँ, तो क्या कृपा करके आप अुसे सुन लेंगे? ज्ञानसम्पन्न लोग कहते हैं कि चारों आश्रम धर्माचरणके लिअे योग्य हैं और धर्माचरण ही आत्मज्ञानका साधन है। शिष्ट लोग अैसा भी कहते हैं कि चारोंमें से किसी भी अेक आश्रमका अच्छी तरह पालन हो जाय, तो बाकीके तीन आश्रम स्वयं ही अुसके पीछे-पीछे चले आते हैं; और अिसलिअे धर्मज्ञ लोगोंने यह कह रखा है कि आश्रमान्तर करनेकी तनिक भी अिच्छा रखनेकी आवश्यकता नहीं है। अैसी स्थितिमें जहाँ हम गृहस्थधर्मका पालन कर रहे हैं, वहाँ आप अुसका विध्वंस क्यों करते हैं? मेरे पतिको आप किस लिअे ले जा रहे हैं?"

सावित्रीकी यह संस्कारी और युक्तियुक्त वाणी सुनकर धर्मज्ञ यमराजको अत्यन्त संतोष हुआ। अुन्होंने कहा, "हे अनिन्दिते, अिस सत्यवानके जीवनको छोड़ दूसरा जो भी कुछ तू माँगेगी, मैं तुझे दे दूँगा। लेकिन तू अब वापस चली जा। तुझे ग्लानि आ रही है। अब अधिक श्रम मत कर।"

"पतिके पास रहते हुअे मुझे ग्लानि? मेरे पतिको जहाँ आप ले जायेंगे, वहाँ मुझे आयी ही समझिये। सज्जनोंके साथ अेक बार श्रेष्ठ समागम हो जाय, तो अुसे संगति कहते हैं। अैसा समागम बढ़ जाय, तो अुसे मैत्री कहते हैं। आप जैसे धर्मराजके साथका यह समागम निष्फल तो होगा ही नहीं।"

"तू अैसी हितकारी वाणी बोल रही है, जो मेरे अन्तःकरणको भाये और ज्ञानी लोगोंकी बुद्धिको भी वृद्धिगत करे। अिस सत्यवानके जीवनको छोड़कर दूसरा चाहे जो वर तू माँग ले । लेकिन अब तू लौट जा। व्यर्थ श्रम मत अुठा।"

"आपने सब प्रजाको नियमसे बाँध रखा है। अिसलिअे आप चाहे जिसको स्वेच्छासे ले जा सकते हैं। मैं भी अुसी नियमके वश होकर पतिका अनुसरण कर रही हूँ। आप मुझे किस तरह वापस लौटायेंगे? यह तो सज्जनोंका सनातन धर्म है कि किसी भी प्राणीका मन, वचन, क्रियासे द्वेष या द्रोह न करना चाहिये; बल्कि अुस पर अनुग्रह करना चाहिये। सामान्य मनुष्योंमें भी यही प्रथा हमें दिखायी देती है। जो सामर्थ्य-सम्पन्न हैं, वे कितने मृदु और क्षमावान होते हैं! सज्जन लोग तो अपने शत्रु पर भी दया ही करते हैं।"

"हे सावित्री, जिस प्रकार प्याससे पीड़ित मनुष्य शीतल जल पाकर तुष्ट होता है, अुसी प्रकार धर्मरहस्य प्रगट करनेवाली तेरी यह वाणी मुझे तृप्तिकारक लगती है। हे कल्याणि, अिस सत्यवानके जीवनके अलावा दूसरा चाहे जो वर तू माँग ले और वापस चली जा। कितनी दूर आ गयी है तू!"

"अपने प्रिय पतिके निकट होनेसे मेरे लिअे यह स्थान जरा भी दूर नहीं है: '**न दूरमेतन्मम भर्तृसन्निधौ**'। और जहाँ मन पहुँच सकता है, अुसे दूर कह सकते हैं क्या? रास्ता चलते-चलते आप मेरी कुछ बातें तो सुन लीजिये। भगवान् श्री सूर्यनारायणके आप प्रतापशाली पुत्र हैं। मृत्युलोकके सभी लोगोंके लिअे आपने अेक-सा ही धर्म चलाया है। अुसके अनुसार ही प्रजा चलती है; अिसलिअे, हे अीश्वर! लोकोंमें धर्मराजके नामसे ही आपकी ख्याति है। सचमुच, धर्मनिष्ठ सज्जनों पर मनुष्यका जितना विश्वास होता है, अुतना स्वयं अपने अूपर भी नहीं होता। हरअेक मनुष्य सज्जनोंके प्रति प्रेमभाव

रखता है। सज्जन प्रेममूर्ति हुआ करते हैं, अिसलिअे हरअेक अुन पर विश्वास करता है।"

"भद्रे, अैसा भाषण तो मैंने आज तक किसीके भी मुँहसे नहीं सुना। मैं सन्तुष्ट हो गया हूँ। अेक सत्यवानका जीवन छोड़ बाकी जो चाहे सो तू माँग ले। अब तू और कितनी दूर आयेगी? तेरे समान राजकन्याके लिअे अितना श्रम अुचित नहीं है।"

सावित्रीने अपना कथन जारी रखा: "सज्जनोंका धर्माचरण हमेशा अटल होता है। धर्माचरणमें वे कभी पीछे क़दम नहीं हटाते। धर्माचरणमें वे दुःखका भी अनुभव नहीं करते। सज्जन सदा निर्भय होते हैं। अपने सत्यके द्वारा वे सूर्यका रक्षण करते हैं। अपने तपोबलसे वे भूमिको आधार देते हैं। हे धर्मराज, जो गये हैं और जो आज विद्यमान हैं, अुन सब लोगोंको आधार तो सज्जनोंका ही है। यह स्मरण करके कि श्रेष्ठ लोग अिसी रास्ते गये हैं, सज्जन परकार्यमें रत रहते हैं, और किसी प्रकारके प्रतिफलकी अपेक्षा नहीं रखते। सज्जनोंका समागम निष्फल नहीं जाता। अुनसे प्राप्त द्रव्य नष्ट नहीं होता। यह धर्म अबाधित होनेसे सज्जन ही विश्वके संरक्षणकर्ता हैं।

"पतिव्रते, तूने धर्मका हृदय ही मेरे सामने खोलकर रख दिया है। जैसे-जैसे तेरी पवित्र वाणी सुनता जाता हूँ, वैसे-वैसे तेरे प्रति मेरे हृदयमें अुत्कृष्ट भक्ति अुत्पन्न होती जाती है। अब जो तेरी अिच्छा हो सो वर माँग ले।"

सावित्रीका कार्य हो गया। धन्य-धन्य होकर वह अुत्साहसे बोली: "भगवन्, अब तक मानो अपने पापका ही फल मेरे सामने खड़ा था, जिससे 'सत्यवानके जीवनको छोड़' यह वचन मुझे सुनना पड़ता था। आपके अबके अिस वचनमें वह बात नहीं रही। मैं धन्य हो गयी हूँ। मैं यह वर माँग लेती हूँ कि सत्यवान फिरसे जीवित हो जायँ। क्योंकि पतिके बिना जीना मरणके सामन है।

पतिको छोड़कर मुझे सुख, लक्ष्मी या स्वर्गकी भी अिच्छा नहीं है। पतिके वियोगमें जीवित रहना भी मुझे अच्छा न लगेगा।"

त्रिलोकमें भी जो न टलनेवाला था, वह सावित्रीके धर्मनिष्ठ और अेकनिष्ठ प्रेमसे टल गया। यमराजने अपने पाश छोड़ दिये और बोले: "हे कुलनन्दिनी, कल्याणी सावित्री, तेरे अिस पतिको मैंने छोड़ दिया। अब यह नीरोग होकर तेरे मनोरथ पूर्ण करता हुआ चार सौ साल तक जीवित रहेगा और तेरी सहायतासे अिसे धर्मप्राप्ति होगी। सत्यवान अपने धर्माचरणसे पृथ्वी पर सर्वत्र विख्यात होगा, और अनन्त काल तक तेरी कीर्ति अिस लोकमें अमर रहेगी। तुझे जो वर प्रिय था, सो तो मैंने तुझे दे दिया। लेकिन अिससे पहले चार बार मैंने तुझे वर देनेका वचन दिया है। अुसके बदलेमें जब तक तू कुछ न कुछ माँग न लेगी, तब तक में तेरे बन्धनमें ही हूँ। कृपा करके मुझे वचन-मुक्त कर।"

अब तो सावित्रीको माँगने योग्य बहुत-कुछ सूझ सकता था। अपन ससुरको फिरसे दृष्टि प्राप्त हो जाय; अुनका राज्य अुन्हें वापस मिले; पिताके कोअी पुत्र नहीं है, वह पुत्रवान हो जायँ; आदि बहुतसी बातें अुसने माँग लीं। मनुष्यसे माँगना हो, तो ही संकोच किया जाय न?

सत्यवानको छोड़कर यमराज भी स्वयं मुक्त और सन्तुष्ट हुअे, और अुन्होंने अपने मंदिरकी ओर प्रयाण किया। सावित्री भी अुस जगह वापस चली आयी, जहाँ अुसके पतिका शव पड़ा हुआ था; और अुसने फिरसे पतिका मस्तक गोदमें ले लिया। अुस पतिव्रताके हाथका स्पर्श होते ही सत्यवान सजीव हो गया और आँखें खोलकर अत्यन्त प्रेमके साथ सावित्रीकी ओर देखने लगा।

देहमें जान आते ही सत्यवान बोला: "कितनी देर तक सोता रहा मैं? तूने मुझे समय पर जगाया क्यों नहीं? और जो मुझे खींचकर ले गया था, वह श्यामवर्ण पुरुष कहाँ है?"

अुस समय सावित्री कितने हर्षके साथ बोली होगी! मरे हुअे पतिको फिरसे जीवित होते देख और प्रेमवाणी बोलते सुनकर अुसे कितना आनन्द हुआ होगा! वह बोली, "आप बहुत देर तक सोये हैं। प्रजाका संयमन करनेवाले यमराज आपको छोड़कर चले गये हैं। अब थकावट कम हो गयी हो, तो अुठना ही अच्छा है। देखिये तो, चारों ओर कैसा अँधेरा फैलने लगा है।"

सत्यवान अुठ खड़ा हुआ। अुठकर सारे वनप्रदेशकी ओर देखने लगा। मानो कोअी भूली हुअी बात याद आती हो, अिस तरह अिधर-अुधर देखकर अुसने कहा: "प्रिये, मुझे अितना तो याद आता है कि मैंने तेरे साथ फल चुने, लकड़ियाँ काटीं और बादमें सिरमें भयानक वेदना शुरू हो जानेसे मैं सो गया। अुसके बाद अीश्वर जाने क्या हो गया। मुझे अेक जबरदस्त चक्कर आया। अितनेमें अेक अत्यन्त तेजस्वी पुरुष दिखायी देने लगा। अुसके बाद क्या हुआ, कुछ याद नहीं पड़ता। क्या वह सब स्वप्न ही था? तूने अैसा कुछ देखा?"

सावित्री प्रसंगको समझनेवाली थी। अुसने कहा: "आर्यपुत्र, अब देर बहुत हो चुकी है। पिताजी हमारी राह देखते होंगे। देखिये, रातमें घूमनेवाले पशुओंके शब्द सुनायी देने लगे हैं। सियार रो रहे हैं पेड़के पत्ते भी कैसी भयंकर ध्वनि कर रहे हैं! कल आपसे सब कुछ कहूँगी। अभी तो घर चलिये।"

सत्यवान बिलकुल थक गया था। अुसके लिअे चलना कठिन था। चारों ओर फैले हुअे अंधकारको देखकर और अिसका विचार करके कि आगे कितनी दूर जाना है, अुसने कहा: "अिस समय वापस जाना मुश्किल है, और अँधेरेमें तुझे रास्ता भी न मिलेगा।" सावित्री बहुत चकरा गयी। वह स्वयं निर्णय न कर सकी कि जाना अच्छा होगा या न जाना अच्छा होगा। अिसलिअे अुसने पतिसे ही पूछा: "वह अुस तरफ़ दावाग्निसे दग्ध वृक्षोंमें कहीं-कहीं अग्नि दिखायी देती है। अुसमें से कुछ अंगारे लाकर मैं लकड़ियाँ जलाअूँगी, जिससे

अुनके प्रकाशमें हम जा सकें। और अगर बीमारीके असरके कारण आपके लिअे चलना असम्भव हो, तो हम दोनों सारी रात यहीं बितायेंगे। सबेरे घर लौट जायेंगे।"

सत्यवान भी अिसी दुविधामें था। चलनेकी शक्ति न थी, और अिसकी कल्पना वह खूब कर सकता था कि अगर घर न गये, तो वृद्ध माता-पिता कैसा हाहाकार मचा देंगे। अुसने कहा: "अगर माता-पिता मुझे न देखेंगे, तो कितने दुःखी होंगे! मैं ही अुनका अेकमात्र सहारा हूँ न! कैसी गफ़लत हुअी कि अब तक सोता रहा। अिस बैरिन नींदसे मुझे बहुत चिढ़ हो आयी है। अब तक पिताजीने मेरी खोजमें आकाश-पाताल अेक कर दिया होगा। अगर अुन्हें कुछ अनिष्ट हो गया, तो मुझसे जिया ही न जायगा। अब घर जानेके अलावा कोअी मार्ग ही नहीं।"

पिताजीका दुःख और अपनी निर्बलताका विचार करके सत्यवान रो पड़ा। धीरोदात्त पुरुष जब रोने लगता है, तो अबला ही अुसे सान्त्वना दे सकती है। निष्ठावान सावित्रीने मुग्धभावसे प्रार्थना की और पतिकी आँखोंके आँसू पोंछकर वह बोली: "यदि आज तक मैंने कुछ भी तप किया हो, विनोदमें भी असत्य न बोली होअूँ, तो आजकी रात मेरे सास-ससुर और पतिके लिअे सुखकर हो जाय!" अुसके बाद प्रेमशालिनी सावित्रीने अपने बाल सँवारे और पतिका हाथ पकड़कर अुसे किसी तरह खड़ा किया। पिताजीके लिअे चुने हुअे फलोंकी ओर सत्यवानकी दृष्टिको जाते देखकर अुसने कहा: "अिन टोकरियोंको मैं यहीं टहनियोंमें लटका दूँगी। कल सवेरे आकर ले जायेंगे। लकड़ियाँ भी यहीं रहने दें। सिर्फ़ यह कुल्हाड़ी मैं साथ ले लूँगी।"

फिर अुसने पतिका हाथ अपने बायें कंधे पर रखा और अपना दाहिना हाथ अुसकी कमरमें डालकर वह गजगामिनी धीरे-धीरे चलने लगी। कौन जाने, अिस तरह सावित्रीका सहारा लेते हुअे सत्यवानको

संकोच हुआ होगा या आनन्द! अुसने कहा: "हे भीरु, अिस रास्ते मैं बहुत बार गया हूँ, अिसलिअे यह मेरा परिचित रास्ता है। अब तो चाँदनी भी पत्तोंम से प्रवेश करके कुछ-कुछ मार्ग दिखा रही है। आगे रास्तेमें ढाकका बन है; वहाँ जरा सचेत रहना चाहिये। वहीं दो रास्ते पड़ते हैं। अुनमें से अुत्तरकी ओर जानेवाला रास्ता हमारा है। अब जल्दी चल! मुझे कुछ ठीक मालूम होता है। जल्दी जाकर माता-पितासे मिललें।"

* * *

अिधर द्युमत्सेनको अचानक दृष्टि प्राप्त हुअी, अिसलिअे वह तो आश्चर्यान्वित हो गया। लेकिन अुसका आनन्द ज़्यादा देर तक न रहा। सूर्यास्त हुआ और बेटा-बहू नहीं आये, यह देखकर बूढ़ेका आनन्दाश्चर्य चिन्तामें डूब गया। बूढ़े पाँवोंसे अुसने चारों तरफ़ खोज शुरू की। कअी बार अुसके पैरोंमें काँटे चुभ गये। नुकीले पत्थरोंने भी अिस बातकी तलाश की कि अुस बूढ़े शरीरमें कुछ खून बचा है या नहीं। दर्भोंके ठूँठों पर कअी बार लाल अभिषेक हुआ। पास-पड़ोसके ब्राह्मणोंने अुस वृद्ध पर दया करके स्वयं भी काफ़ी खोज की। कहीं भी पता न चलने पर सब वापस आ गये। अेकने धूनी जगायी, दूसरेने पुराने ज़मानेकी कितनी ही अद्‌भुत कहानियाँ छेड़ीं। लेकिन माँ-बापका धीरज तो टूट ही गया। अुन्होंने फूट-फूटकर रोना शुरू किया: "हे पुत्र, हे साध्वी बहू, तुम कहाँ हो?"

सत्यवादी ब्राह्मण आश्वासन देने लगे। सुवर्चा बोला: "सावित्री तप, अिन्द्रिय-दमन और सदाचारसे युक्त है, अिसलिअे मुझे पूरा-पूरा विश्वास है कि सत्यवान जीवित है।" तपस्वी गौतम बोला: "मैंने चारों वेदोंका सांग अध्ययन किया है। ब्रह्मचर्यका पालन करके गुरु और अग्निको संतुष्ट किया है। केवल वायुका भक्षण करके कितने ही अुपवास किये हैं। सब-के-सब व्रतोंका अेकाग्र अन्तःकरण साक्षी देता है कि आपका सत्यवान जीवित है। वह सकुशल है। मेरी बात पर विश्वास कीजिये।" गौतमके शिष्यको भी लगा कि मैं भी

अिसमें कुछ जोड़ दूँ। वह बोला: "हमारे गुरु महाराजके मुँहसे निकला हुआ अेक भी वचन आज तक झूठा नहीं हुआ है, अिसलिअे मैं विश्वासके साथ कहता हूँ कि सत्यवान जीवित है।" दूसरे बहुतसे ऋषियोंने अपनी-अपनी धारणाके अनुसार आश्वासन दिया। अन्तमें दाल्भ्य ऋषि बोले: "सावित्री व्रत करके बिना कुछ खाये ही गयी है, अिसलिअे अिसमें शक नहीं कि तेरा बेटा जीवित है; तथा हे राजा, यही अिसका प्रमाण है कि तुझे अपनी दृष्टि वापस मिल गयी।" घड़ी दो घड़ी अिस प्रकारकी बातें चलती रहीं। अितनेमें सावित्री और सत्यवान दोनों घर आ पहुँचे। ब्राह्मणोंने आनन्दके साथ कहा: "देख राजा, तेरा बेटा और बहू तुझे वापस मिल गये। तेरी दृष्टि भी तुझे फिरसे प्राप्त हुअी। अब तेरा अभ्युदय नज़दीक आया ही समझ।"

फिर क्या था, सर्वत्र आनन्द-ही-आनन्द छा गया। कअी सवाल पूछे गये और कअी जवाब दिये गये। ऋषियोंने सावित्रीसे आग्रह किया कि अुसे वह सब सत्य वृत्त सविस्तर कहना ही होगा, जो सवेरेसे घटित हो रहा था। गौतमने कहा: "हे सावित्री, तुझे प्रत्यक्ष और अतीन्द्रिय दोनों वस्तुओंका ज्ञान है। अपने तेजसे तो हे सावित्री, तू केवल देवी-जैसी ही है। गुप्त रखने जैसा अगर कुछ न हो, तो सकल वृत्तांत तू हमसे कह दे।" सावित्रीने सुखसे मीठे बने हुअे अपने दारुण दुःखका पूरा वर्णन किया। तब सभी ऋषि अेक स्वरसे बोल अुठे: "हमारे राजाका सारा कुल संकटरूपी अँधेरे गढ़ेमें डूबा जा रहा था; हे साध्वि! तूने अुसे अपने शील, व्रत और पुण्यके बलसे तारा है।" बातें खत्म हुअीं, अितनेमें रात्रि भी समाप्त हुअी और अरुणोदयके साथ द्युमत्सेन राजाके राज्यके लोकप्रतिनिधि राजाको ले जानेके लिअे वहाँ आ पहुँचे। सचिवोंने कहा: "शत्रुके राज्यमें बहुत बड़ी राज्यक्रांति हुअी, शत्रु मारे गये और प्रजाने अेकमत होकर अपना यह आग्रह जताया है कि हम महाराज द्युमत्सेनको ही अपना राजा

बनायेंगे। अिसलिअे हम आपको बुलाने आये हैं।" अिधरकी सब बातें सुनकर सचिवोंने भी तपस्विनी सावित्रीके चरण छूअे।

नारद द्वारा सूचित सावित्रीके दुर्दैवोंके कारण दुःखित अुसका पिता आज अपने घरमें बैठा कैसी मनःस्थितिमें होगा? ये आनन्दके समाचार अुसके पास तुरन्त पहुँचा देनेकी बात किसी-न-किसीको सूझी ही होगी।

वैशंपायन कहते हैं: "सावित्रीकी अिस पुण्यकथाने आज तक असंख्य लोगोंको आश्वासन दिया है, और आगे भी जो कोअी सावित्रीके अिस अुत्कृष्ट आख्यानका श्रवण करके अिसका ध्यान करेंगे, अुनके सब मनोरथ पूर्ण होकर वे दुःखमुक्त होंगे।"

१९२०

वट-सावित्री

ज्येष्ठ सुदी पूनम **१ दिन**

यह त्यौहार प्रायः गर्मीकी छुट्टियोंमें ही पड़ता है। "सतीके पातिव्रत्यके सामने मृत्यु भी हार जाती है," अिस आशयकी शिक्षा देनेवाली अिस कहानीमें असाधारण काव्य भरा हुआ है। आजके दिन वटवृक्षकी पूजा करनेकी अपेक्षा सावित्रीकी ही पूजा करना अधिक अुचित है। सावित्रीकी कहानीमें स्त्रियोंका स्वातंत्र्य और स्त्रीधर्मका सर्वोच्च आदर्श देखनेको मिलता है। अिस दिन सावित्रीका चरित्र अनेक प्रकारसे गाना चाहिये। आजकलकी लड़कियोंको भी यह त्यौहार मनाना चाहिये।

आषाढ़ी महाअेकादशी

आषाढ़ सुदी ११ **आधा दिन**

अिस दिनसे चातुर्मास्य (चौमासे) का प्रारम्भ होता है। चातुर्मास्यके निमित्त बहुतसे व्रत लेनेका यह दिन है। चौमासेमें आबो-हवा अच्छी नहीं रहती। अमुक प्रकारके संयमको स्वीकार करने पर ही चौमासा निर्विघ्न और सुखसे बीतता है। बरसातके दिनोंमें मुसाफ़िरी करना मुश्किल होनेसे अेक ही स्थान पर रहकर अध्ययन करनेका पुराना रिवाज था।

अिस दिनका कार्यक्रम कार्तिकी अेकादशी जैसा ही रखा जाय। लेकिन अुसमें पेड़ोंको पानी देना न रहे। अिस दिन या आषाढ़की अमावसके दिन — जैसी सहूलियत हो — कताअी दंगल रखा जाय; और अगर वह रखा जाय, तो यह दिन पूरी छुट्टीका गिना जाय। जब हवामें नमी होती है, तो अधिक अच्छी तरह काता जा सकता है।

बारिशके दिनोंमें गोशालामें मच्छरोंका अुपद्रव बहुत होता है। अिसलिअे रातको धुआँ करके जानवरोंकी रक्षा करना अिष्ट है।

आचार्यदेवो भव

आषाढ़ सुदी पूनम

मनु भगवान्‌ने कहा है और हमारी भी यही श्रद्धा है कि सावित्री यानी विद्या हमारी माता है, और आप — आचार्य — हमारे पिता हैं। अज्ञान दशामें जन्मे हुअे हमको ज्ञानके संस्कार देकर आपने ही हमें नया जन्म दिया। द्विज बनाया।

आपकी आँखोंमें प्रेमका जादू है। आपके चित्तमें ज्ञानका कल्याण है। प्रभुका मंगल हृदय आपको प्राप्त हुआ है। अिसीसे तो आप अिस प्रकारकी निःस्वार्थ सेवा कर रहे हैं।

मूर्तिकार जिस तरह प्रथम पत्थरमें मूर्तिको देखता है, और बादमें अुसमें से कुरेदकर मूर्तिको प्रगट करता है, अुसी तरह हे गुरुदेव! शिष्यके प्राणोंकी सम्पूर्णताको आप देखते हैं और अपने अद्भुत कौशलसे अुसे विकसित करते हैं। जीवनकी सफलता हमें आप ही से प्राप्त होती है।

स्वयं निष्काम होते हुअे भी हे शिष्य-वत्सल, आपने परमेश्वरसे याचना की: "मेरा ज्ञान समृद्ध हो। मैं मोक्षविद्याका धारणकर्ता हो जाअूँ। मेरा शरीर निरोगी और स्थिर रहे। मेरी जीभ अमृतस्रोती बने। मेरा अध्ययन बहुत बढ़े। मेरा ज्ञान हमेशा अखूट रहे।"

आपकी अेक और प्रार्थना भी है: "पानी जिस तरह तालाबकी तरफ़ बहता है, महीने जिस प्रकार वर्षकी ओर मुड़ते हैं, अुसी तरह सब ब्रह्मचारी मेरे पास आ जायँ। अुनकी शंकायें दूर हो जायँ, अुनका ज्ञान बढ़े। अुनकी वृत्ति संयमशील बने, और अैसे विद्यार्थियों द्वारा मेरी यह कीर्ति सर्वत्र फैले कि मेरे यहाँ ज्ञानका प्याअू है।"

अितनी वत्सलता हमें और कहाँ मिलेगी? हम सिर्फ़ आपको ही पहचानते हैं। हम आपकी शरणमें हैं। आपकी आज्ञा ही हमारे लिअे प्रमाण है।

"त्वं हि नः पिता यः अस्माकं अविद्यायाः परं पारं तारयसि।
नमः परमऋषिभ्यः नमः परमऋषिभ्यः।"

तू ही हमारा पिता है, तू ही हमें अविद्याके अुस पार ले जाता है। परम ऋषियोंको प्रणाम!

अक्तूबर, १९२४

गुरु-पूर्णिमा

आषाढ़ सुदी पूनम **अेक समय**

गुरु-पूर्णिमाका त्यौहार ज़रूर मनाने योग्य है। लेकिन चाहे जिस व्यक्ति विशेषको अीश्वर मानकर अुसकी अंधपूजा करनेमें गुरु या शिष्य किसीकी भी अुन्नति नहीं है। हिन्दूधर्ममें श्री वेदव्यासका स्थान असाधारण है। गुरु-पूर्णिमाके दिन वेदव्यासका स्मरण करके अुनके कार्यको समझ लेना अुचित है।

अीसा-मसीहके जीवन, कथन तथा मरणके विषयमें भी अिस दिन बहुत-कुछ कहा जा सकता है।

सिक्ख धर्ममें बताये गये गुरुके रहस्य और सिक्ख गुरुओंके तेजस्वी जीवन, आदिके बारेमें दत्तजयन्तीकी तरह आज भी कहा जा सकता है। (देखिये 'दत्तजयन्ती')

अिस दिन विद्यार्थी-गण अपनी पाठशाला या आश्रमके लिअे विशेष काम करें, सेवायें दें। हो सके तो अपनी संस्थाके लिअे चन्दा अिकट्ठा करें।

नागपंचमी

सावन सुदी ५

नागपंचमीका अुत्सव बड़ी धूमधामसे मनाया जाता है। महाराष्ट्रमें लोग जंगलसे चिकनी मिट्टी लाते हैं। फिर जिस तरह रोटीके लिअे आटा गूँधा जाता है, अुस तरह अुस मिट्टीको धुनी हुअी रूअीके साथ गूँध कर अुसे बड़े फनवाले नागका आकार देते हैं। अुस नागकी पूँछका मरोड़ अितना ख़ूबसूरत बनाते हैं कि देखते ही बनता है। अब नागके दो डरावनी आँखें तो चाहियें ही। अिसलिअे अुचित स्थान पर दो घुँघचियाँ (गुंजा) बिठा देते हैं। नागको अीश्वरने दो-दो जीभें दी हैं। यह पुरस्कार अगर कुदरतने मुतसद्दियों, वकीलों और अदालतमें गवाहका धंधा करनेवालोंको दिया होता, तो

काफ़ी सहूलियत हो जाती। जब बेचारे नागको किसीसे बोलना ही नहीं होता है, तो फिर सच और झूठके लिअे अलग-अलग जिव्हायें लेकर वह क्या करेगा? लेकिन प्रकृतिने अुसे दोहरी जीभ दी है, अिसलिअे लोग भी दूर्वाके दो दल मिट्टीके नागके मुँहमें खोंस देते हैं, और अुसके सामने दूधका कटोरा रखकर अुसकी पूजा करते हैं। तब तो वह दरअसल अेक कल्याणकर्त्ताके समान प्रतीत होने लगता है।

लेकिन अिस नागपंचमीके पीछे अितिहास क्या है? हरअेक त्यौहार या व्रतके पीछे अुससे सम्बन्ध रखनेवाला अितिहास तो होता ही है। नागपंचमीके बारेमें अेक छोटीसी करुण लोककथा तो है ही। लेकिन नागपूजा अितनी सार्वत्रिक हो गअी थी कि अुसके पीछे तो अेक बड़ा विशाल अितिहास है। महाभारतके आदिपर्वमें ही वह अप्रत्यक्ष रूपसे ग्रथित किया गया है।

जिस तरह हमारे यहाँ यानी ब्राह्मणों और आर्योंमें गोत्र-प्रवर होते हैं, अुसी तरह द्राविड़ादि दूसरी क़ौमोंमें 'देवक' होते थे। अंग्रेजीमें देवकको 'टोटेम' कहते हैं। आज कितनी ही पहाड़ी जातियाँ और जंगली लोग अपने-अपने देवकोंके नामसे पहचाने जाते हैं। नागका 'टोटेम' या देवक रखनेवाली जाति नागलोकके नामसे पहचानी जाती थी। महाभारतकालमें आर्य और नागजातिके बीच युद्ध हुआ करते थे। अिस नागजातिका रक्षक तक्षक नामका राजा था। अुसने परीक्षित राजासे बैर भँजानेके लिअे अुसकी नगरीमें घुसकर अुसका वध किया। फिर तो अिन दो जातियोंके बीच घातक युद्ध छिड़ गया, जिसे अन्तमें आस्तिक ऋषिने बन्द करवाया। अिस आस्तिकका पिता आर्य था और माता थी नागकन्या। अिस प्रकारके आन्तर्जातीय विवाहके बिना यह क़ौमी झगड़ा खत्म होनेवाला न था। ये नाग लोग बड़े शूर, कलारसिक, नगर-रचना-कुशल और अितने विद्वान् थे कि पुरोहितका काम कर सकते थे। आर्य और नाग लोग अेक-दूसरेके अितने निकट सहवासमें रह चुके थे कि अुनमें आन्तर्जातीय विवाह हो सके। अन्तमें

नाग जाति आर्योंमें मिल गयी और अुनके सन्तोषके लिअे अुनका यह अेक त्यौहार आर्योंके त्यौहारोंमें नागपूजाके तौर पर शामिल किया गया।

आर्योंने अपनी दूरदर्शितासे आन्तर्जातीय विग्रह दूर किया, अिसके चिह्नके तौर पर अिस नागपंचमीकी तरफ़ हम देख सकते हैं।

किसीके प्रति भीति हो, धाक हो या आदर हो, तो भोला प्राकृतिक मनुष्य अुसकी पूजाके अुपायको ही आजमाता है। यदि कोअी यह कहे कि आजकी यह नागपूजा सर्पोंके डरसे पैदा हुअी है, तो अुससे अिनकार नहीं किया जा सकता। लेकिन मालूम होता है कि अन्तमें हिन्दू लोगोंने अुसे भी अहिंसाका रूप दे दिया है। चाहे जो हो, लेकिन हिन्दुस्तानकी संस्कृति परम्परासे आचारमें आये हुअे व्रतादिके कारण अखंडित रह सकी है। हिन्दूधर्मने बहुतसे अैसे जंगली रिवाजोंको अुन्नत (सब्लिमेट) बना लिया है।

वि० सू० —— अिस विषय पर मेरा 'अैतिहासिक कल्पनातरंग' लेख देख जाने योग्य है।

नागपंचमी

सावन सुदी ५ **अेक दिन**

मनुष्येतर सृष्टिके साथ समभाव, हिंस्र प्राणियोंके प्रति भी दया-भाव, और अहिंसाका अभयदान, ये तीन बातें हम अिस त्यौहारसे ले सकते हैं। नागपंचमीके दिन झूला झूलनेकी प्रथा सार्वत्रिक है। बैर शान्त हो जाने पर जो आनन्द मनाया जाता है, अुसका यह प्रतीक है। यह प्रथा जारी रखने योग्य है। नागपंचमीके दिन अलग-अलग क़िस्मके खुले मैदानी खेलोंका कार्यक्रम भी रखा जा सकता है।

सभी साँप विषैले नहीं होते। बहुतसे साँप खेतोंमें रहकर खेतीको नुकसान पहुँचानेवाले चूहोंको खा जाते हैं। अिसलिअे अुन्हें क्षेत्रपाल कहा जाता है। यह बात भी समझा दी जाय कि अुन्हें मारनेसे खेतीका नुक़सान ही होता है।

श्रावण-सोमवार

दोपहरकी आधी छुट्टी

बहुतसे लोग श्रावण-सोमवारके दिन आधे दिनका अुपवास रखते हैं। अिसलिअे यह छुट्टी देनेकी ज़रूरत पड़ती है। अिस दिन महिम्न आदि अनेक स्तोत्र कंठ करनेका कार्यक्रम रखा जा सकता है। प्रत्येक सोमवारकी अलग-अलग कहानियाँ हैं। अुनका संग्रह किया हो तो अच्छा।

श्रावण-पूर्णिमा

अेक दिन

यह दिन रक्षा-बन्धनका है। जिस तरह भाअीदूज शुद्ध निष्काम प्रेमका दिन है, वैसा यह दिन नहीं है; यह तो निष्काम रीतिसे रक्ष्य-रक्षकका नाता जोड़नेका दिन है। जो लोग स्वयं अपनी रक्षा नहीं कर सकते (या करना नहीं चाहते), वे जिन लोगों पर अुनका पूरा-पूरा भरोसा होता है, अुनसे रक्षाकी अपेक्षा रखते हैं। अिसका प्रतीक है राखी। स्त्रियाँ, ब्राह्मण(?) और गाय ये तीन वर्ग रक्षाके अधिकारी माने जाते हैं।

राखीके दिन अपने हाथमें कोअी राखी बाँधे या न बाँधे, लेकिन रक्ष्य वर्गके हितका चिन्तन तो अिस दिन करना ही चाहिये। विद्यार्थी अपने दिलबहलावके लिअे पशु-पक्षियों और अपनेसे छोटोंको कअी बार यों ही सताते हैं। यदि वे राखीके दिन अिस बुरी आदतको सुधारनेका विचार करें, तो अच्छा हो। लेकिन यह विचार केवल अुस दिनके लिअे ही न होना चाहिये। समाजकी ग़लत धारणाओंके कारण या तिरस्कारके कारण हरिजनवर्ग कुछ कम नहीं सताया जाता

है। रक्षा-बन्धनके दिन अगर हरिजन लोग अुच्च कही जानेवाली जातियोंके हाथमें राखी बाँधने लग जायँ, तो सहृदय हिन्दुओं पर अुसका बहुत भारी असर होगा। समाजमें अिस रिवाजको दाखिल करनेमें स्कूलोंसे मदद मिल सकती है।

और यह प्रेम-तन्तु हाथके कते हुअे सूतका ही हो सकता है। बाज़ारू सूत प्रेमका वहन कैसे कर सकता है ?

श्रावणी पूर्णिमा द्विज लोगोंके अुत्सर्जन और अुपाकर्मका दिन बन गया है। यह तो वही मसल है कि "कुंडल गये और सूराख रहे"! वास्तवमें यह दिन विद्याध्ययनकी दीक्षाका दिन है। लेकिन आज केवल जनेअू बदलनेमें और सत्तू तथा पंचगव्यका भक्षण करनेमें ही अिसकी परिसमाप्ति होती है। जनेअू पहननेवाले लोग वेदका अध्ययन नहीं करते, और जनेअू पहननेकी नअी प्रथा शुरू करनेवाले भी अध्ययनके बारेमें कोअी विशेष आस्था नहीं रखते। जनेअूके लिअे या ग़रीबोंकी रक्षाके लिअे अगर अिस दिन काफ़ी सूत काता जाय, तो श्रावणी पूर्णिमामें कुछ जान आ जाये। श्रावणी पूर्णिमाके दिन दिनभर सूत कातकर अगर वह सूत गोरक्षाके लिअे अर्पण किया जाय, तो यज्ञोपवीत और रक्षा-बन्धन दोनों चरितार्थ होंगे।

लोकनायक श्रीकृष्ण

कहते हैं कि जिसे किसीका आश्रय नहीं है, अुसे महादेवके पास आश्रय मिलता है। अंधे, लूले, अपंग और पागल ही नहीं, बल्कि भूत, प्रेत, विषधर सर्प आदि भी महादेवके पास आश्रय पा सकते हैं। विष्णुकी कीर्ति यद्यपि अिस तरह नहीं गायी गअी है, फिर भी वे दीन-नाथ हैं। कृष्णावतार तो दीन-दुर्बलों और दुःखियोंके लिअे ही था। श्रीकृष्ण प्रजाकीय अवतार हैं। दाशरथी रामको हम राजा रामचन्द्र कहते हैं। श्रीकृष्णको राजा श्रीकृष्ण कहें, तो कानको कैसा अटपटा-सा लगता है! श्रीकृष्ण यद्यपि बड़े-बड़े सम्राटोंके भी अधिपति थे, तथापि वे जनताके पुरुष थे।

बचपनमें अुन्होंने ग्वालेका धन्धा किया। बड़े हुअे तो सअीस बने। राजसूय यज्ञ जैसे राजनीतिके अुत्सवोंमें अुन्होंने अपने लिअे जूठन अुठानेका काम पसन्द किया। कितने लोकनायक अितना निःस्पृह जीवन दिखा सकेंगे? श्रीकृष्णने अिन्द्रके गर्वज्वरका नाश किया, ब्रह्माके ज्ञान-गर्वका शमन किया, धर्मशास्त्रोंकी रुँधी हुअी हवामें पले हुअे ऋषियोंको अपना रहस्य फिरसे समझाया, नारदके मोहको नष्ट किया, फिर भी वे स्वयं अन्त तक गोपबन्धु ही रहे। गोपीजन-वल्लभ नाम ही अुन्हें पसन्द आया। आभूषणके स्वरूपमें अुन्हें वनमाला ही भायी। सुदामाके तन्दुल, विदुरके घरके सागकी पत्ती और द्रौपदीकी सादी पहुनाअीसे ही अुनके हृदयको सन्तोष मिला। कुब्जाकी सेवाका स्वीकार करनेमें ही अुन्होंने कृतार्थता मानी। वे तो दीनोंके सहायक, 'दीनन दुःखहरन देव सन्तन हितकारी' थे।

श्रीकृष्णने गीताका अुपदेश दिया। किस लिअे? क्या युधिष्ठिरको साम्राज्यपद देनेके लिअे? नहीं, नहीं! यह आश्वासन देनेके लिअे कि 'स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्राः' भी परम गति पा सकते हैं। यह विश्वास दिलानेके लिअे कि 'अनन्य भक्तोंका योगक्षेम मैं स्वयं चलाता हूँ'। यह वचन देनेके लिअे कि 'दुराचारी भी यदि पश्चात्ताप करके

अीश्वर-भजन करे, तो वह मुक्त हो जायगा'। भक्त अगर अपना हृदय शुद्ध करे, तो अुसे सभी प्रकारके पांडित्यसे — बुद्धियोगसे — परिपूर्ण करनेकी ज़िम्मेदारी ज़ाहिर करनेके लिअे।

और, अिस गीतामें भगवान्‌ने कौनसे तत्त्वज्ञानका अुपदेश दिया है? भगवान् कहते हैं: "तुम ज्ञानी भले ही बनो; लेकिन तुम लोकसंग्रहको नहीं छोड़ सकते। जो सच्चे ज्ञानी हैं, वे तो 'सर्वभूतहिते रताः' होते ही हैं।"

श्रीकृष्णने अवतार लेकर क्या किया? कृत्रिम प्रतिष्ठाको तोड़ दिया। अभिमानी प्रतिष्ठित लोगोंको अपमानित किया और निष्पाप हृदयवाले दीनजनोंको श्रेष्ठ करके दिखाया। धर्मको पांडित्यके जालसे बचाकर भक्तिके शुभ आसन पर बैठा दिया। राजा अिन्द्रके गर्वका हरण करके और अुसका कारभार बन्द करके, प्रजामें गोवर्धनरूपी देशपूजा शुरू की। राजाओंको विनम्र बनाया और लोगोंको अुन्नत किया। और अितना सब करने पर भी स्वयं लोगोंके नेता तक नहीं बने।

अेक बार — केवल अेक ही बार — लोगोंकी श्रीकृष्णके अूपरकी श्रद्धा डगमगायी थी। लोगोंने समझा कि देशमें श्रीकृष्ण हैं, अिसीलिअे जरासंध बार-बार हमारे अूपर धावा बोलता रहता है। श्रीकृष्णने लोकमतका मान रखकर मध्यदेशका त्याग किया और समुद्रवलयांकित द्वारिकामें जाकर निवास किया। अिसमें लोगों पर रोष नहीं था। अुस समय आयोनियन (यवन-ग्रीक) लोग हिन्दुस्तान पर हमला करनेकी तैयारीमें थे। अुनका विरोध करनेके लिअे, अुनके हमलेको रोकनेके लिअे, पश्चिमी किनारे पर अेक ज़बरदस्त फौजी अड्डा कायम करनेसे ही देशकी और लोगोंकी रक्षा हो सकती थी। श्रीकृष्णने द्वारावती (गेट ऑफ अिंडिया) में जाकर हिन्दुस्तानके अिस द्वारकी रक्षा की और आर्यावर्तको सुरक्षितता दी। अैसे दीन-नाथके सदियोंसे मनाये जानेवाले जन्म-दिवसका अिन लोकसत्ताके दिनोंमें दुगुना महत्त्व है।

४–९–'२१

जन्माष्टमीका अुत्सव

देशकी राजनीतिक स्थितिके बारेमें अेक वृद्ध साधुके साथ अेक बार मेरी बातचीत हुअी थी। बातचीतके सिलसिलेमें मैंने राज-निष्ठाके बारेमें कुछ कहा। साधु महाराज अेकदम बोल अुठे: "अजी, हिन्दुस्तानमें तो दो ही राजा हुअे हैं। मर्यादा-पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्र और जगद्-गुरु श्रीकृष्ण। आज भी अिन दोनोंका ही हम लोगों पर राज्य चल रहा है। राजनिष्ठा तो अुन्हींके प्रति हो सकती है। ज़मीन पर या पैसे पर राज्य करनेवाले चाहे जो हों, लेकिन हिन्दुओंके हृदयों पर राज्य चलानेवाले तो ये दो ही हैं।" मुझे यह बात बिलकुल सही मालूम हुअी। भजन पूरा करके "राजा रामचन्द्रकी जय" या "कृष्णचन्द्रकी जय" पुकारकर लोग जब जय-जयकार करते हैं, अुस समय जिस तरहकी भक्तिका अुद्रेक दीख पड़ता है, अुस तरहकी भक्ति दूसरे किसी भी मानवी व्यक्तिके प्रति पैदा नहीं होती।

श्री रामचन्द्रजीका जीवन जितना अुदात्त है, अुतना ही सुगम भी है। रामचन्द्र आर्य पुरुषोंके आदर्श पुरुष — पुरुषोत्तम हैं। समाजके नीति-नियमोंका, रस्म-रिवाजोंका, वे परिपूर्ण पालन करते हैं। अितना ही नहीं, बल्कि रामचन्द्रजी लोकमतको अितना मान देते हैं कि जो किसी भी प्रजासत्ताक राज्यके राष्ट्राध्यक्षके लिअे आदर्शरूप हो सकता है। रामचन्द्रजीमें यह निश्चय दृढ़ है कि 'मेरा अशेष जीवन समाजके लिअे है'।

श्रीकृष्ण भी पुरुषोत्तम हैं; लेकिन अलग युगके। श्रीकृष्णमें यह वृत्ति दिखाअी देती है कि जब समाज-संगठन स्वयं ही आत्मिक अुन्नतिमें बाधक होता है, तब अुसके बंधन तोड़ दिये जायें और नवीन नियम बनाये जायें। फिर भी श्रीकृष्ण अराजक वृत्तिके नहीं थे। लोक-संग्रहका महत्त्व वे अच्छी तरह जानते थे। श्रीकृष्णने धर्मको अेक नया ही रूप दिया। और अिसीलिअे श्रीकृष्णके जीवनका हरअेक

प्रसंग रहस्यमय बना हुआ है। कोअी व्याकरणकार जिस तरह अेक बड़ा सर्वव्यापी नियम बनानेके बाद अुसके अपवादोंको अेक सूत्रमें ग्रथित करता है, अुसी तरह श्रीकृष्णने मानो अपने जीवनमें मानव-धर्मके सभी अपवाद सूत्रबद्ध किये हैं। गोपियोंसे अत्यन्त शुद्ध, पवित्र किन्तु मर्यादा-रहित प्रेम, रिश्तेमें मामा होते हुअे भी दुराचारी राजाका वध, भक्तकी प्रतिज्ञाको सच्चा साबित करनेके लिअे अपनी प्रतिज्ञाका भंग करके भी युद्धमें शस्त्र-ग्रहण, आदि सब प्रसंगोंमें 'तत्त्वकी रक्षाके लिअे नियमभंग' के दृष्टांत हैं। श्रीकृष्णने आर्य-जनताको अधिक अन्तर्मुख और अधिक आत्मपरायण बनाया और अपने जीवन और अुपदेशसे यह सिद्ध करके दिखाया कि भोग और त्याग, गृहस्थाश्रम और संन्यास, प्रवृत्ति और निवृत्ति, ज्ञान और कर्म, अिहलोक और परलोक आदि सब द्वन्द्वोंका विरोध केवल आभासरूप है। सबमें अेक ही तत्त्व अनुस्यूत है। आर्य-जीवन पर सबसे अधिक प्रभाव तो श्रीकृष्णका ही है। फिर भी यह निश्चित करना मुश्किल है कि अिस प्रभावका स्वरूप क्या है। जिस प्रकार सरल भाषामें लिखी हुअी भगवद्गीताके अनेक अर्थ किये गये हैं, अुसी प्रकार कृष्ण-जीवनके रहस्यका भी विविध प्रकारसे वर्णन किया गया है। जिस तरह वाल्मीकि-रामायणके श्रीरामचन्द्रजी और तुलसीरामायणके श्रीरामचन्द्रजीके बीच बड़ा अन्तर है, अुसी तरह महाभारतके श्रीकृष्ण, भागवतके श्रीकृष्ण, गीत-गोविन्दके श्रीकृष्ण, चैतन्य महाप्रभुके श्रीकृष्ण और तुकाराम महाराजके श्रीकृष्ण अेक होते हुअे भी भिन्न हैं। वर्तमानकालमें भी नवीनचन्द्र सेनके श्रीकृष्ण बाबू बंकिमचन्द्रके श्रीकृष्णसे अलग हैं; गांधीजीके श्रीकृष्ण तिलकजीके श्रीकृष्णसे भिन्न हैं; और बाबू अरविन्द घोषके श्रीकृष्ण तो सबसे न्यारे हैं। सुलभ और दुर्लभ, अेक और अनेक, रसिक और विरागी, विप्लवी और लोकसंग्राहक, प्रेमल और निष्ठुर, मायावी और सरल — अैसे अनेक प्रकारके श्रीकृष्णकी जयन्ती किस तरह मनायी जाय, यह निश्चित करना महा कठिन काम है।

श्रीकृष्णका चरित्र अुतना ही व्यापक है, जितना कि कोअी संपूर्ण जीवन हुआ करता है। दुनियाकी प्रत्येक स्थितिका श्रीकृष्णने अनुभव किया है। हरअेक स्थितिके लिअे अुन्होंने आदर्श अुपस्थित किया है। श्रीकृष्णकी बाल्यावस्था अतिशय रम्य है। गायों और बछड़ों पर अुनका प्रेम, वनमालाओंके प्रति अुनकी रुचि, मुरलीका मोह, बाल-मित्रोंसे अुनका स्नेह, मल्लविद्याकी ओर अुनका अनुराग, सभी कुछ अद्भुत और अनुकरणीय है। छोटे लड़के ज़रूर अिन बातोंका अनुकरण करें। सुदामाके स्नेहको याद करके जन्माष्टमीके दिन हम अपने दूर रहनेवाले मित्रोंको चार दिन अेक साथ रहनेके लिअे, श्रीकृष्णका गुणगान करके खेलनेके लिअे बुला लें, तो बहुत ही अुचित होगा।

श्रीकृष्णके मनमें छोटा या बड़ा, अमीर या ग़रीब, ज्ञानी या अज्ञानी, सुरूप या कुरूप, किसी भी प्रकारका भेद न था। गौओंको चराने जाते समय श्रीकृष्ण अपने सभी साथियोंसे कहते कि हरअेक बालक घरसे अपना-अपना कलेवा ले आये। फिर वे सबका कलेवा अेक साथ मिला कर प्रेमसे सबके साथ वन-भोजन करते थे। आज भी हम अेक स्कूलके विद्यार्थी, अेक दफ्तरके कर्मचारी, अेक मिलके मजदूर, अेक क्लबमें खेलनेवाले सदस्य अिकट्ठा होकर, अपने-अपने घरसे खानेका सामान लाकर, शहर या गाँवके बाहर किसी कुअें पर या नदीके किनारे पेड़के नीचे गपशप करते, गाते, खेलते या भजन करते हुअे दिन बितायें, तो अुसमें कैसी नयी-नयी खूबियाँ प्रगट होंगी! लेकिन अिस वन-भोजनमें लड्डू, पकौड़ी या चिवड़ा-चबैना नहीं चलेगा। कृष्णाष्टमीके दिन मुख्य आहार तो गोरसका ही होना चाहिये। दूध, दही, मक्खन और कन्द-मूल-फलका आहार ही अिस दिनके लिअे अुचित है। धर्म-संशोधक जगद्-गुरुका जिस दिन जन्म हुआ था, अुस दिन तो लड़के अिस प्रकारका सात्त्विक आहार ही करें। बड़ी अुम्रके लोग अुपवास रखें।

अुपवासकी प्राचीन प्रथा नहीं छोड़नी चाहिये। अुसमें काफ़ी गहरा रहस्य है। अुपवासमें मन अन्तर्मुख हो जाता है। दृष्टि निर्मल होती है। शरीर हलका रहता है। बहुतोंका यह अनुभव है कि समय-समय पर अुपवास करनेकी आदत हो, तो अुपवासके दिन मन अधिक प्रसन्न रहता है। अुपवासमें वासना शुद्ध होती है, संकल्प-शक्ति बढ़ती है। शरीरमें दोष न हो, तो अुपवास करनेसे चित्त अेकाग्र होता है, और धर्मके गहरे-से-गहरे तत्त्व स्पष्ट होते जाते हैं। अगर बुद्धियोग हो, तो अुपवास करके धर्मतत्त्वका चिन्तन किया जाय; और जिसमें अितनी शक्ति न हो, वह श्रद्धावान लोगोंके साथ धर्मचर्चा करे। यह भी न हो सके, तो गीताका पारायण (पाठ) किया जाय; नामसंकीर्तन, भजन आदि किया जाय; सात्त्विक संगीतके साथ भजन गाये जायँ। अुपवासके दिन रोज़मर्राके व्यावहारिक काम जहाँ तक हो सके, कम किये जायँ; लेकिन खाली समय आलस, निद्रा या व्यसनमें न बिताया जाय। बहुत बार हमें सुन्दर-सुन्दर धार्मिक वचन, भजन या पद मिल जाते हैं; लेकिन अुन्हें लिख रखनेके लिअे समय नहीं मिलता! अिस दिन अुनको लिखनेमें समय बिताया जाय, तो अच्छा होगा।

जिनमें सार्वजनिक कार्य करनेकी शक्ति हो, अुनके लिअे अिससे अच्छा और क्या हो सकता है कि वे गोपालके जन्मोत्सवके दिनसे गोरक्षाका आन्दोलन शुरू करें? श्रीकृष्णके साथियोंको जितना दूध और घी मिलता था, अुतना दूध और घी जब तक हमारे बच्चोंको नहीं मिलता, तब तक यह नहीं कहा जा सकता कि हमने श्रीकृष्ण-जन्मोत्सव ठीक-ठीक मनाया है। श्रीकृष्ण अप्रतिम मल्ल थे, गृहस्थाश्रममें रहकर ब्रह्मचर्यका पालन करते थे। वे दीर्घायु थे। अिसलिअे हरअेक अखाड़ेमें जन्मोत्सव मनाया जाना चाहिये और श्रीकृष्णके जीवनके अिस भूले हुअे अंगकी याद फिरसे ताजी करना चाहिये।

जो पांडित्यमें ही जीवन व्यतीत करना चाहते हैं, अुनके लिअे सबसे अच्छा काम यह हो सकता है कि जिस तरह गीतामें श्रीकृष्णने अर्जुनको अुपदेश दिया है, अुसी तरह अुनके भिन्न-भिन्न अवसर पर कहे हुअे तमाम वचन महाभारत तथा भागवत, विष्णु-पुराण और हरिवंशमें से जितने मिल सकें, अुतने सब संग्रहीत करें। और अुसके बाद अिन वचनोंका संदर्भ देखकर, श्रीकृष्ण-चरित्रके अनुसार गीताजीका अर्थ लगायें। और अिस महान् जगद्-गुरुका तत्त्वज्ञान (फिलॉसफ़ी ऑफ लाअिफ़) क्या था, अुसकी राजनीति कैसी थी, आदि बातें निश्चित करके लोगोंके सामने रखें।

यह बहुत नाजुक सवाल है कि जन्माष्टमीका दिन स्त्रियाँ किस तरह मनायें। भक्तिके अतिरेकके स्वरूपका नारदने अपने भक्तिसूत्रमें वर्णन किया है। अुस परसे मनोवृत्तियोंको गोपी समझकर परब्रह्म पुरुष पर वे कितनी मुग्ध थीं, अिसका वर्णन कअी कवियोंने अितना ज्यादा किया है कि श्रीकृष्णके जीवनके परिपूर्ण रहस्यको जनता लगभग भूल ही गयी है। श्रीकृष्णको गोपीजन-वल्लभ कहा गया है। श्रीकृष्ण और गोपियोंके बीचका प्रेम कितना विशुद्ध और आध्यात्मिक बन गया था, अिसकी कल्पना जिन हृदयोंको नहीं आ सकी, अुन्होंने या तो श्रीकृष्णको नीचे घसीट लिया है, अथवा अुस प्रेमका वर्णन करनेवाले कवियोंको हलकी वृत्तिका और असत्यवादी ठहराया है। मेरा कहना यह नहीं है कि कृष्ण और गोपियोंके बीचके प्रेमका वर्णन करनेमें कवियोंने भूल नहीं की है। मैं तो यही मानता हूँ कि समाजकी स्थितिको देखकर कवियोंके लिअे अधिक सावधानीके साथ अुस प्रेमका वर्णन करना अुचित था। मुसलमानी धर्मके सूफ़ी सम्प्रदायके मस्त कवियों और फ़क़ीरोंको सज़ा देते समय कट्टर मुसलमान बादशाह कहते थे कि ये साधु जो कहते हैं, वह ग़लत नहीं है; लेकिन अनधिकारी समाजके सामने

अिस तरहकी रहस्यमय बातें रखकर ये समाजको नुकसान पहुँचाते हैं, और अिसीलिअे ये सज़ाके पात्र हैं। चूँकि गोपियोंके प्रेमको हम नहीं समझ सकते, अिसलिअे अुस प्रेमको अैसा स्वरूप देनेकी कोअी आवश्यकता नहीं, जो हमारी वर्तमान नीति-कल्पनाओंको पसन्द आये। मीराबाअीने स्पष्ट ही दिखाया है कि गोपियोंका प्रेम कैसा था। जब-जब लोगोंके मनसे धर्मके अूपरकी श्रद्धा अुठ जाती है, तब-तब अुस श्रद्धाको फिरसे स्थिर करनेके लिअे मुक्त पुरुष अिस संसारमें अवतार लेते हैं, और स्वयं अपने अनुभवसे और जीवनसे लोगोंमें धर्मके प्रति श्रद्धा पैदा करते हैं। अुसी तरह गोपियोंकी शुद्ध भक्तिके बारेमें जब लोगोंमें अश्रद्धा अुत्पन्न हुअी, तब गोपियोंमें से अेकने — शायद राधाजी ही होंगी — मीराका अवतार लेकर प्रेमधर्मकी फिरसे स्थापना की। यदि हम अीश्वर और भक्तके बीचका यह अनिर्वचनीय प्रेम-संबंध स्पष्ट कर सकें, तब तो गोपियोंके प्रेम और विरहके गीत गानेमें मुझे कोअी आपत्ति नहीं दिखाअी देती। मीराके आदर्शका त्याग हमसे हो ही नहीं सकता। ज़माना बुरा आ गया है, अिसलिअे क्या हम मीराबाअीको भूल जायें? यह बात नहीं है कि श्रीकृष्णके साथ केवल गोपियोंका ही संबंध था। यशोदाजी बालकृष्णको पूजतीं, कुन्ती पार्थसारथिको पूजती, सुभद्रा और द्रौपदी कृष्णको बन्धुरूपमें पूजतीं। श्रीकृष्णका यह संपूर्ण जीवन हमें अपनी स्त्रियोंके सामने रखना चाहिये। श्रीकृष्ण कितने संयमी थे, कितने नीतिज्ञ थे, कितने धर्मनिष्ठ थे, आदि सभी बातें स्त्रियोंके सामने स्पष्ट कर देनी चाहियें। और तभी गोपी-प्रेमका आदर्श अुनके सामने रखना चाहिये। प्रेम और मोहके बीच जो स्वर्ग और नरकके जितना भेद है, अुसे स्पष्ट करके दिखाना चाहिये। पुराणोंमें — भागवतमें — अेक बहुत सुन्दर प्रसंगका वर्णन आया है कि रासलीलामें गोपियोंके मनमें मलिन कल्पना आते ही श्रीकृष्ण — असंख्य रूपधारी श्रीकृष्ण — अचानक

अदृश्य हो गये और जब गोपियोंका मन पश्चात्तापसे पवित्र हुआ, तभी वे फिरसे प्रकट हुअे। अिसका रहस्य हरअेकको समझ लेना चाहिये। अिस रहस्यको किसी भी व्यक्तिसे छिपा रखनेमें कुशल नहीं। अधूरे ज्ञानसे अुत्पन्न होनेवाले दोषोंको हटानेका अुपाय संपूर्ण ज्ञान है, अज्ञान नहीं। प्रेमको अुसके विशुद्ध रास्तेसे हमें ले जाना चाहिये। प्रेम दबानेसे नहीं दबता, बल्कि दबानेके प्रयत्नमें वह विकृत हो जाता है।

जन्माष्टमीके दिन हम सुदामा-चरित्र गायें, श्रीकृष्णजी द्वारा गोपियोंको दिया हुआ संदेश गायें, अुद्धवके हाथ श्रीकृष्णजीका गोपियोंको भेजा हुआ सन्देशा गायें, गीताका रहस्य समझ लें, रास खेलें और अुपवास रखकर शुद्ध वृत्तिसे अुसके अन्दरका रहस्य समझ लें।

जन्माष्टमीके दिन अगर हम गायकी पूजा करें, तो वह ठीक ही है। गायकी पूजा करनेमें हम पशुको परमेश्वर नहीं मानते, किन्तु अुस पूजा द्वारा गायके प्रति प्रेम और कृतज्ञता व्यक्त करते हैं। नदीकी पूजा, तुलसीकी पूजा और गायकी पूजा अगर अच्छी तरह सोच-समझकर हम करें, तो अुससे अन्तःकरणको अच्छी-से-अच्छी शिक्षा मिलेगी, रस-वृत्तिका विकास होगा और हृदय पवित्र तथा संस्कारी बनेगा। प्रत्येक पूजामें अेक-सा ही भाव नहीं रहता। पूजा कृतज्ञतासे हो सकती है, वफ़ादारीके कारण हो सकती है, प्रेमके कारण हो सकती है, आदरबुद्धिसे हो सकती है, भक्तिसे हो सकती है, आत्मनिवेदन-वृत्तिसे हो सकती है या स्वस्वरूपानुसंधानके कारण भी हो सकती है। अिस तरह देखा जाय तो गायकी पूजा करनेमें अेकेश्वरवादी या अनीश्वरवादीको भी कोअी आपत्ति नहीं होनी चाहिये। निरीश्वरवादी ऑगस्टस काण्ट क्या मानव-जातिकी स्त्री प्रतिमा बनाकर अुसकी पूजा नहीं करता था?

श्रावण महीनेमें बहुत-सी गायें ब्याती हैं। घरकी छोटी-छोटी लड़कियाँ अगर कृतज्ञताके साथ गायोंकी और अिधर-अुधर उछलने-

कूदने व चरनेवाले छोटे-छोटे बछड़ोंकी हल्दी और रोलीसे पूजा करें, तो कितनी प्रेम-वृत्ति जाग्रत होगी !

कन्याशालाओंमें अनेक तरहसे कृष्ण-जयन्ती मनायी जा सकेगी। घरके अन्दरकी ज़मीन अच्छी तरह लीपकर सफ़ेद पत्थरकी बुकनीसे और अबीर आदिसे चौक पूरनेकी प्रतियोगिता रखी जा सकेगी। लड़कियाँ गीत गायें, रास खेलें, कृष्ण-जीवनके भिन्न-भिन्न प्रसंगोंका गद्य और पद्यमें वर्णन करें, घरसे कलेवा लाकर सब मिलकर खायें। अुस दिन स्कूलकी लड़कियोंको अपनी सहेलियोंको भी साथ ले आनेकी अिजाज़त हो, तो अधिक आनन्द आयेगा और अधिक लड़कियाँ शिक्षाकी ओर आकर्षित होंगी। धार्मिक शिक्षाको यदि प्रभावकारी बनाना है, तो हर त्यौहारके अवसर पर स्कूलको मन्दिरका स्वरूप दे देना चाहिये। यदि हम मूर्ति-पूजासे न डर गये हों, तो जन्माष्टमीके दिन स्कूलमें हिंडोला बँधवाकर लोरियाँ गायें। अिसमें लड़कियोंकी माताअें भी अवश्य भाग लेंगी।

आजकी कन्याशालाअें अभी तक समाजका अेक अंग नहीं बनी हैं, अुन्होंने समाजमें अभी तक जड़ नहीं पकड़ी है, और अिसीलिअे अिन स्कूलोंको चलानेवाले अुत्साही देशसेवकोंका आधेसे ज़्यादा परिश्रम बेकार जाता है। जन्माष्टमी जैसे त्यौहार मनानेमें यदि समाजकी सभी स्त्रियाँ भाग लेने लग जायँ, तो देखते-देखते शिक्षा सफल हो जायगी; शिक्षाका लाभ केवल स्कूलमें पढ़नेवाली लड़कियोंको ही नहीं, बल्कि सारे समाजको मिलेगा, और हम शिक्षाका जो पवित्र कार्य कर रहे हैं, अुस पर भी श्रीकृष्ण परमात्माकी अमृत-दृष्टि बरसेगी।

३०–८–'२३

प्रतीक्षा

जन्माष्टमी जैसे अुत्सव हम वर्षानुवर्ष क्यों मनाते हैं? असलमें जिस दिन हमारे हृदयमें श्रीकृष्णका अुदय होगा, अुसी दिन हमारी सच्ची जन्माष्टमी होगी। तब तक अिस प्रकारकी रस्मी जन्माष्टमियाँ व्यर्थ ही हैं। पर यह कौन कह सकता है कि हमारे हृदयमें कृष्ण-जन्म कब होगा? अिसीलिअे शबरीकी तरह हमें अुसकी अखंड प्रतीक्षामें, अुसकी अुत्कंठामें रहना चाहिये। यह भी अुतना ही सही है कि अिस प्रकारकी प्रतीक्षाके बिना हमारे हृदयमें कभी कृष्ण-जन्म नहीं होगा।

चोरोंके डरसे हम जो चौकी देते हैं, वह भी सारी रात देनी पड़ती है। चोर कहीं कहकर थोड़े ही आते हैं? वे तो चाहे जिस वक़्त आ सकते हैं? सरहद पर शत्रुके हमलेके विरोधमें अखंड पहरा देना पड़ता है। बरसों तक यह पहरा अुसी तरह देना पड़े तो भी क्या? सरहद पर ग़ाफ़िल रहनेसे काम नहीं चलेगा। दरियाके तूफ़ानमें जहाज़के टूट जाने पर जान बचानेके लिअे कागकी बण्डियाँ (कॉर्क जैकेट) पहनकर लोग दरियामें कूदते हैं। अिस डरसे कि अैन संकटके समय पर घबराहट और दुःखमें कुछ सूझ न पड़ेगा, मल्लाहोंसे समय-समय पर अुसकी क़वायद करायी जाती है, जिससे अैन मौक़े पर भूल नहीं होने पाये। गुजरातके मशहूर लोक-कथा लेखक श्री मेघाणीने अेक लुटेरेकी कहानी दी है। न जाने घरमें कब मेहमान आयेंगे, और अगर आतिथ्यमें भूल हुअी, तो सत्त्व चला जायगा, अिस खयालसे चाहे जहाँसे धन लाकर वह लुटेरा हर वक़्त गरम-गरम रसोअी तैयार रखता था। गोपीचन्दकी माँ मैनावती भी 'गोसाअीं महाराज कब आ जायें, अिसका कोअी ठीक-ठिकाना नहीं,' अिसलिअे गरम-गरम रसोअी हाथमें लेकर सबेरेसे शाम तक

खड़ी ही रहती थीं। ग़फ़लत हुअी और अुसी समय स्वामी महाराज आ जायँ तो? ऋषियोंने शबरीसे कह रखा था कि श्री रामचन्द्र आकर तुझे दर्शन देंगे और तेरा अुद्धार करेंगे। बचपनसे लेकर बुढ़ापे तक सारा जीवन अुसने श्रीरामकी प्रतीक्षामें बिताया। अुसे विश्वास था कि ऋषियोंके शब्द व्यर्थ नहीं जायेंगे। शरीर थका हुआ था, फिर भी राम-दर्शनकी आशासे वह टिकी रही। अन्तमें अुसने रामके दर्शन किये, रामका स्वागत भी किया; फिर अधिक जीनेमें अुसे कुछ सार न दीख पड़ा। पूरी अेक ज़िन्दगी अुसने अिन्तज़ारीमें बितायी।

दर्शनके आनन्दकी अपेक्षा यह प्रतीक्षाकी कृतार्थता कुछ विशेष है। प्राप्तिकी अपेक्षा प्रतीक्षामें जीवनका रस अधिक है। श्रद्धा, आकांक्षा, तपस्या, आशा-निराशा यही जीवनकी दुर्लभ पूँजी है।

यह दुर्लभ पूँजी पानेके लिअे अिस प्रकारके नियतकालिक अुत्सवोंकी आवश्यकता है।

दुनियामें सर्वत्र राक्षस फैले हुअे हैं; ग़रीबोंका कोअी त्राता नहीं रहा है; अनेकरूप धारण करके राक्षस प्रजाको सताते हैं, ठगते हैं, पापके मार्गकी ओर लोगोंको ललचाते हैं और गढ़ेमें ढकेल देते हैं; मनुष्यकी शक्ति, मनुष्यकी बुद्धि सब खर्च हो गयी है; लोग निराश और नास्तिक होने लगे हैं। अैसे समय मंगल-हृदयने करुणामयसे प्रार्थना की कि 'अब तारनहार तू ही है।' अन्तर्यामी जाग्रत हुआ और युगावतार प्रगट हुआ। यह सब श्रद्धापूर्वक मनमें लाकर हम अेकाग्र होनेका जो प्रयत्न करते हैं, अुसका नाम है जयन्तीका अुत्सव। धरतीकी प्यासके कारण जिस तरह आकाशके मेघ पनहाते हैं, अुसी तरह अैसी व्याकुलता और प्रतीक्षाके साथ अवतारी पुरुषका प्राकट्य होता ही है। अुसे हृदयमें स्थान देनेके लिअे हम अपने हृदयका परिष्कार करें; हृदयको माँजकर साफ़ करें, वहाँ स्वागतका शुद्ध आसन तैयार रखें और अुसकी राह देखते रहें — अिसीलिअे ये अुत्सव हैं। पानी और बरफ़ जैसे भिन्न नहीं

हैं, पानी और भापमें जैसे तात्त्विक भेद नहीं है, वैसे ही अिस प्रतीक्षा और प्राप्तिमें भेद नहीं है। भेद है भी तो केवल मात्राका। दिन-दिन यह अुत्कटता बढ़े और बढ़ती रहे; अिसीलिअे अिस प्रकारके अुत्सवोंका आयोजन है।

दिव्य जन्मकर्म

हम सुखमें हों या दुःखमें, जागते हों या सोते, स्वतंत्र हों या परतंत्र, ज़ालिम हों या मज़लूम, संगठित हों या असंगठित, जन्माष्टमी तो हर साल आयेगी ही। सूरज अुगता है और डूबता है, चन्द्रकी वृद्धि होती है और क्षय होता है, नदीका पानी बहता चला जाता है, ऋतुचक्र घूमता ही रहता है, ग्रहण होते हैं और छूटते हैं, काल-प्रवाह बहता जाता है। अुसी तरह जन्माष्टमी नामस्मरण कराती आती है और नामस्मरण कराती चली जाती है। जब हम स्वतंत्र थे तब भी जन्माष्टमी आती थी, हमारा पतन होने लगा तब भी जन्माष्टमी आती रही; अब फिरसे हम अुठनेका प्रयत्न कर रहे हैं, तब भी जन्माष्टमी आयी है। आप अुसका अुपदेश सुनें या न सुनें, वह तो आयेगी और जायेगी। जिसका ध्यान जाग्रत होगा वह अुसका अुपदेश सुनेगा और धन्य होगा।

जन्माष्टमी पुरातन है, सनातन है, नित्य-नूतन है; क्योंकि वह संपूर्ण है। जन्माष्टमी कृष्णावतारका त्यौहार है। कृष्णचरित्र अद्भुत, विविध और संपूर्ण है; क्षीरसागरके समान है। जिसके पास जितनी शक्ति होगी, अुतना अुसमें वह अवगाहन कर सकता है, फिर भी कोअी यह नहीं कह सकता कि मैंने श्रीकृष्णके चरित्रका पार पा लिया है।

* * *

श्रीकृष्णका जन्म कारावासमें हुआ। माता-पिताके वियोगमें अुन्हें बचपन बिताना पड़ा। पुराणकारोंने हमें अैसा चित्र दिया है कि

श्रीकृष्ण गोपियोंके साथ विविध प्रकारकी लीलाअें करनेमें मशगूल थे। लेकिन वे यह बात नहीं भूले थे कि अुनके माता-पिता परराज्यमें बन्दी हैं। श्रीकृष्णने अपना सारा बचपन गोपियोंके बीच बैठकर बंशी बजानेमें नहीं बिताया था। व्यायाम करके मल्लविद्यामें वे प्रवीण हो गये थे। दुष्टोंका दमन करनेके अनेक वस्तुपाठ अुन्होंने बचपनसे ही सीख रखे थे। मथुराकी राजनीतिसे वे हमेशा परिचित रहा करते थे। अनुकूल समय देखकर अुन्होंने कंसका काँटा निकाला, माता-पिताको छुड़ाया और अुसके बाद ही गुरुजीके पास पढ़ने गये।

अुन्होंने वही विद्या सबसे पहले सीखी, जिससे अुनकी माताकी मुक्ति होनेवाली थी, पिताकी मुक्ति होनेवाली थी। अुसके बाद आत्माकी भूखको शान्त करनेके लिअे, ज्ञानकी प्यास बुझानेके लिअे, और विद्याका आनन्द लूटनेके लिअे वे सान्दीपनिके विद्यापीठमें अुज्जयिनी गये। 'प्रथम माता-पिताकी मुक्ति, बादमें विद्या'— यही श्रीकृष्णका जीवन-मंत्र था। अिस बातका अुन्हें कभी पश्चात्ताप नहीं हुआ कि माता-पिताकी मुक्तिके पीछे — स्वदेशकी मुक्तिके पीछे — अुन्हें अपने यौवनके दिन लगाने पड़े। कर्तव्यपालनकी लगनसे श्रीकृष्णकी बुद्धि अितनी तीव्र हो गयी थी कि गुरुके पास विद्या सीखते अुन्हें काल या श्रम लगा ही नहीं। माता-पिताको छुड़ाया, विद्या पूरी की, गुरुको दक्षिणा दी और तभी जाकर श्रीकृष्णने विवाह किया; और विवाहके बाद सारा जीवन निरासक्त वृत्तिसे परोपकार करनेमें लगाया। जिस समय और सब लोग अपने-अपने राज्यका और अपने ही अुत्कर्षका विचार करते थे, अुस समय श्रीकृष्ण सारे भारत-वर्षकी राजनीतिका और धर्म-संस्थापनका विचार करते थे।

श्रीकृष्ण अैसा नहीं समझते थे कि लोक-संग्रहके मानी लोक-संख्या (जन-संख्या) का संग्रह है। और अिसीलिअे अुन्होंने भयानक मानव-संहारको देखते हुअे भी धर्म पर ही डटे रहनेकी हिम्मत दिखायी; और यद्यपि वे स्वयं अप्रतिम मल्ल थे, और देशमें अितना

प्रचंड राष्ट्रक्षयकारी युद्ध मचा हुआ था, तो भी वे निःशस्त्र और अयुद्धयमान रह सके। जब दुर्योधन और अर्जुन दोनों अेक साथ श्रीकृष्णकी मदद माँगने गये, तब अुन्होंने अुन दोनों राजपुत्रोंके सामने जो पसन्दगी रखी वह अर्थपूर्ण है — या तो निःशस्त्र श्रीकृष्णको पसन्द करो या यादव-सेनाको। दोनोंने अपनी-अपनी अिच्छाके अनुसार चुनाव किया और अुसका परिणाम हम देख सकते हैं।

* * *

भारतीय युद्ध महान् था, लेकिन कृष्ण-चरित्र तो अुससे भी महत्तर है। महाभारतमें गौरीशंकर और धवलगिरि जैसे दो प्रचंड शिखर जगमगाते हैं। अिन दो शिखरोंकी तुलनामें बाकी सभी अुत्तुंग शिखर छोटेसे टीलोंके समान दिखायी देते हैं। ये दो शिखर हैं भीष्म और कृष्ण। अुस महान् युद्धमें 'कर्तुम्, अकर्तुम्' और 'अन्यथाकर्तुम्' शक्ति अिन दोमें ही थी। दोनों अेकसे ही अनासक्त, अेकसे ही धर्म-निष्ठ, अेकसे ही परोपकारी और अेकसे ही योगी थे। फिर भी दोनोंमें कितना अंतर! दोनोंका समाज-शास्त्र अलग, दोनोंका राजनीतिक तत्त्वज्ञान अलग और दोनोंका जीवन-पंथ भी अलग। भीष्मका विचार था "प्रचलित राज्य-प्रबंधकी रक्षा करते हुअे, अुसीके द्वारा, जितना कुछ बन सके अुतना, लोक-कल्याण करना और वर्तमानकालके प्रति वफ़ादार रहना"; जब कि श्रीकृष्ण अन्यायके शत्रु, पाप-पुंजके अग्नि और रूढ़िके विध्वंसक थे। अुनकी दृष्टि भविष्यकी ओर थी। राजनीतिक प्रश्नोंमें भीष्माचार्य वैध-नीतिका अनुसरण करनेवाले थे; लेकिन श्रीकृष्ण पुराने सड़े हुअे वैध-नीतिके मुर्दोंको चुन-चुनकर गाड़ने पर तुले हुअे थे। अिसलिअे भीष्माचार्यने सत्ताके पक्षको अपनाया और श्रीकृष्णने सत्यके।

समाज-विज्ञानमें भी दोनोंमें यही भेद था। भीष्माचार्य कहते, **राजा कालस्य कारणम्** — राजा जैसा बनायेगा वैसा ज़माना बनेगा। श्रीकृष्ण कहते, "राजा कहाँसे ज़मानेको बनायेगा? ज़माना तो मैं

स्वयं हूँ, और अेक अेक पुरानी रूढ़िका चुन-चुनकर नाश करनेके लिअे मैंने अवतार लिया है — **कालोऽस्मि लोकक्षयकृत्प्रवृद्धः।**" भीष्माचार्य हमेशा धर्मशास्त्रके नीचे दबे हुअे रहते, और धर्मशास्त्रकी आज्ञाओंका पालन करनेमें ही संपूर्णता मानते। अिसके विपरीत श्रीकृष्ण धर्मकी आज्ञाकी तहमें छिपा हुआ धार्मिक रहस्य समझकर अुसी पर दृढ़ रहते।

फिर भी कैसा आश्चर्य! भीष्माचार्यने प्रतिज्ञा-पालन करके भारतवर्षमें राज्यक्रान्ति होने दी और जिस समाज-व्यवस्थासे वे चिपटे रहना चाहते थे, अुसीका अुन्होंने भारत-युद्धके द्वारा अुच्छेद किया। श्रीकृष्णने प्रतिज्ञा-भंग करके अपने भक्तकी जान बचायी और भीष्मको यश दिया।

जिस तरह शरीर नये-नये वस्त्र धारण करता है, आत्मा नयी-नयी देह धारण करती है, अुसी तरह धर्मकी सनातन आत्माको नयी-नयी विधियाँ खोज निकालनी ही पड़ती हैं। अिन्द्रकी पूजामें जब कोअी अर्थ नहीं रहता, तब गोवर्धनकी पूजा ही चलानी चाहिये। यज्ञ-यागकी धूम मचानेकी अपेक्षा भगवान्की शरणमें जाना ही अधिक श्रेयस्कर है — जन्माष्टमी हमें यही सिखाती है।

श्रीकृष्णका चरित्र हमने अब तक ध्यानपूर्वक नहीं देखा है। श्रीकृष्णकी बचपनकी लीला और बड़ी अुम्रमें किया हुआ जगदुद्धारका अवतारकृत्य अितना अत्यधिक मोहक और अुदात्त है, और श्रीकृष्णको अवतार मानकर हम अितने आश्चर्यमूढ़ हो गये हैं कि अिस पुरुषोत्तमने आदर्श मानवके तौर पर जिस तरह अपना जीवन बिताया, अुसकी तरफ़ हमारा ध्यान ही नहीं जाता। आज तक हमने जितने नररत्नोंकी जीवनियाँ पढ़ी या देखी हैं, अुन सबसे श्रीकृष्णकी जीवनी कुछ और ही तरहकी है। बचपनमें छीके पर रखे मक्खनका नैवेद्य आत्मदेवको समर्पित करनेके बाद यशोदा माता द्वारा पकड़े जानेके भयसे डरे हुअे श्रीकृष्णकी नाटकीय लीला छोड़ दी जाय, तो श्रीकृष्णके सारे

जीवनमें दुःख या भयका कहीं लवलेश भी नहीं पाया जाता। जीवन अितनी विविध घटनाओंसे परिपूर्ण होते हुअे भी श्रीकृष्ण कभी दिङ्मूढ़ नहीं हुअे, दुःखसे नहीं दबे, अथवा अुदासीनतासे शिथिल नहीं हुअे। जिसे आसक्ति ही न हो, वह अुदास क्यों होगा? जो ब्रह्मानंदको जानता हो, वह डरे किससे? जो सर्व भूतोंमें अपनेको ही देखता हो, अुसके मनमें राग, द्वेष या जुगुप्सा कहाँसे होगी? यही श्रीकृष्णका पूर्णत्व है। अेक ब्राह्मणने श्रीकृष्णको लात मारी, तो अुसे अुन्होंने अलंकारकी तरह धारण किया। गांधारीने घोर शाप दिया, तो अुसका अुन्होंने अपने अवतार-कार्यके सहायकके रूपमें आदर किया। अभिमन्यु मारा गया, घटोत्कच मारा गया, द्रौपदीके पुत्रका वध हुआ, अठारह अक्षौहिणी सेनाका नाश हुआ। महान्-महान् आचार्य काम आये, यादव-कुलका संहार हुआ, लेकिन श्रीकृष्ण रहे जैसे-के-वैसे — अक्षुब्ध, अविचलित और गंभीर! मानो प्रलयकालके बादका महासागर!

* * *

क्या कोअी समर्थ चित्रकार अैसा अेक चित्र बना देगा, जिसमें भारतीय युद्धकी संग्राम-भूमि पर घायल हुअे हजारों मुमूर्षु योद्धा खूनके कीचड़में लोट रहे हैं और अुनके बीच श्रीकृष्णकी कारुण्यमूर्ति हरअेकके माथे पर अपना शीतल, वरद हस्त फेरती हुअी घूम रही है? अन्तिम घड़ीमें श्रीकृष्णका दर्शन! यह अहोभाग्य जिस ज़मानेको मिला वह धन्य है! अुस समयके कवियोंने 'मरणोन्मुख वीरोंका है यह मुरलीधर विश्राम महान्।' — अिस प्रकारके भावपूर्ण गीत गाये होंगे।

* * *

सामने भारी संकट देखकर आगे बढ़ना और सबके सम्मुख रहना, या अकेले अपने ही सिर सारे संकटका बोझ अुठा लेना, और जब राज्य-वैभव या कीर्ति मिलनेवाली हो, तब शरमीली बहूकी तरह पीछे-पीछे रहना — श्रीकृष्णका यह स्वभाव कितना अुदात्त-मधुर है!

गोकुलमें जितने भी राक्षस आये, अुन सबको स्वयं श्रीकृष्णने मारा। यमुनामें कालिनाग आकर रहा और अुसने सारे वृंदावनमें आतंक फैलाया, अुस समय अिस बातका विचार किये बिना कि मेरा क्या होगा, श्रीकृष्ण कदंबके पेड़ परसे संकटकी गहराअीमें कूद पड़े। सब गोप-बालक भयभीत हो गये। कितने ही घर भाग गये, और कअी तो वहींके वहीं मूढ़ बनकर खंभेके समान निश्चल रह गये। किसीको कुछ भी नहीं सूझा। अकेले श्रीकृष्णने कालियके साथ युद्ध किया, अुसे हराया, झुकाया और जीवन-दान देकर छोड़ दिया। कंसवधमें वे आगे थे, जरासंधके वधमें भी वे ही अग्रसर थे। जहाँ कहीं संकट पैदा हुआ, वहाँ वे स्वयं अुपस्थित हुअे, और सो भी मोहरे पर।

* * *

जब अिन्द्रने प्रलयकालकी बारिश शुरू की, अुस समय भी श्रीकृष्णने गोवर्धनको अुठाकर प्रजाकी रक्षा की। लेकिन अुसके साथ जनताको यह भी सबक़ सिखाया कि गोवर्धनको अूपर अुठानेमें जब प्रत्येक व्यक्ति मदद देगा, तभी स्वयं प्रभु अपनी अुँगली अुठायेंगे। शक्ति परमात्माकी, लेकिन प्रयत्न तुम्हारा।

* * *

जन्माष्टमीके दिन श्रीकृष्णसे हम क्या माँगें? हरअेक अपनी अपनी वृत्तिके अनुसार माँग ले। भारतकालीन प्रमुख व्यक्तियोंने श्रीकृष्णसे जो कुछ माँगा था, वह पांडव-गीतामें श्लोकबद्ध किया गया है। कृपण कृपणकी तरह माँगेगा, भक्त भक्त-हृदयसे माँग लेगा, अभिमानी अैसे वचन कहेगा, जो अुसके अभिमानको शोभा दें, और वह अपना पाप भी परमात्माके मत्थे मढ़ देगा। लेकिन माँगना हो तो वही माँगना चाहिये, जो वीरमाता, धर्ममाता, तपस्विनी कुन्तीने माँगा था। भागवतमें कुन्तीकी प्रार्थना कितने सुन्दर शब्दोंमें दी गयी है! कुन्ती माता कहती है — ‘हे भगवन्, मुझे वह वैभव नहीं चाहिये, जिससे तुम्हारा विस्मरण हो। मुझे वह आपत्ति दो, जिसके कारण

हमेशा तुम्हारा स्मरण बना रहे, तुम्हारा चिन्तन हो और शरणागतता बढ़े।' भगवन्! हमें आपत्ति दो — आपदः सन्तु नः शश्वत्। क्योंकि

विपदो नैव विपदः सम्पदो नैव सम्पदः।
विपद् विस्मरणं विष्णोः सम्पन्नारायण-स्मृतिः॥

परमात्माको भूल जाना ही बड़ा भारी संकट है, और नारायणका अखंड स्मरण ही सर्व सम्पत्ति, वैभव, श्रेय, प्रेय, स्वराज्य और साम्राज्य है!

जन्माष्टमी

वहीका वही सूरज हर रोज़ अुगता है, फिर भी वह हर रोज़ नया प्राण, नया चैतन्य और नया जीवन ले कर आता है।

यह समझकर कि सूरज तो पुराना ही है, पक्षी निरुत्साह नहीं होते। कलका ही सूरज आज आया है, यह कहकर द्विजगण चिर-परिचयके कारण भगवान् दिनकरका अनादर नहीं करते। जिस मनुष्यका जीवन शुष्क हो गया है, जिसकी आँखोंका तेज अुतर गया है, जिसके हृदयमें रक्तका अभिसरण रुक गया है, अुसीके लिअे सूरज पुराना है। जिसमें प्राणके चैतन्यका थोड़ा भी अंश बचा है, अुसकी दृष्टिसे तो भगवान् सूर्यनारायण नित्य नूतन हैं। जन्माष्टमी भी हर साल आती है। प्रतिवर्ष हम वहीकी वही कथा सुनते हैं, अुसी तरह अुपवास रखते हैं, और अुसी तरह कृष्णजन्मका अुत्सव मनाते हैं। फिर भी हज़ारों साल हो गये, जन्माष्टमी हर साल अुस जगद्-गुरुका अेक नया ही सन्देश हमें देती आयी है। कृष्णपक्षकी अष्टमीके वक्र चन्द्रकी तरह अेक पाँव पर भार देकर और अेक पाँव टेढ़ा रखकर, शरीरको कमनीय बाँक देकर, बंकिमचन्द्र* मुरलीधरजीने जिस दिन

* बंकिमचन्द्र = वक्रचन्द्र = The Crescent Moon.

दुनियामें प्रथम प्राण फूंका, अुस दिनसे आज तक प्रत्येक निराश्रित मनुष्यको आश्वासन मिला है कि 'न हि कल्याणकृत् कश्चित् दुर्गतिं तात गच्छति'—जिस मनुष्यने सन्मार्गको पकड़ा है, जो धर्मसे चिपटा रहता है, अुसकी हे तात! कभी दुर्गति नहीं होती।

* * *

लोगोंको अैसा लगता है कि 'धर्म दुर्बलोंके लिअे है। बहुत हुआ तो वह व्यक्ति-व्यक्तिके सम्बन्धमें अुपयोगी साबित होगा; लेकिन राजा और सम्राट् जो कुछ करेंगे वही धर्म है। साम्राज्य-शक्ति धर्मसे श्रेष्ठ है। व्यक्तिका पुण्यक्षय होता होगा; लेकिन साम्राज्य तो अलौकिक वस्तु है। अीश्वरकी विभूतिकी अपेक्षा साम्राज्यकी विभूति श्रेष्ठतर है। साम्राज्य जब हाथमें विजय-पताका लेकर दिग्विजय करने निकलता है, तब दिनके चन्द्रमाकी तरह अीश्वर कहीं छिप जाता है।'

मथुरामें कंसकी धारणा अैसी ही थी; मगध देशमें जरासंधको अैसा ही लगता था; चेदि देशमें शिशुपालकी यही मनोदशा थी; जलाशयमें रहनेवाला कालिनाग अैसा ही समझता था; द्वारिका पर हमला करनेवाले कालयवनकी फ़िलसूफ़ी यही थी; महापापी नरकासुरको यही शिक्षा मिली थी; और दिल्लीका सम्राट् कौरवेश्वर अिसी वृत्तिमें पला था। ये सब महापराक्रमी राजा अन्धे या अज्ञ न थे। अुनके दरबारमें अितिहासवेत्ता, अर्थशास्त्र-विशारद और राज-धुरन्धर अनेक विद्वान थे। वे अपने-अपने शास्त्रोंको निचोड़कर, अुनका सार निकाल कर, अपने-अपने सम्राटोंको सुनाया करते थे। लेकिन जरासंध कहता—"आपके अितिहासके सिद्धान्तोंको धरा रहने दीजिये! मेरा पुरुषार्थ तो अिसीमें है कि मैं अपने बुद्धिबल और बाहुबलसे आपके अिन सिद्धान्तोंको झूठा साबित कर दिखाअूँ।" कालयवन कहता—"मैं अेक ही अर्थनीति जानता हूँ—दूसरे देशोंको चूस-चूसकर अुनका धन हरण करना! धनवान होनेका यही अेकमात्र सीधा, सरल और अिसलिअे वैज्ञानिक मार्ग है।" शिशुपाल कहता—"न्याय-अन्यायकी बात

प्रजाके आपसी लड़ाअी-झगड़ोंमें चल सकती है। हम तो सम्राट् ठहरे! हमारी जाति ही निराली है। अिज्जत और प्रतिष्ठा ही हमारा धर्म है।" कौरवेश्वर कहता — "जितने रत्न हैं, वे सब हमारी बपौती हैं, हमारे ही पास अुन्हें आ जाना चाहिये; 'यतो रत्नभुजो वयम्' (क्योंकि हम रत्न-भोगी हैं)। रत्नका अुपभोग करनेके लिअे ही हम पैदा किये गये हैं। दुनियामें जितने तालाब हैं, वे सब हमारे ही विहारके लिअे हैं। विना लड़ाअीके हम किसीको सूअीकी नोक पर टिकने जितनी भी भूमि न देंगे।"

पक्षपातशून्य नारदने कंसको सचेत किया कि पराये शत्रुके विरुद्ध तू भले ही विजयी हुआ हो, लेकिन तेरे साम्राज्यके अन्दर — अरे, तेरे घरके ही अन्दर — तेरा शत्रु अुत्पन्न होगा। जिस सगी बहनको तूने अपनी आश्रित दासीकी तरह रखा है, अुसीके पुत्रके हाथों तेरा नाश होगा; क्योंकि वह धर्मात्मा होगा। अुसका तेजोवध करनेके तू जितने प्रयत्न करेगा, वे सब अुसके लिअे अनुकूल ही होंगे। कंसने मनमें विचार किया — "'Forewarned is forearmed!' जो सावधान है वही सन्नद्ध है। समय पर अितनी चेतावनी मिलने पर भी हम पानीसे पहले पाल न बाँधें, तो अितिहासज्ञ कैसे? हम सम्राट् कैसे?" नारदने कहा — "यह तेरी 'विनाशकालकी विपरीत बुद्धि' है। मैं जो कुछ कह रहा हूँ, वह अितिहासका सिद्धान्त नहीं, बल्कि धर्मकी अनुभववाणी है। यह सनातन सत्य है। वसुदेव-देवकीके आठ अपत्योंमें से अेकके हाथों तू ज़रूर मारा जायगा। तेरे लिअे अब अेक ही अुपाय है। अब भी पश्चात्ताप कर और श्री विष्णुकी शरणमें जा।" अभिमानी कंसने तिरस्कारयुक्त अट्टहासके साथ जवाब दिया — "समरभूमि पर पराजित हुअे बिना सम्राट् पश्चात्ताप नहीं किया करते।" तथास्तु कहकर निराश नारद चले गये। कंसने सोचा — "आज तकके सम्राट् विजयी न हुअे, अिसका कारण अुनकी गफ़लत थी। पूरी तरह सावधान रहना वे न जान सके। मैं भी अगर

गाफ़िल रह जाऊँ, तो मुझे भी हारना पड़ेगा। लेकिन कोअी बात नहीं। जो वीर है अुसे चाहिये कि वह हमेशा जयके लिअे कोशिश करे और पराजयके लिअे तैयार रहे। हार जानेमें कोअी हेठी नहीं, लेकिन धर्मके नाम पर पहले ही किसीकी शरण जानेमे बदनामी है। धर्मका साम्राज्य साधु-संन्यासी, बाबा-वैरागी और देव-ब्राह्मणोंको ही मुबारक़ हो। मैं तो सम्राट् हूँ। मैं तो केवल शक्तिको ही पहचानता हूँ।"

क्रूर होकर कंसने वसुदेवके सात निरपराध अर्भकोंका ख़ून कर डाला। कृष्णजन्मके समय अीश्वरी लीला प्रवृत्त हुअी, और कृष्ण परमात्माके बदले कन्या-देहधारी शक्ति कंसके हाथमें आ गयी। कंसने अुसे ज़मीन पर पटककर मारना चाहा, मगर शक्ति थोड़े ही मरने वाली थी? वसुदेवने चुपकेसे श्रीकृष्णको गोकुलमें ला रखा; लेकिन परमात्माको कोअी भी बात छिपाकर नहीं रखनी थी। परमात्माको 'प्रकटताकी भीति' (Sin of secrecy) कहाँ थी? शरमिन्दा हुअे कंससे शक्तिने अट्टहास करके कहा, "तेरा शत्रु तो गोकुलमें दिन-दूना और रात-चौगुना बढ़ रहा है।" मथुरासे गोकुल-वृन्दावन बहुत दूर नहीं है। चार-पाँच कोस भी न होगा। कंसने कृष्णको मारनेके जितने सूझे अुतने सब प्रयत्न किये; लेकिन अुसको मालूम न हुआ कि श्रीकृष्णकी मृत्यु किस बातमें है। श्रीकृष्ण अमर तो थे नहीं; लेकिन मरणाधीन भी नहीं थे। धर्मकार्य करनेके लिअे वे आये थे। जब तक धर्मका राज्य प्रस्थापित नहीं होता, तब तक भला वे कैसे विरत हो सकते थे? कंसने सोचा कि श्रीकृष्णको अपने दरबारमें बुलाकर अुन्हें मार डाला जाय। लेकिन वहीं अुसकी बाज़ी पलट गयी; क्योंकि अुसकी प्रजाने परमात्म-तत्त्वको पहचाना और वह परमात्माके अनुकूल हो गयी।

कंसका नाश देखकर जरासंधको चेतना चाहिये था। लेकिन जरासंधने सोचा — "नहीं, कंसकी अपेक्षा मैं अधिक सावधान हूँ।

अनेक जरा-जर्जरित, भिन्न-भिन्न अवयवोंको अेक जगह साँध — जोड़ कर मैंने अपने साम्राज्य-शरीरको प्रबल बनाया है। मल्लयुद्धमें मेरे जोड़का कौन है? मेरी नगरीका कोट दुर्भेद्य है। मुझे डर काहेका?" लेकिन जरासंधकी भी दातुनके समान दो कमचियाँ बन गयीं। कालिनाग तो अपने जलस्थानको सुरक्षितताका नमूना समझता था। अुसका जहर असह्य था; केवल फूत्कारसे ही बड़ी-बड़ी सेनाओंको मार डालता था। अुसके अुस विषम विषका भी कुछ न चला। कालयवनने भी चढ़ाअी की, लेकिन सोये हुअे मुचकुन्दकी क्रोधाग्निसे वह बीचमें ही जल गया। नरकासुर अेक स्त्रीके हाथों पराभूत हुआ और मर गया। कौरवेश्वर दुर्योधन द्रौपदीकी क्रोधाग्निमें भस्म हो गया, और शिशुपालको अुसीकी की हुअी भगवन्निन्दाने मार डाला।

षड्रिपुके समान ये छः सम्राट् अुस समय मर गये। सप्तलोक और सप्तपाताल सुखी हुअे और जन्माष्टमी सफल हुअी। फिर भी अितने सालोंके बाद भी, हर साल हम यह अुत्सव किस लिअे मनाते हैं? अिसलिअे कि अभी हमारे हृदयोंमें से और सामाजिक जीवनमें से षड्रिपुओंका नाश नहीं हुआ है। वे हमें बहुत सताते हैं। हम लगभग निराश हो गये हैं। अैसे अवसर पर हमारे हृदयमें श्रीकृष्ण-चन्द्रका जन्म होना चाहिये। अिस आश्वासनका हमारे हृदयमें अुदय हो जाना चाहिये कि 'जहाँ पाप है, वहाँ पापपुंजहारी भी है।' जब मध्यरात्रिके अन्धकारमें कृष्णचन्द्रका अुदय हो जायगा, तभी निराश दुनिया आश्वासन पा सकेगी और धर्म पर दृढ़ रह सकेगी।

४–९–'२७

जन्माष्टमीका कार्यक्रम

सावन वदी ८ **अेक दिन**

जन्माष्टमी यानी गीता-गायक, गोपाल, श्रीकृष्णकी जयन्ती। अिस दिन गोसेवाका विचार प्रथम होना चाहिये; गोशाला सम्बन्धी कुछ-न-कुछ सेवा अिस दिन करनी चाहिये। लड़कियाँ तो गायकी पूजा करेंगी ही।

अिस दिन सब लोग अेक साथ बैठकर बारी-बारीसे अेक-अेक अध्याय बोलकर गीताके अठारहों अध्यायका पाठ करें। गीता-शास्त्रका थोड़ा विवेचन हो। श्रीकृष्णने कालिय, कंस, जरासंध, शिशुपाल, नरकासुर तथा दुर्योधन, अिन छः सम्राटोंके साम्राज्यका जो संहार किया, अुसका अितिहास आज कहा जाय। अिसमें थोड़ा नाटच-भाग भी मिलेगा, जिससे अेकाध नाटच-प्रयोग रखा जा सकता है। दोपहरको विद्यार्थी और शिक्षक मिलकर घूमने जायँ और भोजन करें। रातमें भागवतकी कोअी कथा कही जाय।

गणपति-अुपासना

हमारा हिन्दूधर्म अनेक छोटे-बड़े और नये-पुराने सम्प्रदायोंका अेक अविभक्त कुटुम्ब है। मनुष्यकी शक्ति और वृत्तिके अनुसार अुसे अेक ही सत्य अलग-अलग ढंगसे प्रतीत होता है। फिर अुसमें अनुभवके अलावा मनुष्य अपनी कल्पना और काव्यशक्तिको जोड़कर अुसकी विविधताको बहुत बढ़ा देता है। कालके प्रवाहके कारण मनुष्यके विश्वासोंमें जो परिवर्तन होते हैं, अुन सब परिवर्तनोंमें से कालक्रमके तत्त्वको भूल जानेसे या अुसके मिट जानेसे भी कअी झंझटें पैदा हुआ करती हैं। लेकिन मनुष्यप्राणी स्वभावसे अितना पुराणप्रिय है कि परेशान करनेवाली अिन झंझटोंको भी हिफ़ाज़तके साथ रख लेनेकी अिच्छा अुसके मनमें अुत्पन्न होती है। लेकिन अैसा भी तो नहीं कहा जा सकता कि अिस वृत्तिसे कुछ फ़ायदा होता ही नहीं। अितिहासकी

दृष्टि रखनेवाले समझदार लोगोंको अुसमें से अितिहास मिलता है, विकासका तत्त्व प्राप्त होता है, और मोटी अक़्लवाले सामान्य जन तो जिस तरह भी आश्वासन प्राप्त किया जा सकता है, अुसे पाकर सन्तोष मानते हैं। विविध वृत्तियोंके लोग, जहाँ किसी तरहकी अेक-वाक्यता नहीं है, वहाँ भी अैसी परिस्थितिमें से ही अेकताका अनुभव करने लगते हैं।

गणेश-चतुर्थीके अुत्सवको ही ले लीजिये। गणपति-अुपासना अेक या दूसरे रूपमें वेदकालसे चली आयी है। लेकिन यह कहना मुश्किल है कि आजकलका गणेशपूजाका पंथ वैदिक है। हिमालय पर्वतमें कअी स्थानोंसे छोटे-बड़े अनेक झरने निकलते हैं; और संयोगवशात् अेक होकर अेक नदीका नाम प्राप्त करते हैं। मालूम होता है, यही हाल अिस गणेशभक्तिका भी हुआ है। अिसकी पौराणिक कथाअें देखने लगें, तो वे कहीं भी मेल नहीं खातीं। अैसा दिखाअी देता है कि जिस तरह आकाशके तारोंसे अुत्पन्न हुअी पौराणिक कहानियों और कल्पनाओंमें मेल जैसी कोअी चीज़ नहीं हुआ करती, अुसी तरह यहाँ भी हुआ है।

और शायद गणपति भी आकाशकी किसी ज्योतिमें से ही बना कोअी देवता हो। रंगसे गणपति लाल होता है। अुसे लाल रंगके फूल भाते हैं। तो फिर वह आकाशका मंगल नामक ग्रह ही क्यों न हो? गणपतिकी कअी चतुर्थियोंको 'अंगारिकी चतुर्थी' कहते हैं। अंगारक यानी मंगल। वह अंगारिकी चतुर्थी अगर मंगलवारके दिन आये, तो अुसका पुण्य अधिक समझा गया है। गणपतिको मंगलमूर्ति तो कहते हैं। ग्रहोंमें मंगलका नाम तो 'मंगल' है, मगर वह शुभ ग्रह नहीं समझा जाता। गणपतिका परिचय विघ्नहर्त्ता, विघ्ननाशकके तौर पर कराया गया है। फिर भी मानव-गृह्यसूत्रमें बताया है कि रुद्र तथा महादेवने विनायकको गणोंका प्रमुख नियुक्त किया, और मनुष्योंके कार्योंमें विघ्न अुपस्थित करनेका काम अुसे

सौंपा गया। महाभारतमें शिव, स्कन्द, विशाख आदि देवताओंका ज़िक्र बच्चोंको तकलीफ़ देनेवाले देवताओंके तौर पर किया गया है; वही हालत विनायककी भी है।

पुराने ज़मानेमें देवताओंके संबंधमें जो कल्पना थी वह मिश्र थी। देवता यानी शक्ति; वह मनुष्यको हैरान भी करे और मदद भी दे। राजाकी ख़ुशामद करके मनुष्य अुसका अनुग्रह प्राप्त कर सकता है, और राजाकी अवकृपा होनेसे मनुष्यका सत्यानाश होता है। अिसी तरहकी कल्पना अिन देवताओंके विषयमें भी थी। गणपति पहले तो विघ्नकर्ता होगा, बादमें भक्तोंने विनय-अनुनय करके अुसे विघ्नहर्त्ता बनाया होगा।

अेक जगह कहा गया है कि गजासुरको मारनेके लिअे भगवान् विष्णुने पार्वतीजीके पेटसे जन्म लिया। दूसरे स्थान पर कहा गया है कि महादेवजीने ग़लतीसे अपने द्वारपाल गणका सिर धड़से अलग कर दिया और अपनी भूल ध्यानमें आते ही वास्तविक अपराधी गजासुरका सिर काटकर अुसे अुस गणके धड़ पर जोड़ दिया। अिस कहानीमें शायद किसी अनार्य पूजाके वैदिक पूजामें रूपान्तरित किये जानेका अुल्लेख होगा।

गणपति या गणेश अनेक देवताओंका सरदार होना चाहिये। पुराने ज़मानेमें कअी जनतन्त्रात्मक राज्य गणराज्यके नामसे पहचाने जाते थे। अुन गणराज्योंकी लोकसभाके देवताके तौर पर गणपतिकी स्थापना हुअी होगी। जिस तरह व्यक्तिके आत्मा होती है, अुसी तरह संगठित समाजके, समष्टिके भी आत्मा होनी चाहिये। यह सामाजिक आत्मा ही गणपति है। गणपतिकी पूजा करनेके मानी हैं, सामाजिक जीवनको अपनी निष्ठा समर्पित करना — अैसा भी शायद पुराने समयका भाव होगा।

कुछ भी हो, महादेव और विष्णुके बीचका विरोध टालनेके लिअे गणपतिका अुपयोग अच्छा था। गणपति शैव भी है और

वैष्णव भी। किसी शुभ कार्यका प्रारंभ करना हो या घरका दरवाजा बनाना हो, तो वहाँ गणपतिको बैठा देनेसे सब झगड़े टल जाते हैं।

जब हम लिखना सीखते हैं, तब 'अ, आ, अि, अी' से प्रारंभ नहीं करते। महाराष्ट्रमें हम 'श्री गणेशाय नमः' से शुरू करते थे। आज 'श्री गणेशका' अर्थ ही 'प्रारंभ' हो गया है। संभव है कि आद्य लिपिकार कोअी गणेश नामक योजक होगा। चूँकि अुसने लिपिका आविष्कार किया था, अिसलिअे लेखनका प्रारंभ कृतज्ञतापूर्वक अुसके नामसे ही करनेका रिवाज पड़ गया होगा। व्यासजीने पहले अपने मस्तिष्कमें महाभारत रचा, पर अुसे लिखनेवाला कोअी क़ातिब (लेखक) न मिल सका। आखिरकार गणेशजीने अुनकी कठिनाअीको दूर किया। पुराणोंमें कहा है कि त्रिविष्टप (तिब्बत) में 'लेखाः' नामके देवगण रहते थे। वे लेखन-कलामें प्रवीण थे। अुनका अगुआ गणपति था। तो क्या हमारी लेखनकला फिनीशियासे न आकर तिब्बतसे यहाँ आयी होगी? देववाणीकी ध्वनियोंकी व्यवस्था करनेवाली हमारी वर्णमाला वैज्ञानिक है। वर्णमालाकी योजना आर्यबुद्धिकी व्यवस्था सूचित करती है। हमारी लिपिमाला अिस तरहकी मालूम नहीं होती। वह वैज्ञानिक नहीं है। वह कहीं बाहरसे हमारे यहाँ आयी होगी। अगर वह तिब्बतसे आयी हो, तो कोअी आश्चर्यकी बात नहीं। लम्बे अरसे तक ब्राह्मण तो लेखनकलाकी अवगणना या अुपेक्षा ही करते आये। अन्तमें अुन्हें भी श्री गणेशजीकी ही शरण लेनी पड़ी।

दूसरी अेक कल्पना यह है कि गणेशजी वास्तवमें गणेश नहीं बल्कि गुणेश हैं। अुपनिषत्कालके बाद जब तीन गुणोंकी व्यवस्था रची गयी, तब अिन तीन गुणोंके स्वामीके तौर पर 'अीश सर्वां गुणांचा' (सब गुणोंका अीश्वर) गणपति स्थापित किया गया होगा।

वेदान्त-विद्या जब लोकसुलभ हुअी, तब बहुतसे अनार्य देवता और अुनकी अनार्य पूजा-पद्धति रूपकके तौर पर पहचानी जाने लगी। ॐकार या प्रणवमें सत्व, रज, तम तीनों गुण हैं। अिस ॐकारमें हाथीकी सूँड़ जैसी शकल है। अुस परसे गणेश या गुणेश गजानन समझा गया। अुसके माथे परका अर्धचन्द्र हाथीका दाँत बन गया। गणपति ज्ञानका, वेदान्त-विद्याका स्वामी बन गया। मनको मारे बिना वेदान्त-ज्ञानका साक्षात्कार नहीं होता; अिसलिअे मनके देवता चन्द्रका दर्शन टालकर ही ज्ञानकी आराधना की जाय, तभी चतुर्थी यानी तुरीयावस्था कृतार्थ होगी। गणपति चूहे पर बैठता है। चूहा यानी काल। मनुष्य-जीवनके धागोंको काट खाने-वाला काल यानी चूहा। वह जिसकी सवारी है, वह गणपति ही मोक्षदाता है।

अिसी तरह कुछ लोग यह भी मानते हैं कि जंगली लोगोंकी या अनार्य लोगोंकी किसी पशु-पूजामें से अेक अुपासना अुत्पन्न हुअी, और वह बदलते-बदलते वेदान्त-विद्या तक पहुँच गयी।

लेकिन आज जब हर साल खड़िया मिट्टीसे बनाये हुअे गणपति घर-घर पूजे जाते हैं, तब क्या अुन गणपतिके अुपासकके मनमें यह सब वेदान्त-विद्या जाग्रत रहती है? पुराने समयका गाण-पत्य संप्रदाय बहुत भयावना था। मनुष्यकी खोपड़ियोंके आसन पर गणपतिकी स्थापना होती थी। जारण, मारण, अुच्चाटन, आदि गंदी विद्याओंको गणपतिकी अुपासनाके साथ जोड़ा गया था। गनीमत है कि अुन सबसे हम आज अुबर गये हैं। धर्म-व्यवस्थापक कहते हैं कि कलियुगमें बाकी सब देवता सो गये हैं — सिर्फ़ चंडी और विनायक — अर्थात् काली और गणपति ये दो ही जाग्रत हैं। यह भी कहा गया है कि देवोंमें भी चातुर्वर्ण्य है। शंकरजीका वर्ण ब्राह्मण, विष्णुजीका क्षत्रिय, ब्रह्माजीका वैश्य और गणपतिका शूद्र है। और अिसमें आश्चर्य क्या? शंकरजी अकिंचन

तथा तपस्वी योगी हैं, विष्णुजी लक्ष्मीपति, अैश्वर्यवान, प्रजापालक हैं; ब्रह्मदेव तो निर्माणकर्ता हैं; लेकिन यह समझमें नहीं आता कि गणपतिको शूद्र क्यों समझा गया? क्या अिसलिअे कि वे सामान्य जनताके देवता हैं? कहीं-कहीं अैसी कोशिश हुअी है कि गणपतिको ब्रह्माका ही अेक रूप समझा जाय।

महाराष्ट्रमें गणपतिको 'मोरया' कहते हैं। अिसका मूल पूनाके पासके अेक स्थानिक देवतामें है। मोरगाँवके साधु मोरया गणपतिके अुपासक थे। अुन्हींको लोगोंने गणपतिका अवतार बना दिया। आजकल महाराष्ट्रमें कला और अुत्सवके नामसे कभी-कभी गणेशजीकी अैसी नखरेबाज़ और बेहूदी मूर्तियाँ बनायी जाती हैं कि शायद हिन्दूधर्मके कट्टर विरोधी भी अुनकी अिससे अधिक विडम्बना न कर सकेंगे। अिस तरहकी मूर्तियोंको देखकर भक्तिभाव कैसे जाग्रत या पुष्ट हो सकेगा?

मूर्तिविधानके ग्रंथोंमें लिखा है कि पूजाके प्रमुख देवोंकी मूर्तियाँ शास्त्रोक्त 'ध्यान' के वर्णनके अनुसार ही प्रसन्न-गम्भीर बनानी चाहियें। क्षुद्र देवों और यक्ष-किन्नरोंकी मूर्तियोंके बारेमें किसी तरहकी रोकटोक नहीं लगाअी गयी है।

हिन्दूधर्मके धार्मिक विश्वासोंमें कुछ अितना गड़बड़घोटाला फैल गया है कि अुसमें अेक बार प्रवेश करनेके बाद बाहर निकलना आसान नहीं है। पुराने धर्मकारों और समाज-व्यवस्थापकोंने समाजमें अुच्च वेदान्ती विचार रखनेवाले पंडितोंसे लेकर भूत-प्रेत-पिशाचादि काल्पनिक और भयानक शक्तियोंके अुपासकोंकी प्राकृत पूजा तक सबको सूत्रबद्ध करनेका प्रयत्न किया। यह कहना कि अैसा करनेके लिअे अुन्होंने जान-बूझकर धूर्त्तताका प्रयोग किया, अैतिहासिक दृष्टिसे असत्य ही मालूम होता है। बिलकुल अलग-अलग ढंगकी दो वस्तुओंको जब अेक ही समय और अेक साथ सही समझकर स्वीकार करना पड़ता है, तब मनुष्यका कल्पना-समृद्ध मन अेक या दूसरे ढंगसे

अुनका समन्वय करनेका प्रयत्न करता ही है। यह कहना धृष्टता समझी जायगी कि अुनमें से अेक कल्पना सच्ची है और दूसरी झूठी। परम सत्य तो मनुष्य-बुद्धिसे न मालूम कितनी दूर है। हमारी हालत तो वैसी ही है, जैसी अुस पत्थरकी, जो हिमालयके सामने खड़ा होकर कंकरसे कहता है — "तेरी अपेक्षा मैं हिमालयसे अधिक मिलता-जुलता हूँ।" अेक कल्पनाको जंगली कहें, दूसरीको सुधरी हुअी कहें, और समय बीतने पर अनुभव करें कि दोनों अेक-सी ही भ्रमात्मक थीं — अैसी हालतमें लोगोंकी कल्पनाओं पर नुक्ताचीनी करते रहनेके बजाय अपने जीवनमें सदाचार, अनासक्ति और निर्भयता लानेका प्रयत्न करें, तो लोग आप ही आप कल्पनाके काव्यका आनन्द लूटते हुअे भी अुसके प्रभावके नीचे दब न जायँगे। जहाँ-जहाँ वहम और भ्रमात्मक कल्पनाअें मनुष्यको दुराचारकी ओर ले जाती हैं, वहाँ-वहाँ लोगोंको जाग्रत करते जायँ, तो बाकी सब काम आप ही आप सिद्ध होगा।

दूसरी तरफ़ हमें लोगोंको भौतिक विज्ञानोंके सिद्धान्तों तथा पद्धतियोंसे परिचित करानेकी जल्दी करनी चाहिये। भौतिक ज्ञान और आध्यात्मिक ज्ञान परस्पर विरोधी नहीं, बल्कि पोषक हैं। अेक ज्ञान दूसरे ज्ञानका विरोधी हो ही कैसे सकता है? दोनोंमें से तो सच्ची धार्मिकता जाग्रत होनी चाहिये। दोनोंकी अुपासना मानव-कल्याणकी दृष्टिसे ही करनी चाहिये, और सच कहें तो यही ज्ञानदाता-विघ्नहर्ता गणपतिकी सच्ची अुपासना है।

१४–१०–'३४

गणेश-चतुर्थी

भादों सुदी ४ **अेक दिन**

ज्ञान-साधनाका दिन। अिस दिन किसी भी नये शास्त्रका अध्ययन शुरू किया जाय। भिन्न-भिन्न शास्त्रोंकी रूपरेखा देनेवाले व्याख्यान रखे जायँ। मोदक (पक्वान्न विशेष) का भोजन अिस दिनके लिअे रूढ़िके अनुसार है ही। बहुत-सी जगहोंमें रामनवमी, जन्माष्टमी, और गणेश-चतुर्थी ये तीन दिन सामाजिक अुत्सवके तौर पर रूढ़ हैं। अुनके कारण समाज अेकत्र हो जाता है। अुससे लाभ अुठाकर धर्म संस्करणके अनेक प्रश्नोंकी चर्चा हो सके तो अच्छा। अिस कामके लिअे गणेश-चतुर्थी विशेष अनुकूल दिन है। विद्यार्थी मिट्टीके गणपति बनायें, दूसरी भी तरह-तरहकी मूर्तियाँ बनायें और अुन सबको अेक बड़े कमरेमें तरतीबसे सजाकर रखें। भाँति-भाँतिकी पत्तियाँ लाकर अुनकी रचनासे कमरेको सुशोभित करें।

जैनियोंके पर्युषणके बारेमें भी विवेचन होना चाहिये।

मनोविज्ञान पर लिखे हुअे अैसे निबंध भी आज पढ़े जा सकते हैं, जिन्हें विद्यार्थी आसानीसे समझ सकें।

१
चरखा-द्वादशी

भादों वदी १२

चरखा-द्वादशी अब प्रजाकीय त्यौहार बन चुका है। स्वराज्य जब मिलना होगा, तब मिलेगा। स्वर्गीय दादाभाअीसे लेकर लोकमान्य, दास और लाजपतराय तकके देशसेवकोंने अब तक अितनी कुछ तपश्चर्या की है कि यदि अब स्वराज्य न मिले, तो ही आश्चर्य है। अगर हम बड़ी-बड़ी ग़लतियाँ न करें, फल-सिद्धिके समय ही कहीं अड़ंगा न लगायें, और अपने-अपने हिस्सेका राष्ट्रकार्य दृढ़तापूर्वक और समय पर करनेसे न चूकें, तो घरकी गायकी तरह स्वराज्यको अपने आप हमारे दरवाज़े चले आना है। लेकिन अेक बड़ा भारी सवाल यह है कि यह स्वराज्य प्रजाका ही होगा या नहीं, और लोगोंके लिअे वह पूरी तरह आशीर्वादरूप होगा या नहीं। किसान जितना अनाज दुनियाको देता है, अुसकी पूरी क़ीमत अुसे नहीं मिलती। बीचके लोग ही अुसका बड़ाभारी हिस्सा खा जाते हैं। हमें मिलनेवाले स्वराज्यकी अगर यही हालत हो जाय, तो अुसे अेक राष्ट्रीय आपत्ति ही समझना चाहिये। वैसा न होने पाये, अेक हाथसे जिसे प्राप्त किया, अुसे दूसरे हाथसे खो न बैठें, स्वराज्यका अर्थ गृह-कलह न हो, अिसी-लिअे गांधीजीने चरखा-धर्म शुरू किया है और खादीका अितना आग्रह रखा है।

सहाराके मरुस्थलके बारेमें यह कहा जाता है कि कभी-कभी वहाँ आसमानसे मूसलाधार बारिश आ जाती है, लेकिन मरुभूमिकी रेत अितनी अधिक गरम होती है कि भूमि तक पहुँचनेसे पहले ही पानी भाप बनकर आकाशमें अुड़ जाता है। यदि हमने खादीकी दीक्षा न ली, तो ग़रीबोंकी दृष्टिसे हमारे स्वराज्यकी भी यही दशा होगी।

कुछ लोग कहते हैं कि बाहरसे खादी पहननेसे क्या होता है? अंदरसे जब हृदय-परिवर्तन हो जायगा, तभी वह सच्चा समझा जायगा। बात तो सही है। लेकिन यह किसने कहा कि बाह्य आचरणका हृदय पर असर नहीं पड़ता? आठों पहर शरीरके साथ सम्बन्ध रखनेवाली खादी अपना मूक सबक सिखाये बिना नहीं रहेगी। क्रियाकी शक्ति शब्दकी शक्तिकी अपेक्षा किसी भी हालतमें अधिक ही होती है।

चरखा-द्वादशीका यह माहात्म्य है। चरखा-द्वादशी यानी आम जनताके साथ हृदयकी अेकता। चरखा-द्वादशी यानी स्वराज्य-निष्ठा। चरखा-द्वादशी यानी निर्वैर स्थितिकी साधना। चरखा-द्वादशी यानी राष्ट्रीय संगठन।

चरखा-द्वादशी मनानेकी पद्धति कुछ अंशतक निश्चित हो जानी चाहिये। पिछले छः-सात सालमें अुसका स्वरूप बहुत-कुछ तो निश्चित हो ही गया है। अब तक हम अुस दिन 'हिन्द-स्वराज' का पारायण करते थे। अब अुसके साथ 'आत्मकथा' के दोनों भाग आठ दिनमें पढ़नेकी कअी लोगों द्वारा सूचना की गयी है। अिस हीरक महोत्सवके लिअे वह भले ही ठीक हो, लेकिन यह विचारने योग्य है कि हर साल 'आत्मकथा' का पारायण करना सरल होगा या नहीं। 'मंगल प्रभात' का वाचन शायद अधिक अुपयुक्त होगा।

चरखा-द्वादशीके दिन हरिजनोंके साथ समरसताका हमें अनुभव करना चाहिये। सफ़ाअीका जो कार्य अन्त्यज लोग करते हैं, अुसे आजके दिन स्वयं करके कुछ लोगोंने अिस बारेमें दिशा-सूचन किया है। जिन-जिन स्थानोंका हम अिस्तेमाल करते हैं, अुन सबको स्वयं साफ़ रखकर हमें सामाजिक स्वच्छताका पाठ सीखना चाहिये, और प्रचलित प्रथामें सुधार करने चाहिये। हर साल यदि हम अिस तरह आगे बढ़ते जायँगे, तो सारे राष्ट्रको बिना खर्चके और कम प्रयत्नसे अैसी शिक्षा मिलेगी, जो सैकड़ों बरससे नहीं मिली है।

लेकिन चरखा-द्वादशीका प्रधान कार्य तो अुसके नाममें ही सूचित किया गया है। अिंग्लैंडके प्राण जिस तरह अुसके जहाज़ों पर निर्भर हैं, अुसी तरह हमारे प्रजाकीय प्राण चरखे पर निर्भर हैं। यह चरखा यदि चलने लगे, तो हमारा भाग्य भी चलने लगेगा। अगर यह रुक जाय, तो हमारा भाग्य भी रुक जायेगा। यह तो ज़रूरी है ही कि चरखा-द्वादशीके दिन सभी लोग चरखा कातें। लेकिन अुसके अलावा नये चरखे शुरू करना, जो कातना नहीं जानते अुन्हें कातना सिखाना, जो पूनियाँ बनाना नहीं जानते अुन्हें अुस दिन शास्त्रकी दीक्षा देना, यह चरखा-द्वादशीका प्रधान कार्य है। चरखा चलानेकी जिन्हें आतुरता है, लेकिन चरखा खरीदनेकी हैसियत नहीं है, अैसे लोगोंको चरखा दिलानेके लिअे धनिकोंको चाहिये कि वे कुछ पैसा राष्ट्रीय संस्थाओंके सिपुर्द करें। चरखा चलता रहे, अिसके लिअे चरखेको प्रधान पद देनेवाली संस्थायें भी शुरू करनी चाहियें।

चरखेके महत्त्वको समझते हुअे भी और खादी पहनते हुअे भी बहुतसे लोगोंने अभी तक विदेशी कपड़ोंका मोह नहीं छोड़ा है। अिस तरह संचित पापको जला डालनेका काम भी अिस दिन प्रसन्नताके साथ किया जाना चाहिये। चरखा-द्वादशीके दिन विदेशी कपड़ोंकी जितनी होलियाँ कर सकें, अुतने ग़रीबोंके आशीर्वाद मिलनेवाले हैं। चरखा-द्वादशीके दिन देशके भाअी-बहन आजीवन शुद्ध खादी ही पहननेका संकल्प करें, तो देशकी कितनी प्रगति होगी! अिसमें आत्मोन्नति तो है ही।

हमें यह खयाल छोड़ देना चाहिये कि त्यौहारके मानी यह हैं कि हम बीमार पड़ने तक ख़ुद मिष्टान्न और पक्वान्न खायें और दूसरोंको भी वैसा करनेका आग्रह करें। सोच-विचारकर देखनेसे मालूम हो जायगा कि अिसमें न सुख है न सामर्थ्य-वृद्धि है, और न प्रसन्नता ही। यह असंस्कारी प्रथा हमें मिटा देनी चाहिये। पेटूपनका प्रचार कैसा? अिसके विपरीत, अुस दिनसे अितना और अैसा आहार लेना

शुरू करना चाहिये, जिससे आरोग्य तथा पुष्टि बढ़े, काम करनेका अुत्साह बढ़े और शरीर और मन पर ठीक-ठीक क़ाबू रहे।

चरखा-द्वादशी यानी स्वदेशीका प्रचार। अुस दिन खेलोंमें ख़ास कर देशीपन होना चाहिये। देशी संगीत, देशी चित्रकला, देशी भाषा आदिके पुनरुद्धारके लिअे अुस दिन कितने ही नये-नये कार्यक्रम रखने चाहियें। चरखा-द्वादशी राष्ट्रीय अेकताका भी त्यौहार है। अुस दिन किसीका भी बहिष्कार न हो। सभी जातियोंके, सभी धर्मोंके तथा सभी पंथोंके स्त्री-पुरुष, बालक और वृद्ध अेकत्र होकर सामाजिक जीवनका अनुभव करें। चरखा-द्वादशी आत्मशुद्धिका त्यौहार है। जीवनमें जिन-जिन व्यसनोंने घर कर लिया है, अुन्हें निकाल बाहर करनेका प्रयत्न अिस दिन विशेष रूपसे होना चाहिये। आये दिन जिस कार्यका प्रारम्भ आसान नहीं होता, अुसे करनेकी शक्ति अुस दिनके माहात्म्यके कारण मनुष्यमें शायद आ भी जाय। चरखा-द्वादशी दीनजनोंके दुःखोंका निवारण कनेका त्यौहार है। अुस दिन यथा-शक्ति संकट-निवारणमें अपना हिस्सा अदा करना चाहिये। चरखा-द्वादशी स्वराज्यका त्यौहार है। अिसलिअे अुस दिन अिस बातका अुग्र चिन्तन होना चाहिये कि परतंत्रताका अन्त किस तरह शीघ्राति-शीघ्र किया जाय।

२

गांधी-सप्ताह

भादों वदी १२ और दूसरी अक्तूबरको गांधीजीका जन्मदिन मनाया जाता है। देशी तिथि और अंग्रेज़ी तारीखके बीच जब अन्तर रहता है, तब वह अेक सप्ताहके तौर पर मनाया जाता है। मित्रोंने अिस द्वादशीको 'मोहन-द्वादशी' नाम दिया; किन्तु गांधीजीको यह नाम पसन्द न आया। वे यह नहीं चाहते कि कोअी **अुनकी** जयन्ती मनाये। लेकिन किसी भी बहाने अगर लोग दरिद्र-नारायणकी सेवामें लग जाते हों, तो दरिद्रनारायण-हितैषी गांधीजी अुस मौक़ेको हाथसे जाने नहीं देते। अिसलिअे गांधीजीने अिस दिनका नाम 'चरखा-द्वादशी' रखा है। गुजरातमें अिसे 'रेंटिया बारस' कहते हैं। कअी खादीभक्त अिस दिन चौबीस घंटे चरखा चलाते थे। लेकिन शरीर-स्वास्थ्यकी दृष्टिसे यह तपश्चर्या कठिन मालूम होनेसे लोग आठसे लेकर सोलह घंटों तक द्वादशी या दूसरी अक्तूबरका दिन कातनेमें बिताते हैं। कुछ संस्थाओंके सदस्य सब मिलकर और बारी-बारीसे कातकर चौबीस घंटे अखंड चरखा चलाते हैं। खादी-बिक्रीका काम तो अिस सप्ताहमें बड़े जोशके साथ चलता ही है। अुत्साही विद्यार्थी और मध्यम श्रेणीके स्त्री-पुरुष खादी लेकर घर-घर जाते हैं, अुसकी बिक्री करते हैं, और साथ-साथ खादीका सन्देश भी सुनाते हैं।

जिनमें गांधीजीका सन्देश पूर्णतया मिल सकता है, अैसे दो ग्रंथोंका अिस दिन पारायण करनेवाले लोग भी बहुतसे हैं। ये दो ग्रंथ हैं—'हिन्द-स्वराज' और 'मंगल प्रभात'। अिन दोनों प्रबन्धोंमें गांधीजीकी कही हुअी सभी बातें सूक्ष्म रूपसे आ जाती हैं। अुनका

विवेचन अिस दिन भाषणों द्वारा किया जाता है। अिस सप्ताहमें कअी सवर्ण लोग हरिजन-सेवामें खास समय बिताते हैं, और अस्पृश्यता-निवारणके लिअे अपने गाँवमें घूम-फिरकर सफ़ाअीका काम करनेवाले दलका भी संगठन करते हैं। हरिजन-सेवक-संघ अिस सप्ताहमें अपना वार्षिक चन्दा अिकट्ठा करता है। राष्ट्रभाषा-प्रेमी लोग अिस सप्ताहमें हिन्दी-हिन्दुस्तानीके सन्देशको घर-घर पहुँचानेके लिअे सभाओं, संभाषणों, चर्चाओं और वार्तालापोंका कार्यक्रम रखते हैं।

मूक भावसे लोगोंको राष्ट्रीयताका सन्देश सुनानेकी अिच्छा रखनेवाले लोग अिस सप्ताहमें खास राष्ट्रीय ध्वजके रंगके खादीके फूल बड़े आदरके साथ लगाते हैं। गोसेवामें राष्ट्रका हित तथा धर्म पालन समझनेवाले लोग अिस सप्ताहमें गायका ही दूध और अुससे बननेवाले दही, घी आदि वस्तुओंका प्रयोग करनेका व्रत लेते हैं।

ये सभी बातें अच्छी हैं और बरसोंसे चली आयी हैं; अिसलिअे सप्ताहके कार्यक्रममें राष्ट्रीय संकल्प-शक्ति प्रतिष्ठित हुअी है।

अिनके साथ ही आत्मशुद्धिकी दृष्टिसे दूसरा भी बहुत-कुछ किया जा सकता है। गीता, धम्मपद, बाअिबल, क़ुरान, ग्रंथसाहब, अवेस्ता गाथा आदि धर्मग्रन्थोंसे चुने हुअे वचनोंका पठन तथा मनन अिस दिन किया जाय, तो सर्वधर्म-समभावकी भावनाको दृढ़ करनेमें बड़ी मदद मिलेगी। गांधी-सप्ताहके दिनोंमें भिन्न-भिन्न धर्मों, पंथों और संप्रदायोंके लोग अगर अिकट्ठे होकर कोअी सामुदायिक कार्यक्रम रख सकें, तो अिससे अच्छी बात और क्या हो सकेगी?

मनुष्य स्वभाव ही अैसा है कि अुसे सत्यका तथा अुसकी प्राप्तिका दर्शन अेकांगी होता है। अिसलिअे दुनियामें पक्षभेद, मतभेद और पंथभेद तो रहेंगे ही। जो व्यक्ति निःस्पृह, निर्वैर और सत्यधर्मी है, वह अपने सत्य-दर्शनके साथ निष्ठावान तो रहेगा ही, लेकिन अिस निष्ठाके कारण ही दूसरोंके सत्यदर्शनके प्रति वह अपना आदरभाव भी क़ायम रखेगा। अिस भावनाको बढ़ानेके लिअे गांधी-

सप्ताहके दिनोंमें भिन्न-भिन्न पंथों, पक्षों, दर्शनों और साधनाओंके लोग अगर प्रेमादरभावसे अेक-दूसरेसे मिलनेका सिलसिला शुरू करें, तो वह भी अिस छिन्न-भिन्न राष्ट्रकी अेक भारी सेवा समझी जायगी। लेकिन अिसमें तनिक भी कृत्रिमता और दंभ नहीं होना चाहिये। हार्दिक प्रेम और आदरसे ही यह काम हो सकेगा; और बहुतसे साधकोंका यह अनुभव भी है कि अुचित साधनों द्वारा हार्दिक प्रेमादरको बढ़ाना असंभव नहीं है।

गांधी-जयन्तीके दिनको बहनोंने खास तौर पर अपनाया है। स्त्री-जाति मोक्षकी, स्वतंत्रताकी, ब्रह्मचर्यकी और राष्ट्र-सेवाकी संपूर्ण अधिकारिणी है—अिस सिद्धान्तको गांधीजीने देशके हृदय पर अितनी दृढ़ताके साथ अंकित किया है कि गांधीयुग स्त्री-अुद्धारका युग कहा जाता है। अिस सप्ताहमें शिक्षित और संस्कारी महिलायें अपनी अपढ़ बहनोंको कुछ ज्ञान देंगी और अुनसे नम्रताके साथ प्राचीन आर्य संस्कारोंकी शिक्षा ग्रहण करेंगी, तो स्त्री-जातिका अुद्धार बड़ी आसानीसे हो सकेगा।

गांधीजीने अेक बहुत बड़ा और सूक्ष्म राष्ट्रकार्य खास करके स्त्री-जातिको ही सौंप दिया है। वह है मद्य-निषेध। मद्य-निषेध कोअी मामूली बात नहीं है। सत्त्वगुण और तमोगुणके बीच चलनेवाला वह अेक भीषण युद्ध है। मद्यपान जैसे नरकासुरका संहार करनेको सत्यनिष्ठ सत्यभामा ही समर्थ है।

अिस तरहके संगीन कार्यक्रमके साथ राष्ट्रीय संगीत, चित्रकला, अुत्सवका समारोह, ग़रीबोंको अन्नदान आदि रोचक कार्यक्रमोंको भी हमें भूलना न चाहिये। सात्त्विक नृत्यकला तथा नाटच अभिनय द्वारा हम भगवान्‌की अुपासना कर सकते हैं। अगर गांधी-सप्ताह द्वारा ग़रीबोंको अिस बातका पूरा यक़ीन नहीं हो जाता है कि प्रत्येक खादीधारी अुनका संकट-निवारक और हितकर्ता सेवक है, तो समझना होगा कि वह गांधी-सप्ताह निष्फल ही साबित हुआ। गांधीजीने सबसे श्रेष्ठ

बात यह सिखायी है कि सत्ययुग हो या कलियुग, निष्काम सेवा ही अलौकिक शक्ति है। अपने राष्ट्रके ग़रीबोंकी सेवा करके ही हम स्वाधीनताकी शक्ति प्राप्त कर सकेंगे।

आसुरी संपत्तिका आज जितना अुत्कर्ष और प्रभाव है, अुतना शायद तीनों युगोंमें आज तक कभी नहीं हुआ था। अब दैवी सम्पत्तिको भी अपना अुतना ही, बल्कि अुससे भी अधिक अुत्कर्ष और प्रभाव दिखलाना चाहिये।

अिस सप्ताहमें गांधीजीके राष्ट्रकार्य और सामाजिक तथा व्यक्तिगत जीवनसे सम्बन्ध रखनेवाले सिद्धान्तोंके प्रचारके लिअे जितने सार्वजनिक कार्यक्रमोंका आयोजन हम कर सकेंगे, अुतना ही वह अुपयुक्त साबित होगा। आत्मदर्शनका अेक महत्त्वपूर्ण अुपाय अुसका श्रवण और कीर्तन भी है। महाराष्ट्रमें गणेश-अुत्सवमें जिस तरह ज्ञानचर्चा और विचार-प्रचारके सत्रका आयोजन किया जाता है, अुसी तरह अिस सप्ताहमें गांधीजीके विचारों, सिद्धातों और नीतिका श्रवण तथा कीर्तन सामूहिक रूपसे होना ज़रूरी है।

'चरखा-द्वादशी' हमारे लिअे नव-संकल्प-पोषक और पूर्ण स्वातंत्र्यप्रेरक बने!

सं० १९९४

चरखा-द्वादशी

भादों वदी १२ **१ दिन**

अिस त्यौहारका नाम 'मोहन-द्वादशी' रखा गया था; मगर गांधीजीने सिफ़ारिश की कि अिसे 'चरखा-द्वादशी' कहा जाय।

अिस दिन 'हिन्द-स्वराज' का पारायण करके, चरखेके सम्बन्धमें गांधीजीके कुछ लेख पढ़कर, सारा दिन धुनने और कातनेमें लगाना चाहिये। जिनसे हो सके वे फलाहार करके रहें। अिस दिनके अुत्सवमें हरिजनोंको विशेष रूपसे शामिल कर लेना चाहिये।

(गांधीजीके धर्म-विचारोंको समझ लेनके लिअे 'मंगल प्रभात' का अध्ययन-विवेचन आज विशेष रूपसे किया जाय। अुनके धर्म-विषयक लेख दो भागोंमें प्रकाशित हुअे हैं। शिक्षक तथा प्रौढ़ विद्यार्थी अुन्हें आज अवश्य पढ़ें।)

नवरात्रि

[कुवार सुदी १से १०]

महिषासुर साम्राज्यवादी था। सूर्य, अिन्द्र, वायु, चन्द्र, यम, वरुण आदि सभी देवताओंके अधिकार और महकमे वह स्वयं ही चलाता था। स्वर्गके देवोंको अुसने भूलोककी प्रजा बना दिया था। किसीको भी अपने स्थान पर सुरक्षितताका अनुभव नहीं होता था। देव परमात्माके पास गये। परमात्माने सृष्टिकी जो व्यवस्था कर रखी थी, अुसे महिषासुरने कितना बिगाड़ डाला है, अिस बारेमें अुन्होंने भगवान्को सब-कुछ कह सुनाया। सब हाल सुनकर विष्णु, ब्रह्मा, शंकर आदि सब देवोंके शरीरोंसे पुण्यप्रकोप जाग अुठा और अुससे अेक दैवी शक्ति-मूर्ति अुत्पन्न हुअी। सब देवोंने अिस सर्वदेवमयी शक्तिको अपने-अपने आयुधोंकी शक्तिसे मंडित (लैस) किया, और फिर अिस दैवी शक्ति और महिषासुरकी आसुरी

शक्तिमें भीषण युद्ध ठन गया। कौन कह सकता है कि वह युद्ध कितने सालों तक चला? लेकिन अैसा माना जाता है कि कुआर महीनेकी शुक्ला प्रतिपदासे लेकर दशमी तक यह युद्ध चलता रहा, और अुसके अनुसार दैवी शक्तिकी विजयका नवरात्रि-अुत्सव हम मनाते हैं।

दैवी शक्ति परमा विद्या है; ब्रह्मविद्या है; आत्मतत्त्व, विद्यातत्त्व और शिवतत्त्वका शुद्ध रूप है। यह शक्ति 'शठं प्रति शुभंकरी' है; 'अहितेषु साध्वी' है; दुश्मनके साथ भी वह दया प्रकट करती है। दुष्ट लोगोंके बुरे स्वभावको शान्त करना ही अिस दैवी शक्तिका शील है। 'दुर्वृत्तवृत्तशमनं तव देवि! शीलम्।'

असुर लोग अिस शक्तिको न समझ सके। भक्त लोग जब दैवी शक्तिकी जय बोलने लगे, तो असुर परेशान होकर चिल्ला अुठे, "अरे यह क्या? अरे यह क्या?" आखिर असुरोंका राजा स्वयं ही लड़ने लगा। अुसने अनेक तरहकी नीतियाँ आज़माकर देखीं, अनेक रूप धारण किये, लेकिन अन्तमें 'निःशेष-देवगणशक्ति-समूहमूर्ति' की ही विजय हुअी। वायु अनुकूल बहने लगी; वर्षाने भूमिको सुजला सुफला कर दिया, दिशाअें प्रसन्न हुअीं और भक्तगण देवीका मंगल गाने लगे। देवीने भक्तोंको आश्वासन दिया कि, 'अिसी तरह फिर जब-जब आसुरी लोगोंके कारण आतंक फैल जायगा, तब-तब मैं स्वयं अवतार धारण करके दुष्टताका नाश करूँगी।'

यह महिषासुर प्रत्येक मनुष्यके हृदयमें अपना साम्राज्य स्थापित करनेकी भरसक कोशिश करता है, और अुस-अुस समय अुसके सब स्वरूपोंको पहचानकर अुसका समूल नाश करनेका कार्य दैवी शक्तिको करना पड़ता है। प्रत्येक व्यक्ति अपने अन्तःकरणकी जाँच-परख करने पर यह जान सकता है कि अुसके हृदयमें यह युद्ध कितने सालों तक चलता रहा है। नवरात्रिके दिनोंमें अपने हृदयमें

दीपको अखंड रूपसे प्रज्वलित रखकर हमें दैवी शक्तिकी आराधना करनी चाहिये; क्योंकि जब यह दैवी शक्ति प्रसन्न होती है, तो वही हमें मोक्ष प्रदान करती है।

'सैषा प्रसन्ना वरदा नॄणां भवति मुक्तये।'

२८-९-'२२

सरस्वती-पूजा

कुआर सुदी ८ और ९ **२ दिन**

यह अुत्सव अष्टमी और नवमी दो दिन चले। पुस्तकालयके ग्रथोंको झाड़-पोंछकर तरतीबसे जमाने और संस्थाकी तथा अपनी निजी किताबें ढीली पड़ गयी हों, तो अुनकी ज़िल्दें ठीक करने आदि कामोंमें अेक दिन लगाया जाय। शारदा-मंदिर (पुस्तकालय) को ठीक ढंगसे जमानेके बाद अुसे सजाया जाय और वहाँ शारदा माताकी पूजाके तौर पर संगीतका अेक जलसा रखा जाय।

दूसरा दिन ख़ास करके चित्रकलाके लिअे रखा जाय। अिस दिन काग़ज़की या दूसरी चीज़ोंकी तरह-तरहकी वस्तुअें बनायी जायँ, चौक पूरे जायँ, और हो सके तो धार्मिक या दूसरी अुपयुक्त पुस्तकोंका दान किया जाय।

शारदाका अुद्बोधन

हम नहीं जानते कि किस नवमीको सुरोंने शारदाका अुद्बोधन किया था। लेकिन वह अत्यन्त शुभ, सुभग और कल्याणकारी मुहूर्त होना चाहिये। समृद्धिदायी वर्षाके बाद जो शान्ति, जो निर्मलता, जो प्रसन्नता दृष्टिगोचर होती है, अुसीमें देवताओंको शारदाका दर्शन हुआ। धरतीने अभी हरा रंग नहीं छोड़ा है, परिपक्व धान्य सुवर्ण वर्णकी शोभा फैला रहे हैं — अैसे समय पर देवोंने शारदाका ध्यान किया। सज्जनोंके हृदयोंके समान स्वच्छ पानीमें विहार करनेवाले प्रसन्न कमल और आकाशमें अनन्त काव्यके फव्वारे छोड़नेवाले रसस्वामी चन्द्र, ये दोनों जब अेक-दूसरेका ध्यान कर रहे थे, अुसी समय देवोंने शारदाका आवाहन किया। शारदा आयी और अुससे पृथ्वीके वदन-कमल पर सुहास्य फैला। शारदा आयी और वनश्रीका गौरव खिल अुठा। शारदा आयी और घर-घर समृद्धि बढ़ गयी। शारदा आयी और वीणाका झंकार शुरू हुआ; संगीत और नृत्य ठौर-ठौर आरंभ हुअे।

शारदाका स्वरूप कैसा है? बाला? मुग्धा? प्रौढ़ा? या पुरंध्री? शारदा मंजुलहासिनी बाला नहीं है, मनमोहिनी मुग्धा नहीं है, विलासचतुरा प्रौढ़ा नहीं है। वह तो नित्ययौवना किन्तु स्तन्यदायिनी माता है। वह हमारे साथ हँसती है, खेलती है; मगर वह हमारी सखी नहीं, माता है। हम अुसके साथ बालोचित क्रीड़ा कर सकते हैं; लेकिन हम यह न भूलें कि हम माताके सम्मुख खड़े हैं। माता अर्थात् पवित्रता, वत्सलता, कारुण्य और विश्रब्धता। माता अर्थात् अमृत-निधान। 'न मातुः परदैवतम्।' यह वचन किसी अुपदेशप्रिय स्मृतिकारका गढ़ा हुआ नहीं है। यह तो किसी मातृःपुत्र धन्य बालककी अमृतवाणी है।

चराचर सृष्टिकी अेकताका अनुभव करनेवाले हम आर्य सन्तान अेक ही शब्दमें अनेक अर्थोंको देखते हैं। शारदा यानी सरोवरमें

विराजमान कमलोंकी शोभा। शारदा यानी शरत् पूनम और दीवालीकी कान्ति। शारदा यानी यौवनसहज क्रीड़ा। शारदा यानी कृषिलक्ष्मी। शारदा यानी साहित्य-सरिता। शारदा यानी ब्रह्मविद्या, चिच्छक्ति। शारदा यानी विश्वसमाधि। अैसी ही यह हमारी माता है; हम अुसके बालक हैं। कितनी धन्यता! कितनी स्पृहणीय पदवी! कितना अधिकार! और साथ ही कितनी बड़ी दीक्षा!

शारदाके स्तन्यका स्पर्श जिन होठोंको हुआ हो, वे होठ अपवित्र वाणीका अुच्चारण नहीं करेंगे; निर्बलताके वचन मुँहसे नहीं निकालेंगे; द्वेषका सूचन तक न करेंगे; पापको नहीं सँवारेंगे; पौरुषकी हत्या नहीं करेंगे, और मुग्धजनोंको धोखा न देंगे।

शारदाके मंदिरमें सर्वोच्च कला हो, कलाके नाम पर विचरनेवाली विलासिता नहीं। शारदाके भवनमें प्रेमका वायुमंडल हो, केवल सौन्दर्यका मोहन नहीं। शारदाके अुपवनमें प्राणोंका स्फुरण हो, निराशाका निःश्वास नहीं। शारदाके लताकुंजोंमें विश्व-प्रेमका संगीत हो, परस्पर अनुनयका मूर्खतापूर्ण कलकूजन नहीं। शारदाके विहारमें स्वतंत्रताकी धीरोदात्त गति हो, अुद्देश्यहीन और स्खलनशील पद-क्रम नहीं। शारदाके पीठमें ब्रह्मरसका प्रवाह हो, विषय-रसका अुन्माद नहीं।

माता शारदा! आशीर्वाद दे कि हमें तेरा स्मरण अखंड बना रहे! जब हम अधिकारी बनें, तो तू हमें अपने दर्शन दे! अगर हमारा ध्यान अविचल रहे, हमारी भक्ति अेकाग्र और अुत्कट बने, तो तू हमें अपनी दीक्षा दे! और जब हम तेरी अखंड सेवाके लायक बन जायँ, तब अितनी भिक्षा दे कि केवल तेरी सेवाकी ही धुन हमेशा हम पर सवार रहे! तुझे कोटिशः प्रणाम हैं!

"या देवी सर्वभूतेषु श्रद्धारूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमोनमः ॥"

अक्तूबर, १९२४

विजयादशमी

सीमोल्लंघन पर्व

(कुआर सुदी १०)

आगरेमें मुग़लकालकी जो अिमारतें हैं, अुनमें अेक विशेषता यह है कि अुनके निचले खंड लाल पत्थरके हैं और अूपरवाले सफ़ेद पत्थरके। लाल पत्थरका काम जहाँगीरके समयका है, और सफ़ेद पत्थरका शाहजहाँके समयका। हर अिमारतमें अिस तरहका कालक्रमका अितिहास वर्णभेदसे मूर्तिमन्त दिखाअी देता है। किसी भी पुराने बड़े शहरमें पुरानी बस्ती और नयी बस्ती अेक-दूसरीसे सटी हुअी नज़र आती है या बस्तियोंकी तहों पर तहें जमी हुअी दिखाअी देती हैं। भाषाकी कहावतोंमें भी भिन्न-भिन्न समयका अितिहास समाया हुआ होता है। हम घरमें ज़मीन पर गच करनेके लिअे जो पत्थर बिछाते हैं, वे अैसे मालूम पड़ते हैं, गोया यह समूचा अेक ही पत्थर हो; मगर अुनमें भी प्रत्येक स्तरमें कअी बरसोंका अन्तर होता है। नदीके किनारे हर साल जो कीचड़की तहों पर तहें जम जाती हैं, अन्तमें अुन्हींसे धरतीकी भट्ठीमें अेक पत्थर बन जाता है।

दशहरेका त्योहार भी अेक ही त्योहार होते हुअे भिन्न कालके भिन्न-भिन्न स्तरोंका बना हुआ है। दशहरेके त्योहारके साथ-साथ असंख्य युगोंके असंख्य प्रकारके आर्य पुरुषार्थोंकी विजय जुड़ी हुअी है।

मनुष्य-मनुष्यका संघर्ष जितना महत्त्वका है, अुतना ही या अुससे भी अधिक महत्त्वका संघर्ष मनुष्य और प्रकृतिके बीचका है। मानवको प्रकृति पर जो सबसे बड़ी विजय मिली है, वह है खेती। जिस दिन जुती हुअी ज़मीनमें नौ प्रकारका अनाज बोकर, कृत्रिम जलका सिंचन करके अुसमें से अपनी आजीविका तथा भविष्यके संग्रहके लिअे पर्याप्त अनाज मनुष्य प्राप्त कर सका, वह दिन मनुष्यके लिअे सबसे बड़ी विजयका था; क्योंकि

अुसके बाद ही स्थिरतामूलक संस्कृतिका जन्म हुआ। अुस दिनकी स्मृतिको हमेशा ताजा रखना कृषि-परायण आर्य लोगोंका प्रथम कर्तव्य था।

बीसवीं सदी भौतिक तथा यांत्रिक आविष्कारोंकी सदी समझी जाती है, और वह अुचित भी है। लेकिन मानव-जातिके अस्तित्व और संस्कृतिके लिअे जो महान् आविष्कार कारणरूप हुअे हैं, वे सब आद्य-युगमें ही हुअे हैं। ज़मीनको जोतनेकी कला, सूत कातनेकी कला, आग जलानेकी कला और मिट्टीसे पक्का घड़ा बनानेकी कला — ये चार कलायें मानों मानवी संस्कृतिके आधारस्तंभ हैं। अिन चारों कलाओंका अुपयोग करके विजयादशमीके दिन हमने कृषिमहोत्सवका निर्माण किया है।

अपने बचपनमें देखे हुअे पहले नवरात्रिके अुत्सवकी याद मुझे आज भी बनी हुआी है। मेरे भाअी प्रतिपदाके दिन शहरके बाहर जाकर खेतोंसे अच्छी-से-अच्छी साफ़ काली मिट्टी ले आये। मैं स्वयं नौ अनाजोंकी फेहरिस्त बनाकर अुनमें से जो अनाज हमारे घरमें न मिले अुन्हें अपने नानाके यहाँसे ले आया। मेरी दादीने छोटीसी धुनकीसे रूअी धुनकर अुसकी ९६ अंगुल लम्बी बत्ती बनायी। मेरी माँने सूत कातकर (चरखे पर नहीं बल्कि लोटे पर) अुस सूतकी अेक हज़ार छोटी-छोटी बत्तियाँ बनायीं। मैं बाज़ारसे नारियल तथा पंचरत्न ले आया। पंचरत्नमें सोना, मोती, हीरा, प्रवाल और नीलम या माणिक थे। अिन पंचरत्नोंके टुकड़े बहुत ही छोटे थे। मेरी भतीजी बग़ीचेसे फूल और तरह-तरहके पत्ते लायी। पिताजीने स्नान करके देवगृहमें गायके गोबरसे लिपी हुआी भूमि पर अुस काली मिट्टीको फैलाकर अुससे अेक सुन्दर चौक बनाया। यह हुआ हमारा खेत। अुसके बीचोंबीच अेक लोटा रख दिया। अुस लोटेमें पानी भरा हुआ था। अुसके अन्दर अेक साबूत सुपारी, दक्षिणा, पंचरत्न आदि चीज़ें डाली गयी थीं। अूपर आमके पेड़की अेक पाँच पत्तोंवाली छोटी-सी टहनी रखकर अुस पर अेक नारियल रखा था।

सुन्दर आकारके लोटेमें से बाहर निकले हुअे आमके हरे-हरे पाँच पत्ते और अुन पर शिखरके समान दिखाअी देनेवाले नारियलका आकार देखकर हम बेहद ख़ुश हुअे। पूजाकी तैयारी हुअी, चौकिया खेतमें नौ अनाज बोये गये। अुन पर पानी छिड़का गया। बीचमें रखे हुअे घट (लोटे)की चन्दन, केसर और कुंकुमसे पूजा की गयी। यथाविधि सांग षोडशोपचार पूजा हुअी। ९६ अंगुल लम्बी बत्तीवाला दीपक जलाया गया। फिर आरती हुअी और घरमें सब लोग कहने लगे कि आज हमारे यहाँ नवरात्रिकी घटस्थापना हुअी है। अुस नंदादीपको नौ दिन तक अखंड जलता रखना था। अुसका बीचमें बुझ जाना महा अशुभ माना जाता था। दूसरे दिन पूजामें अेकके बदले दो मालायें लटकायी गयीं; तीसरे दिन तीन; चौथे दिन चार — अिस तरह मालाअें बढ़ती गयीं। अूपर मालाअें बढ़ीं और नीचेके खेतमें अंकुर फूट निकले। कअी अंकुर तो अपने दलोंके छाते बनाकर ही बाहर निकल आये थे। हमें हर रोज़ खानेको मिष्टान्न मिलता; लेकिन पिताजी तो सिर्फ़ अेक ही समय भोजन करते, और सारा दिन पीताम्बर पहन-कर अुस नन्दादीपकी देखभाल करते। बत्ती न टूटे, तेल कम न पड़े, और दीया बुझने न पाये — अिस बातकी बड़ी फ़िकर रखनी पड़ती थी। रातको भी दो-चार बार अुठकर तेल डालना, अूपर जमी हुअी कालिखको बड़ी सावधानीसे झटकना, आदि काम अुनको करने पड़ते थे।

जब नौ अनाजोंके अंकुर पूरी तरह फूट निकले, तो अुस समयकी खेतकी शोभा बहुत अवर्णनीय थी। कुछ अनाज जल्दी अुगे, कुछ देरीसे। मैं यह अच्छी तरह याद रखता कि कौनसे अनाज पहले अुगे हैं और कौनसे बादमें। सभी अंकुर बिलकुल सफ़ेद थे; क्योंकि नवरात्रिका यह 'खेत' घरके अन्दर था, और सूर्यके प्रकाशके बिना हरा रंग तो आ ही नहीं सकता था। फिर पिताजी खेत पर हल्दीका पानी छिड़कने लगे। मैंने पूछा — "यह किस लिअे?" जवाब मिला — "अिसलिअे कि अुगा हुआ अनाज सोनेके समान दिखाअी दे!"

सातवें दिन सरस्वतीका आवाहन हुआ। घरमें जितनी धार्मिक और संस्कृतकी किताबें और पोथियाँ थीं, अुन सबको अेक रंगीन पटे पर रखकर हमने अुनकी पूजा की। हमें पढ़ाअीसे छुट्टी मिल गअी। अिसे अनध्याय कहते हैं। सरस्वतीका आवाहन, पूजन और विसर्जन तीन दिनमें हुआ। नवें दिन 'खंड' पूजन हुआ। 'खंड' पूजन यानी शस्त्रास्त्रोंका पूजन। अिस दिन हाथी-घोड़ों जैसे युद्धोपयोगी जानवरोंकी भी पूजा की जाती है। अिस तरह नवरात्रि पूरी हुअी और दसवें दिन दशहरा आया। दशहरेके दिन होम, बलिदान और सीमोल्लंघन, ये तीन प्रमुख विधियाँ थीं। वह विद्यारंभका भी दिन था।

विजयादशमीके त्योहारमें चातुर्वर्ण्य अेकत्र हुआ दीखता है। ब्राह्मणोंके सरस्वती-पूजन तथा विद्यारंभ; क्षत्रियोंके शस्त्रपूजन, अश्वपूजन तथा सीमोल्लंघन और वैश्योंकी खेती, ये तीनों बातें अिस त्योहारमें अेकत्रित होती हैं। और जहाँ अितनी बड़ी प्रवृत्ति चलती हो, वहाँ शूद्रोंकी परिचर्या तो समाविष्ट है ही। जब देहाती लोग नवरात्रिके अनाजकी सोने-जैसी पीली-पीली कोपलें तोड़कर अपनी पगड़ियोंमें खोंसते हैं और बढ़िया पोशाक पहनकर गाते-बजाते सीमोल्लंघन करने जाते हैं, तब अैसा दृश्य आँखोंके सामने आ खड़ा होता है मानो सारे देशका पौरुष अपना पराक्रम दिखलानेके लिअे बाहर निकल पड़ा हो।

दशहरेका अुत्सव जिस तरह कृषिप्रधान है, अुसी तरह वह क्षात्र-महोत्सव भी है। जिन दिनों भाड़ेके सिपाहियोंको मुर्गोंकी तरह लड़ानेका तरीक़ा प्रचलित नहीं था, अुन दिनों क्षात्रतेज तथा राजतेज किसानोंमें ही परवरिश पाते थे। किसान यानी क्षेत्रपति—क्षत्रिय! जो साल भर भूमि माताकी सेवा करता है, वही मौक़ा आने पर अुसकी रक्षाके लिअे निकल पड़ेगा। नदियों, नालों, टेकड़ियों और पहाड़ोंके साथ जिसका रात-दिनका सम्बन्ध रहता है, घोड़ा, बैल जैसे जानवरोंको जो अनुशासन सिखा सकता है, और सारे समाजको जो खाना खिलाता है, अुसमें सेनापति और राजत्वके सब गुण आ

जायँ, तो आश्चर्यकी क्या बात है ? राजा ही किसान है, और किसान ही राजा है।

अैसी हालतमें कृषिका त्योहार क्षात्र-त्योहार बन गया। अिसमें पूरी तरह अैतिहासिक औचित्य है। क्षत्रियोंका प्रधान कर्त्तव्य तो स्वदेश-रक्षा ही है। परन्तु बहुत बार शत्रुके स्वदेशमें घुसकर देशको बरबाद करनेसे पहले ही अुसके दुष्ट हेतुको पहचानकर स्वयं — सीमोल्लंघन करना — अपनी सीमा यानी सरहदको लाँघना और खुद शत्रुके मुल्कमें लड़ाअी ले जाना होशियारीकी और वीरोचित बात मानी जाती है।

थोड़ा-सा सोचने पर मालूम होगा कि अिस सीमोल्लंघनके पीछे साम्राज्यवृत्ति है। अपनी सरहद लाँघकर दूसरे देश पर अधिकार जमाना और वहाँसे धन-धान्य लूट लाना, अिसमें आत्मरक्षाकी अपेक्षा महत्त्वाकांक्षाका ही अंश अधिक है। अिस तरह लूटकर लाया हुआ सोना अगर पराक्रमी पुरुष अपने ही पास रखे, तो वर्त्तमान युगके क्षत्रप्रकोप (Militarism) के साथ विट्प्रकोप (Industrialism) के मिल जानेकी भयानक स्थिति पैदा होगी। * जहाँ प्रभुत्व और धनिकत्व

---

* 'क्षत्रप्रकोप' तथा 'विट्प्रकोप' अिन दो नये नामोंकी सार्थकता मुझे सिद्ध करनी चाहिये। चातुर्वर्ण्यका सन्तुलन या सामंजस्य तो समाज-शरीरकी स्वाभाविक स्थिति है। समाजके लिअे अिन चारों वर्णोंकी आवश्यकताको स्वीकार कर लिया गया है। जिस तरह व्यक्तिके शरीरमें वात, पित्त और कफ ये तीन धातु अुचित अनुपातमें रहते हैं, तभी शरीर नीरोगी रहता है, अुसी तरह समाज-शरीरमें चातुर्वर्ण्य अुचित अनुपातमें होना चाहिये। शरीरमें पित्तकी मात्रा बढ़ जाती है, तो अुसे पित्तप्रकोप कहते हैं। पित्तप्रकोपसे सारा शरीर ख़राब हो जाता है, यही हालत वातप्रकोप और कफप्रकोपके विषयमें है। समाज-शरीरमें क्षात्रवर्गका अतिरेक या प्राबल्य हो जाय, तो अुस स्थितिको क्षत्रप्रकोप कहना ही अुचित है। यही बात

अेकत्र आ जाते हैं, वहाँ शैतानको अलग न्योता देनेकी ज़रूरत नहीं रहती। अिसीलिअे दशहरेके दिन लूटकर लाये हुअे सोनेको सब रिश्तेदारोंमें वितरित करना अुस दिनकी अेक महत्त्वकी धार्मिक विधि तय की गयी है।

सुवर्ण-वितरणकी अिस प्रथाका संबंध रघुवंशके राजा रघुके साथ जोड़ा गया है।

रघुराजाने विश्वजित् यज्ञ किया। समुद्रवलयांकित पृथ्वीको जीतनेके बाद सर्वस्वका दान कर डालना विश्वजित् यज्ञ कहलाता है। जब रघुराजाने अिस तरहका विश्वजित् यज्ञ पूरा किया, तब अुनके पास वरतन्तु ऋषिका विद्वान् और तेजस्वी शिष्य कौत्स जा पहुँचा। कौत्सने गुरुसे चौदहों विद्यायें ग्रहण की थीं; अुसकी दक्षिणाके तौर पर चौदह करोड़ सुवर्ण मुद्राअें गुरुको प्रदान करनेकी अुसकी अिच्छा थी। लेकिन सर्वस्वका दान करनेके बाद बचे हुअे मिट्टीके बर्तनोंसे ही राजाको आदरातिथ्य करते देख कौत्सने राजासे कुछ भी न माँगनेका निश्चय किया। राजाको आशीर्वाद देकर वह जाने लगा। रघुने बड़े आग्रहके साथ अुसे रोक रखा, और दूसरे दिन स्वर्ग पर धावा बोलकर अिन्द्र और कुबेरके पाससे धन लानेका प्रबन्ध किया। रघु-राजा चक्रवर्ती था। अतः अिन्द्र और कुबेर भी अुसके माण्डलिक थे। ब्राह्मणको दान देनेके लिअे अुनसे कर लेनेमें संकोच किस बातका था? रघुराजाकी चढ़ाअीकी बात सुनकर देवता लोग डर गये। अुन्होंने शमीके अेक पेड़ पर सुवर्णमुद्राओंकी वृष्टि की। रघुराजाने सुबह अुठकर देखा, तो जितना चाहिये अुतना सुवर्ण आ गया था। अुसने

विट्प्रकोप या वैश्यप्रकोपकी भी है। शरीरका नाश होनेका समय आने पर तीनों धातुओंका प्रकोप हो जाता है। अिसे त्रिदोष कहते हैं। यूरोपमें आज क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र अिन तीनों वर्णोंका अेक साथ प्रकोप हुआ है, अैसा साफ़-साफ़ नज़र आ रहा है; और वहाँके ब्राह्मण अिन तीनों वर्णोंके किंकर बन गये हैं।

कौत्सको वह ढेर दे दिया। कौत्स चौदह करोड़से ज़्यादा मुद्रा लेता न था, और राजा दानमें दिया हुआ धन वापस लेनेको तैयार न था। आख़िर अुसने वह धन नगरवासियोंको लुटा दिया। वह दिन आश्विन शुक्ला दशमीका था; अिसीलिअे आज भी दशहरेके दिन शमीका पूजन करके लोग अुसके पत्ते सोना समझकर लूटते हैं और अेक-दूसरेको देते हैं। कुछ लोग तो शमीके नीचेकी मिट्टीको भी सुवर्ण समझकर ले जाते हैं।

शमीका पूजन प्राचीन है। अैसा माना जाता है कि शमीके पेड़में ऋषियोंका तपस्तेज है। पुराने ज़मानेमें शमीकी लकड़ियोंको आपसमें घिसकर लोग आग सुलगाते थे। शमीकी समिधा आहुतिके काम आती है। पाण्डव जब अज्ञातवास करने गये थे, तब अुन्होंने अपने हथियार शमीके अेक पेड़ पर छिपा रखे थे, और वहाँ कोअी जाने न पाये, अिसके लिअे अुन्होंने अुस पेड़के तनेसे अेक नरकंकाल बाँध रखा था।

रामचन्द्रजीने रावण पर जो चढ़ाअी की, सो भी विजयादशमीके मुहूर्त पर। आर्य लोगोंने—हिन्दुओंने—अनेक बार विजयादशमीके मुहूर्त पर ही धावे बोलकर विजय प्राप्त की है। अिससे विजयादशमी राष्ट्रीय विजयका मुहूर्त या त्योहार बन गया है। मराठे और राजपूत अिसी मुहूर्त पर स्वराज्यकी सीमाको बढ़ानेके हेतु शत्रु-प्रदेश पर आक्रमण करते थे। शस्त्रास्त्रोंसे सजकर, और हाथी-घोड़ों पर चढ़कर नगरके बाहर जुलूस ले जानेका रिवाज आज भी है। वहाँ शमीका और अपराजिता देवीका पूजन सीमोल्लंघनका प्रमुख भाग है।*

---

* महिषासुर नामके अेक प्रबल दैत्यने बड़ा आतंक फैलाया था। जगदंबाने नौ दिन तक अुससे युद्ध करके विजयादशमीके दिन अुसका वध किया था। अिस आशयकी अेक कहानी पुराणोंमें मिलती है। अिसीलिअे अपराजिताका पूजन करने और महिष यानी भैंसेकी बलि चढ़ानेका रिवाज पड़ा है।

अैसा माना जाता है कि शमी और अश्मंतक वृक्षमें भी शत्रुका नाश करनेका गुण है। अुस्तुरेके पेड़को अश्मन्तक कहते हैं। जहाँ शमी नहीं मिलती, वहाँ अुस्तुरेके पेड़की पूजा होती है। अुस्तुरेके पत्तेका आकार सोनेके सिक्केकी तरह गोल होता है, और जुड़े हुअे जवाबी कार्ड (reply card) की तरह अुसके पत्ते मुड़े हुअे होते हैं, जिससे वे ज़्यादा ख़ूबसूरत दिखाअी देते हैं।

दशहरेके दिन चौमासा लगभग ख़तम हो जाता है। शिवाजीके किसान-सैनिक दशहरे तक खेतीकी चिन्तासे मुक्त हो जाते थे। कुछ काम बाक़ी न रहता था। सिर्फ़ फसल काटना ही बाक़ी रह जाता था। पर अुसे तो घरकी औरतें, बच्चे और बूढ़े लोग भी कर सकते थे। अिससे सेना अिकट्ठी करके स्वराज्यकी सीमाको बढ़ानेके लिअे सबसे नज़दीक मुहूर्त दशहरेका ही था। अिसी कारण महाराष्ट्रमें दशहरेका त्योहार बहुत ही लोकप्रिय था और आज भी है।

हम यह देख सके हैं कि विजयादशमीके अेक त्योहार पर अनेक संस्कारों, अनेक संस्करणों और अनेक विश्वासोंकी तहें चढ़ी हुअी हैं। कृषि-महोत्सव क्षात्र-महोत्सव बन गया; सीमोल्लंघनका परिणाम दिग्विजय तक पहुँचा; स्व-संरक्षणके साथ सामाजिक प्रेम और धनका विभाग करनेकी प्रवृत्तिका सम्बन्ध दशहरेके साथ जुड़ा। लेकिन अेक अैतिहासिक घटनाको दशहरेके साथ जोड़ना अभी हम भूल गये हैं, जो कि अिस ज़मानेमें अधिक महत्त्वपूर्ण है। "दिग्विजयसे धर्मजय श्रेष्ठ है। बाह्य शत्रुका वध करनेकी अपेक्षा हृदयस्थ षड्रिपुओंको मारनेमें ही महान् पुरुषार्थ है। नवधान्यकी फसल काटनेकी बनिस्बत पुण्यकी फसल काटना अधिक चिरस्थायी होता है।" सारे संसारको अैसा अुपदेश देनेवाले मारजित्, लोकजित् भगवान् बुद्धका जन्म विजयादशमीके शुभ मुहूर्त पर ही हुआ था। विजयादशमीके दिन बुद्ध भगवान्का जन्म हुआ, और वैशाखी पूर्णिमाके दिन अुन्हें चार शान्ति-दायी आर्यतत्त्वोंका और अष्टांगिक मार्गका बोध हुआ, यह बात हम

भूल ही गये हैं। विष्णुका वर्त्तमान अवतार बुद्ध अवतार ही है। अिसलिअे विजयादशमीका त्योहार हमें भगवान् बुद्धके मार-विजयका स्मरण करके ही मनाना चाहिये।

अक्तूबर, १९२२

क्या यही दशहरा है?

'शं नो अस्तु द्विपदे, शं चतुष्पदे।'—वेदवचन

द्विपदों (दो पाँववालों) का कल्याण हो; चतुष्पदों (चौपायों) का भी कल्याण हो!

दो पाँव और चार पाँववाले अपने बालकोंसे भूमि-माताने कहा—"मेरे बच्चो! मेरी घास और अनाज तुम्हारे लिअे ही है। वही मेरा दूध है। जो पियेगा वह पुष्ट होगा।"

दो पाँववाले मनुष्य बड़े भाअी और चार पाँववाले पशु छोटे भाअी थे। बड़े छोटोंकी देखभाल करते; छोटे बड़ोंकी आज्ञामें रहते। दोनोंने ज़मीन पर मेहनत की, और सब जगह मलयजशीतला और सुजला धरती सुफला और शस्यश्यामला हो गयी; सर्वत्र आनन्द छा गया।

मनुष्य बोला—"चलो, हम बँटवारा करके अुत्सव मनायें!"

पशुओंने कहा—"ठीक तो है! अुत्सव मनाना ही चाहिये!"

मनुष्यने अनाज लिया और पशु घास चरने लगे। अुत्सव शुरू हो गया। लेकिन जीभके लालचमें पड़कर धर्मबुद्धि-भ्रष्ट हुअे मनुष्यको अचानक कुछ सूझा। मनुष्यने पशुको खींचा और अुसकी गर्दन पर छुरी चलाते हुअे कहा—"अुत्सवका यह भी अेक आवश्यक भाग है।"

धरती काँप अुठी; आकाश रोने लगा; और दिशाअें बोल अुठीं—"क्या यही अुत्सव है?"

दशहरा

कुआर सुदी १० **१ दिन**

यह त्योहार वीरताका है। कुश्ती, गजग्राह (टग ऑफ़ वॉर), पटा आदि मर्दाने खेल खेलनेका रिवाज ज़ारी रखने लायक़ हैं। दशहरेके दिन शहरसे बाहर जाकर वहाँ सामाजिक अुत्सव मनाना चाहिये। अपनी कमाअीमें से जितने पैसे बचाये जा सकें, अुतने बचाकर दशहरेके दिन वे किसी अच्छे कामके लिअे दानमें दिये जायँ।

सालभरमें कोअी महत्कृत्य करनेका संकल्प दशहरेके दिन किया जाय। यह सीमोल्लंघनका दिन है। अिस दिन अेकाध क़दम आगे बढ़ना चाहिये।

दशहरेके दिन सिर्फ़ वाद्योंका जलसा रखा जाय। यदि विद्यार्थियोंने क़वायद सीखी हो, तो अिस दिन अुसका भी प्रदर्शन किया जा सकता है।

यह नहीं भूलना चाहिये कि दशहरेका प्रारंभ मातृपूजासे हुआ है। देवीपूजाका रहस्य अिस दिन समझाया जाना चाहिये।

सार्वभौम धर्म

कुआर सुदी १५

ग्रीष्मकी असह्य गरमीके बाद जब वृष्टि होती है, तब सब जगह कीचड़ ही कीचड़ फैल जाता है। आख़िर जब सृष्टि तृप्त हो जाती है, तभी अुस कीचड़को दबाकर या सुखाकर ज़मीन और जलाशयको अनाविल (निर्मल) करनेकी ओर अुसका ध्यान जाता है।

महान् आपत्तिके साथ जूझते हुअे मनुष्यको धर्माधर्मका ज़्यादा खयाल नहीं रहता। अिस स्थितिको समझकर ही बुद्धिमान लोगोंने यह पुरानी सिखावन दी है कि किसी भी धर्मका आश्रय लेकर काम चलाया जाय, और आपत्तिसे बच जानेके बाद ‘समर्थो धर्ममाचरेत्।’

स्वतंत्र, स्वायत्त होनेके बाद सूझनेवाला शान्तिका, समृद्धिका और निर्मल प्रसन्नताका अेक सार्वभौम धर्म होता है, वही शरद् है।

अिसी धर्मको जिसने अपना हमेशाका निरपवाद धर्म बनाया, वही धर्मराट् हो गया। ग्रीष्मकी गरमीसे और वर्षाके पानीसे जो अच्छी तरह बच निकले और शरद्की प्रसन्नताको जिन्होंने पा लिया, वे ही जिये, वे ही जीते।

अिसीलिअे ऋषियोंने प्रार्थना की ——

'अजिताः स्याम शरदः शतम्।'

१९३५

शरद् पूर्णिमा

कुआर सुदी १५ **१ दिन**

ब्रह्मांड पुराणमें कहा गया है कि शरद् पूनमके दिन शहरके रास्तोंको साफ़ करके अुन्हें सुगंधित जलसे सम्मार्जित किया जाय; स्थान-स्थान पर फूल बिछाये जायँ और चंदोवे लगाये जायँ। शरद् पूनम प्रकृतिके काव्यका अनुभव करनेका दिन है। अिस दिन लक्ष्मी सर्वत्र घूमती है। लक्ष्मीके मानी धन-दौलत नहीं, बल्कि प्रकृतिकी शोभा, तारोंमें विराजमान चन्द्रकी शोभा, और अुसकी चाँदनीका हृदय पर होनेवाला जादुअी असर। शरद् पूनम कलाका दिन है। अिस दिन सुन्दर प्रदर्शनियोंका आयोजन किया जाय; तरह-तरहके काव्योंकी रचना की जाय।

नया धान आया हो, तो अुसका चिअुड़ा बनाकर नारियलके साथ खाया जाय। नारियल अर्थात् प्रकृतिका दूध न मिले, तो गोमाताका दूध तो है ही।

समाज-सेवकोंको चाहिये कि वे आज लोगोंको राजा नल और युधिष्ठिरकी कहानियाँ सुनाकर द्यूत-क्रीड़ाका निषेध करें।

छोटे-बड़े सब मिलकर चाँदनीमें कबड्डी खेलें। स्त्रियाँ और लड़कियाँ गरबा (रास) खेलें। वृद्ध अपने जीवनके बोधरसिक प्रसंगोंका वर्णन करें।

हो सके तो रातको दो बजे अुठकर मध्यरात्रिकी नीरव शान्तिमें तारोंका दिव्य संगीत सुना जाय। चौमासेके बादल-भरे आकाशके बाद यह सबसे पहली निरभ्र, निर्मल पूर्णमासी है; और ज्योतिःशास्त्रज्ञोंके कथनानुसार अिस दिन चन्द्र पृथ्वीके अधिक-से-अधिक नज़दीक आ जाता है।

वैदिक कर्मकाण्ड परसे जिनका विश्वास अुठ गया है, अैसे लोग भी वैदिक ब्राह्मणोंको बुलाकर अुनसे मंत्रजागर (पारायण) करावें। वेद-मंत्रोंका शुद्ध, सस्वर अुच्चारण तो आजकल सुननेको भी नहीं मिलता। पुरानी संस्कृतिका यह अवशेष निश्चित रूपसे टिकाये रखने लायक़ है। अिस पूर्णिमाको गायनका जलसा तो होना ही चाहिये।

धन-तेरस

कुआर वदी १३ — १ दिन

यह त्योहार दीवालीकी तैयारीका है। लोक-कथाके अनुसार यह युवकोंकी अपमृत्युसे अुत्पन्न दयाका त्योहार है। रातको काग़ज़ या पत्तोंकी छोटी-छोटी नावें बनाकर, और अुनमें अेक-अेक दीया जलाकर, अुन नावोंको नदीमें तैरनेके लिअे छोड़ देना अिस दिनका प्रमुख आनन्द है। जहाँ नदी न हो, वहाँ तालाबमें भी दीपक छोड़े जा सकते हैं। हाँ, शान्त पानीको कुछ हिलाना होगा। युवकोंकी असमय-मृत्युकी संख्या समाजमें बढ़ती जा रही है। अिसके कारणोंकी खोज करनेकी योजनाके बारेमें समाजके नेता आज विशेष रूपसे चर्चा करें; और युवकोंको जो शिक्षा देनी हो, वह दें।

गायोंके समूह (रेवड़) की पूजा भी अिस दिनके लिअे कही गयी है; अिस विषयमें जो संभव हो, किया जाय।

दीवाली

१. बलिका राज्य

कुआर वदी ३०

बलि राजाने दानका व्रत लिया था। कोअी याचक जो वस्तु माँगता, राजा अुसे वह वस्तु दे देता। बलिके राज्यमें जीव-हिंसा, मद्यपान, अगम्यागमन, चोरी और विश्वासघात — अिन पाँच महापापोंका कहीं नाम तक न था। सर्वत्र दया, दान और अुत्सवका बोलबाला रहता था। अन्तमें बलिराजाने वामन-मूर्ति श्रीकृष्णको अपना सर्वस्व अर्पण किया। बलिकी अिस दानवीरताके स्मारकके रूपमें श्रीविष्णुने बलिके नामसे तीन दिन-रातका त्यौहार निश्चित किया। यही हमारी दीवाली है। बलिके राज्यमें आलस्य, मलिनता, रोग और दारिद्र्यका अभाव था। बलिके राज्यमें या लोगोंके हृदयमें अंधकार न था। सभी प्रेमसे रहते थे। द्वेष, मत्सर या असूयाका कारण ही न था। बलिका राज्य जन-साधारणके लिअे अितना लोकोपकारी था कि अुसके कारण प्रत्यक्ष श्रीविष्णु अुसके द्वारपाल बनकर रहे। अिसी कारण यह निश्चित किया गया कि बलिराजाके स्मारकस्वरूप अिस त्यौहारमें पहले लोग कूड़ा-कचरा, कीचड़ और गंदगीका नाश करें; जहाँ जहाँ अँधेरा हो, वहाँ दीपावलिकी शोभा करें; लोगोंके प्राण लेनेवाले यमराजका तर्पण करें; पूर्वजोंका स्मरण करें; मिष्टान्न भक्षण करें, और सुगन्धित धूप-दीप तथा पुष्प-पत्रोंसे सुन्दरता बढ़ावें। अिन दिनों सायंकालकी शोभा अितनी मनोहारी होती है कि यक्ष, गंधर्व, किन्नर, ओषधि, पिशाच, मंत्र और मणि सभी अुत्सवका नृत्य करते हैं। बलि-राज्यका स्मरण करके लोग तरह-तरहके रंगोंसे चौक पूरते हैं; सफ़ेद चावल लगाकर भाँति-भाँतिके

सुन्दर चित्र बनाते हैं; गाय-बैल आदि गृह-पशुओंको सजा-धजाकर अुनका जुलूस निकालते हैं; श्रेष्ठ और कनिष्ठ सब मिलकर यष्टिका-कर्षणका खेल खेलते हैं। यष्टिकाकर्षण युरोपीय लोगोंके रस्सी खींचनेके 'टग ऑफ वॉर' जैसा अेक खेल है। अिसीको हमने 'गजग्राह' का नया नाम दिया है। पुराने ज़मानेमें राजा लोग दीवालीके दिन अपनी राजधानीके सभी लड़कोंको सार्वजनिक रूपसे आमंत्रण देते थे और अुनसे खेल खेलाते थे।

सुगंधित द्रव्योंकी मालिश करके नहाना, तरह-तरहके दीये कतारमें जलाना और अिष्ट-मित्रोंके साथ मिष्टान्नका भोजन करना दीवालीका प्रधान कार्यक्रम है। बलिके राज्यमें प्रवेश करना हो, तो द्वेष, मत्सर, असूया, अपमान आदि सब भूलकर सबके साथ अेकदिल हो जाना और अिस तरह निष्पाप होकर नये वर्षमें प्रवेश करना हमारा प्राचीन रिवाज है।

अिसी दिन सत्यभामाने श्रीकृष्णकी मददसे नरकासुरका नाश करके सोलह हज़ार राजकन्याओंको मुक्त किया था।

दीपावलिके अुत्सवमें स्त्रियोंकी अुपेक्षा नहीं की गयी है। स्त्री-पुरुषोंके सब संबंधोंमें भाअी-बहनका संबंध शुद्ध सात्त्विक प्रेम और समानताके अुल्लासका होता है। पति-पत्नीका या माता-पुत्रका संबंध अितना व्यापक और अितना सात्त्विक अुल्लासयुक्त नहीं होता।

धन-तेरससे लेकर भाअी-दूज तकके पाँचों दिनोंके साथ यम-राजका नाम जुड़ा हुआ है। भला, अिसका अुद्देश्य क्या होगा?

अिन्द्रप्रस्थका राजा हंस मृगयाके लिअे घूम रहा था। हैम नामक अेक छोटेसे राजाने अुसका आतिथ्य किया। अुसी दिन हैमके यहाँ पुत्रोत्सव था। राजा आनन्दोत्सव मना ही रहा था कि अितनेमें भवितव्यताने आकर कहा कि विवाहके बाद चौथे ही दिन यह पुत्र सर्प-दंशसे मर जायगा। हंस राजाने अुस पुत्रको बचानेका निश्चय किया। अुसने यमुना नदीके दहमें अेक सुरक्षित घर बनवाकर

हैमराजको वहाँ आकर रहनेका निमंत्रण दिया। सोलह साल बाद राजपुत्रका विवाह हुआ। विवाहसे ठीक चौथे ही दिन अुस दुर्गम स्थानमें भी सर्प प्रकट हुआ और राजपुत्र मर गया। आनन्दकी घड़ी अपार शोकमय बन गयी। क्रूर यमदूतोंको भी अिस करुण अवसर पर दया आयी, और अुन्होंने यमराजसे यह वर माँग लिया कि दीवालीके पाँच दिनोंमें जो लोग दीपोत्सव मनायें, अुन पर अिस तरहकी आपत्ति न आवे।

यह तो हुअी धन-तेरसकी कहानी। नरक-चतुर्दशीके दिन तो यमराजका और भीष्मका तर्पण विशेष रूपसे कहा गया है। दीवाली तो अमावास्याका दिन। अुस दिन यमलोकवासी पितरोंका पूजन और पार्वण श्राद्ध तो करना ही पड़ता है। प्रतिपदाके दिन यम-राजसे संबंध रखनेवाली कोअी कथा नहीं कही गयी है; लेकिन अैसा मान लेनेमें कोअी हर्ज़ नहीं कि यमराज भी अुस दिन अपना नया बहीखाता खोलते होंगे। भैयादूजके दिन यमराज अपनी बहन यमुनाके घर भोजन करने जाते हैं। दीवालीकी स्वच्छन्दताके साथ यमराजका स्मरण रखनेमें अुत्सवकारोंका अुद्देश्य चाहे जो रहा हो, लेकिन अिसमें शक नहीं कि अुसका असर बहुत अच्छा होता होगा। जिसने अुत्सवमें भी संयमका पालन किया होगा, वही यमराजके पाशसे मुक्त रह सकेगा।

नवम्बर, १९२१

२. दीवाली

दीवानख़ानेमें अेकाध सुन्दर चीज़ रखनेका रिवाज प्रत्येक घरमें होता है। बाहरका कोअी व्यक्ति आता है, तो सहज ही अुसकी नज़र अुस तरफ़ जाती है और वह पूछ बैठता है — "वाह! कैसी बढ़िया चीज़ है, यह आपको कहाँसे मिली?" लेकिन अजायब-घरमें तो जहाँ देखिये वहाँ सुन्दर ही सुन्दर चीज़ें दिखाअी देती हैं।

अुन्हें देखकर मनुष्य बहुत खुश होता है। लेकिन साथ ही वह अुतना ही पसोपेशमें भी पड़ जाता है। वह अिसी सोचमें रहता है कि क्या देखूँ और क्या न देखूँ?

हमारी दीवाली त्योहारोंका अेक अैसा ही अजायबघर है। अिसे अिन सब त्योहारोंका स्नेह-सम्मेलन भी माना जा सकता है। दीवालीका त्योहार पाँच दिनोंका माना जाता है। लेकिन सच पूछिये तो ठीक ठेठ नवरात्रिके त्योहारसे अिसका प्रारंभ होता है, और भाअी-दूजकी भेंटमें अिसका आनन्द अपनी परिसीमा तक पहुँच जाता है।

शास्त्रोंमें प्रत्येक त्योहारका माहात्म्य और कथा दी गयी है। दीवालीके बारेमें अितनी कहानियाँ हैं कि यदि 'दीवाली माहात्म्य' लिखा जाय, तो वह अेक बड़ा पोथा बन जायगा। धन-तेरसकी कथा अलग, नरक-चौदसकी कहानी अलग, और अमावस (दीवाली) की अपनी अेक कहानी अलग। अिसके बाद नया साल शुरू होता है। और दूजके दिन बहनके घर भाअी अतिथि बनकर जाता है। दीवाली गृहस्थाश्रमी त्योहार है; जनताका त्योहार है। श्रावणीके दिन धर्म और शास्त्र प्रधान होते हैं; दशहरेके दिन युद्ध और शस्त्रास्त्र प्रमुख रहते हैं, दीवालीके दिन लक्ष्मी और धनको प्राधान्य प्राप्त होता है, और होली तो खेल और रंग-रागका त्योहार है। जिस तरह मनुष्योंमें चार वर्ण हैं, अुसी तरह त्योहारोंमें भी चार वर्ण हो गये हैं।

पुरातन कालमें लोग श्रावणीके दिन जहाजोंमें बैठकर समुद्र पार देश-देशान्तरमें सफ़र करने जाते थे। दशहरेके दिन राजा लोग और योद्धागण अपनी सरहदोंको पार करके शत्रु पर चढ़ाअी करने निकलते थे, और दीवालीके दिन राजा लोग और व्यापारीगण स्वदेश वापस आकर कौटुम्बिक सुखका अुपभोग करते थे।

पुराणोंमें कथा है कि नरकासुर नामका अेक पराक्रमी राजा प्राग्ज्योतिषमें राज्य करता था। भूटानके दक्षिण तरफ़ जो प्रदेश है,

अुसे प्राग्ज्योतिष कहते थे। आज वह असम प्रान्तमें सम्मिलित है। नरकासुरका दूसरे राजाओंसे लड़ना तो घड़ीभरके लिअे सहन कर लिया जा सकता था; किन्तु अुस दुष्टने स्त्रियोंको भी सताना शुरू किया। अुसके कारागारमें सोलह हज़ार राजकन्यायें थीं। श्रीकृष्णने विचार किया कि यह स्थिति हमारे लिअे कलंकरूप है। अब तो नरकासुरका नाश करना ही होगा। सत्यभामाने कहा — "आप स्त्रियोंके अुद्धारके लिअे जा रहे हैं, तो मैं फिर घर कैसे रह सकती हूँ? नरकासुरके साथ मैं ही लड़ूँगी। आप चाहे मेरी मददमें रहें।"

श्रीकृष्णने यह बात मान ली। अुस दिन रथमें सत्यभामा आगे बैठी थी और श्रीकृष्ण मददके लिअे पीछेकी तरफ़ बैठे थे। चतुर्दशीके दिन नरकासुरका नाश हुआ। देश स्वच्छ हो गया। लोगोंने आनन्द मनाया। यह बतानेके लिअे कि नरकासुरका बड़ा भारी ज़ुल्म दूर हुआ, लोगोंने रातको दीपोत्सव मनाया और अमावसकी रातमें भी पूर्णिमाकी शोभा दिखलायी।

लेकिन यह नरकासुर अेक बार मारनेसे मरनेवाला नहीं है। अुसे तो हर साल मारना पड़ता है। चौमासेमें सब जगह कीचड़ हो जाता है, अुसमें पेड़के पत्ते, गोबर, कीड़े वगैरा पड़ जाते हैं, और अिस तरह गाँवके आस-पास नरक — गन्दगी — फैल जाता है। वर्षाके बाद जब भादोंकी धूप पड़ती है, तो अिस नरककी दुर्गंध हवामें फैल जाती है, जिससे लोग बीमार पड़ते हैं। अिसलिअे बहादुर लोगोंकी आरोग्य-सेना कुदाली-फावड़ा वगैरा लेकर अिस नरकके साथ लड़ने जाय, गाँवके आस-पासके नरकका नाश करे, और घर आकर बदन पर तेल मलकर नहाये। गोशाला तो साफ़ की हुअी होती ही है; अुसमें से मच्छरोंको निकाल देनेके लिअे रात वहाँ दीया जलाये, धुआँ करे और फिर प्रसन्न होकर मिष्टान्नों और पक्वानोंका भोजन करे।

* * *

दीवालीके बाद नया वर्ष शुरू होता है, और घरमें नया अनाज आता है। हिन्दुओंके घरोंमें वेदकालसे लेकर आज तक अिस नवान्नकी विधिका श्रद्धापूर्वक पालन होता है। महाराष्ट्रमें अिस भोजनसे पहले अेक कड़वे फलका रस चखनेकी प्रथा है। अिसका अुद्देश्य यह होगा कि कड़वी मेहनत किये बिना मिष्टान्न नहीं मिल सकता। भगवद्गीतामें भी लिखा है कि आरंभमें जो ज़हरके समान है और अन्तमें अमृतके समान, वही सात्त्विक सुख है। गोआमें दीवालीके दिन चिअुड़ेका मिष्टान्न बनाते हैं और जितने भी अिष्ट-मित्र हों, अुन सबको अुस दिन निमंत्रण देते हैं। अर्थात् प्रत्येक व्यक्तिको अपने प्रत्येक अिष्ट-मित्रके यहाँ जाना ही चाहिये। प्रत्येक घरमें फलाहार रखा रहता है, अुसमें से अेकाध टुकड़ा चखकर आदमी दूसरे घर जाता है। व्यवहारमें कटुता आयी हो, दुश्मनी बँधी हो, या जो भी कुछ हुआ हो, दीवालीके दिन मनसे वह सब निकाल देते हैं और नया प्रीतिसम्बन्ध जोड़ते हैं। जिस प्रकार व्यापारी दीवाली पर सब लेन-देन चुका देते हैं, और नये बहीखातेमें बाकी नहीं खींचते, अुसी प्रकार प्रत्येक व्यक्ति नये वर्षके प्रारंभमें हृदयमें कुछ भी बैर या जहर बाकी नहीं रहने देता। जिस दिन बस्तीमें से नरक — गंदगी — निकल जाय, हृदयसे पाप निकल जाय, रात्रिमें से अंधकार निकल जाय और सिर परसे कर्ज़ दूर हो जाय, अुस दिनसे बढ़कर दूसरा पवित्र दिन कौनसा हो सकता है?

३०-११-'२१

३. मृत्युका अुत्सव

जो सोलहों आने पक्की है, जिसके बारेमें तनिक भी शक नहीं, अैसी चीज़ ज़िन्दगीमें कौनसी है? सिर्फ़ अेक; और वह है मृत्यु!

राजा हो या रंक, बूढ़ी कुब्जा हो या लावण्यवती अिन्दुमती, शेर हो या गाय, बाज़ हो या कबूतर, मृत्युकी भेंट तो हरअेकसे

होने ही वाली है। अब सवाल यह है कि अिस निश्चित अतिथिका स्वागत हम किस तरह करें?

हम जिस प्रकार अुसे पहचानते हैं, अुसी प्रकार अुसका स्वागत करें। मृत्युका स्वरूप कटहल-जैसा है। अूपर तो सब काँटे ही काँटे होते हैं; अन्दरका स्वाद न मालूम कैसा हो! मृत्यु अर्थात् घड़ीभरका आराम; मृत्यु अर्थात् नाटकके दो अंकोंके मध्यावकाशकी यवनिका; मृत्यु अर्थात् वाणीके अस्खलित प्रवाहमें आनेवाले विराम-चिह्न। अंग्रेज कवि दूजके चाँदका स्वागत करते समय 'बालचन्द्रकी गोदमें वृद्ध चन्द्र' कहकर अुसका वर्णन करते हैं। अमावस तक पुराना चंद्र सूख जाता है, क्षीण हो जाता है। अब वह अपने पैरों पर कैसे खड़ा होगा? अिसलिअे अुससे पैदा हुआ बालचन्द्र अपनी बारीक भुजाअें फैलाकर अुस बूढ़े काले चन्द्रको अुठा लेता है, और दूसरे दिन पश्चिमके रंगमंच पर ले आता है, और यों सारी दुनिया द्वारा तालियाँ बजाकर किये जानेवाले स्वागतको स्वीकार करता है। मुसलमान लोग 'अीदका चाँद' कहकर अिसीका स्वागत करते हैं। मृत्यु तो पुनर्जन्मके लिअे ही है। प्रत्येक नयी पीढ़ी पुरानी पीढ़ीका तेज लेकर जवानीके जोशमें आगे बढ़ती रहती है; और पुरानी पीढ़ी बुढ़ापेके परावलंबनको महसूस करती हुअी लुप्त हो जाती है। यह कैसे भुलाया जा सकता है कि बूढ़ा, ठूँठा जाड़ा प्रफुल्ल नव वसन्तको अुँगली पकड़कर ले आता है? अिस बातको भुलानेसे काम न चलेगा कि हेमन्तकी काटनेवाली ठंडकमें ही वसन्तका प्रसव है।

दीवालीके दिन वसन्तकी अपेक्षासे, वसन्तकी मार्ग-प्रतीक्षासे, अगर हम दीपोत्सव कर सकते हैं, मिष्टान्न भोजन कर सकते हैं, आनन्द और मंगलताका अनुभव कर सकते हैं, तो हम मृत्युसे क्यों न खुश हों?

दीवाली हमें सिखाती है कि मौतका रोना मत रोओ, मृत्युमें ही नवयौवन प्रदान करनेकी, नवजीवन देनेकी शक्ति है; दूसरोंमें नहीं।

दीवालीका त्योहार मौतका अुत्सव है, मृत्युका अभिनन्दन है, मृत्यु परकी श्रद्धा है। निराशासे अुत्पन्न होनेवाली आशाका स्वागत है।

रुद्र ही शिव है, मृत्युका दूसरा रूप ही जीवन है।

यह किसे अच्छा न लगेगा कि यमराज अपनी बहनके घर जायँ? मृत्यु नित्य नूतनताके घर अुत्सव मनाये?

मृत्यु अग्नि नहीं, बल्कि तेजस्वी रत्नमणि है, जिसे छूनेमें कोअी खतरा नहीं।

४. छोटे भाअीके बिना दीवाली?

दीवालीके दिन घरके सब कुटुंबीजन अिकट्ठा होते हैं।

दूर देशोंमें गये हुअे लोग भी, जहाँ तक हो सके, दीवालीके अवसर पर अपने घर वापस जानेके लिअे आतुर रहते हैं। दीवाली यानी मिष्टान्नका दिन। अिस दिन सभी अिष्टजन अिकट्ठे न हुअे हों, तो मिष्टान्न मिष्ट कैसे लगे? अगर अपना भाअी रूठ गया हो, तो अिस दिन हम अुसे मनाकर वापस घर लाते हैं। अगर अपने भाअीके साथ हमने बुरा बरताव किया हो, तो अुससे माफ़ी माँगकर और अुसे प्रेमकी रस्सीसे बाँधकर खींच लाते हैं। हमारी सबसे बड़ी अिच्छा यह रहती है कि दीवालीके दिन अेक भी भाअी हमसे दूर न रहे।

हमने अपने अेक भाअीको — और वह भी सबसे छोटे (अन्त्यज) भाअीको — अेक अरसेसे दूर रखा है; जान-बूझकर दूर रखा है, अुसका तिरस्कार करके अुसे दूर रखा है। फिर भी वह रूठा नहीं है। बेचारा कुछ निराश-सा हुआ है; कुछ आशाभरी दृष्टिसे घरकी ओर देख रहा है। अभी तक वह अपना हिस्सा नहीं माँग रहा है, किसी तरहका हक़ नहीं जता रहा है। तुम जिस हालतमें रखोगे, अुस हालतमें रहनेको तैयार है; सिर्फ़ अुसे घरके अन्दर

स्थान चाहिये। वह अिसी बातका भूखा है कि भाअी कहकर हम अुसे पुकारें। अुसके बगैर हमारी दीवाली कैसे मनायी जायगी? अुसके बिना मिष्टान्नमें रस कहाँसे आयेगा? दीवालीके दिन हम अन्नकूट भले ही करें, लेकिन अीश्वर अुसके अूँचे शिखरकी तरफ़ देखता तक नहीं। वह तो छोटे भाअीकी प्रेमप्यासी आँखोंसे हमारी तरफ़ देख रहा है। जब तक हम छोटे भाअीको 'भैया' कहकर प्रेमसे अन्दर न बुलायेंगे, तब तक अीश्वरको 'त्वमेव माता च पिता त्वमेव' कहनेका हमें कोअी अधिकार नहीं।

अक्तूबर, १९२५

५. नरक-चतुर्दशी

अिस दिन कतवारखानोंसे कचरा निकालकर अुसे खादके तौर पर खेतमें डाला जाय या किसी गढ़ेमें गाड़ दिया जाय। अुसके बाद तेलसे मालिश करके गरम पानीसे नहाया जाय। पहलेसे तैयारी करके सफ़ेदी लगाये हुअे मकान पर चूना-हल्दी मिलाकर या किसी दूसरे रंगकी बारीक लकीरें खींची जायँ। दीवालों पर तस्वीरें बनायी जायँ।

नरकासुरकी कथा पढ़ी जाय।

दीवाली

यह त्योहार अितना जाग्रत है कि अिसके संबंधमें कोअी खास नअी सूचनाअें देनेकी ज़रूरत नहीं। लड़के घर जाकर अपने माँ-बापसे मिलें। अिष्ट-मित्र अेक-दूसरेसे मिलकर दिलोंकी सफ़ाअी करें। अेक-दूसरेको प्यारी चीज़ें भेटमें भेजें।

प्रत्येकको चाहिये कि वह रात सोनेसे पहले अिस बातकी जाँच करे कि सारे वर्षके संकल्पोंमें से कितने संकल्प पूरे हुअे। नये वर्षमें जीवनमें कौनसी नयी बात दाखिल की जा सकती है, पुरानी बातोंमें

से कौनसी छोड़ देने लायक है, आदि सब बातोंका विचार करके सो जाय।

दीवाली अर्थात् दीपावलि, दीपोत्सवी। अिस दिन दीपोंका अुत्सव करना ही चाहिये।

नया वर्ष

कार्तिक सुदी १ **१ दिन**

यह दिन प्रधानतया मित्रोंसे मिलने तथा गुरुजनोंके दर्शन करके अुनके आशीर्वाद प्राप्त करनेका दिन है। नये सालका नया संकल्प और सारे वर्षकी कुछ निश्चित योजना भी अिस दिन बनायी जाय। जो सोच सकते हैं वे अेक दो घंटे शांतिसे अेकान्तमें बैठकर प्रार्थनापूर्वक नये वर्षका संकल्प और अुसे पूरा करनेका विस्तृत कार्य-क्रम मनमें तैयार करें, और जिनके सामने अिस तरहका संकल्प प्रकट करना अिष्ट हो, अुनको वह सुनायें तथा अपने पास अुसे अवश्य लिख रखें।

कहाँ है भैयादूज ?

[कार्तिक सुदी २]

हिन्दू समाजमें स्त्रियोंकी स्थिति जैसी होनी चाहिये वैसी नहीं है। अितने सालोंसे चर्चाअें चल रही हैं, बहुतसे कुटुम्बोंमें तब्दीलियाँ हुअी हैं, लोकमतमें भी काफ़ी परिवर्तन हुआ है; फिर भी यह नहीं कहा जा सकता कि आज स्त्रियोंकी हालत संतोषजनक है। परिस्थितिके दबावसे लाचार हुअे विना जीवनमें कोअी हेरफेर न करनेकी मुमूर्षु जड़ताको समाज जब तक त्याग नहीं देता, तब तक यही हालत रहेगी।

'यही हालत' के क्या मानी? 'यही हालत' के मानी हैं स्वभावकी परतंत्रता, हृदयकी दुर्बलता और सामाजिक अुन्नतिके श्रेष्ठ तत्त्वोंके विषयमें नास्तिकता। प्रचलित परिस्थितिसे अूबा हुआ मन प्रसन्नता प्राप्त करनेके लिअे हिन्दू आदर्शके वैभवकालकी तस्वीरोंको दृष्टिके सामने खड़ा करनेको छटपटाता है, और अिस व्यापारमें हमें आज तक निराश नहीं होना पड़ा है। मदालसा, मैनावती, सुमित्रा, विदुला या जीजाबाअी जैसी आदर्श माताअें हमारे यहाँ हुअी हैं। आदर्श पत्नीके बारेंमें तो हिन्दुस्तान हमेशा दुनियाके सब देशोंके अग्रभागमें ही रहेगा। अुनकी नामावलि सीता-सावित्रीसे शुरू करना आसान है, लेकिन अुस नामावलिका अन्त कहाँ होगा?

आदर्श माता और आदर्श पत्नीकी मिसालें तो हमारे पास ढेरों पड़ी हुअी हैं। लेकिन आदर्श ब्रह्मचारिणियोंके विषयमें वैसा नहीं कहा जा सकता। प्राचीन युगमें नारीको अुपवीत दिया जाता था, अिस आशयके अिन-गिने वचन और सुलभा, गार्गी, शबरी, और मैत्रेयीके लोकविश्रुत अुदाहरण ही हमारे सामने हैं। वेदवती, धृतव्रता, वड़वा, शुतावती, आदि नाम तो नाम ही रह गये हैं। मोक्षको

ही परम पुरुषार्थ माननेवाली ब्रह्मचारिणी स्त्रियोंके अितने कम अुदाहरण हों, यह कोअी शोभास्पद स्थिति नहीं।

जहाँ स्त्रियोंकी सामाजिक स्वतंत्रताको भी स्वीकार नहीं किया गया है, वहाँ पारलौकिक स्वतंत्रता अर्थात् मोक्षके विषयमें कौन अुत्साह रखे? हिन्दू, ओसाअी, बौद्ध और अिस्लाम धर्ममें स्त्रियोंकी शक्तिके विषयमें न्यूनाधिक मात्रामें शंका ही दिखायी गयी है। जब आर्य आनन्दने बुद्ध भगवान्‌से सीधे सवाल पूछे, तब अन्तमें बुद्ध भगवान्‌ने स्वीकार किया — 'निर्वाण प्राप्त करना स्त्रियोंके लिअे अशक्य नहीं है।' अिस घटनाके संबंधमें कुमारस्वामी जैसे आधुनिक संस्कारी पुरुष हमसे पूछते हैं — "क्या यह बात सही नहीं है कि दुनिया-दारीकी वृत्ति पुरुषोंकी अपेक्षा स्त्रियोंमें अधिक है?" बंकिमचंद्रजीने भी 'आनन्दमठ' में अस्पष्ट रूपसे अिस बातका सूचन किया है कि मोक्षधर्मके साथ स्त्रियोंकी घोर दुश्मनी है।

जहाँ अिस तरहकी धारणा हो, वहाँ आदर्श ब्रह्मचारिणियोंकी संख्या कम ही रहेगी। और, मोक्ष-प्राप्तिकी अिच्छा ही जहाँ मन्द हो, वहाँ ब्रह्मचर्य-जैसी कठिन दीक्षा लेनेकी बात किसे सूझेगी? (यदि-च्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति।)

'तेऽपि यान्ति परां गतिम्' कहकर गोपीजन-वल्लभ श्रीकृष्णने शूद्रोंके साथ स्त्रियोंको भी आश्वासन दिया। लेकिन भगवान्‌ने कोअी आदर्श ब्रह्मचारिणी तैयार की हो, तो पुराणकारोंने अुसका कहीं अुल्लेख नहीं किया है।

वीरमाता, वीरांगना, वीरकन्या, अैसे बहादुरीके आदर्श हमारे यहाँ पर्याप्त मात्रामें न सही, फिर भी बहुत हैं। तेजस्वितामें हमारे सामने सिर्फ़ द्रौपदी और झाँसीकी रानी लक्ष्मीबाअी हों, तो भी हमारे समाजके मुखको अुज्ज्वल करनेके लिअे वे काफ़ी हैं।

आदर्शोंके प्रकारोंमें अेक त्रुटि अैसी है, जो हमें चुभे बिना नहीं रहती। गृहस्थाश्रम और संन्यास, बड़े-बड़े संघ और अविभक्त

कुटुंब, किसीका भी वर्णन पढ़ें और आदर्शोंको जाँचें, सबको देखकर यही कहा जा सकता है कि हमारे यहाँ आदर्श भाओी-बहनोंके चित्र हैं ही नहीं। श्रीकृष्ण भगवान्‌ने सुभद्राकी अपेक्षा द्रौपदीके बन्धुत्वका अधिक खयाल रखा। अिस अेक अुज्ज्वल दृष्टान्तको छोड़ दें, तो बाकी क्या रहता है? महेन्द्र और संघमित्राको आदर्श मिशनरी कहा जा सकता है; मगर यह नहीं कह सकते कि अुन्होंने आदर्श बन्धु-भगिनीकी कोओी मिसाल पेश की है। आदर्श बन्धु-भगिनीका विचार करते समय भावावेशके साथ अुनका स्मरण नहीं हो आता। आद्य और आर्ष कवि वाल्मीकिको भी मानव-जीवनके सभी संबंध सूझे, लेकिन अेक भाओी-बहनके आदर्शका चित्रण करनेकी न सूझी। अितना ही नहीं, बल्कि अुस बेचारी शान्ता (श्रीरामचन्द्रजीकी बहन) का भी वे अुपयोग न कर सके। पौराणिक तथा अैतिहासिक साहित्यमें कहीं भी बन्धु-भगिनीका आदर्श रूढ़ हुआ दिखाओी नहीं देता। यही क्यों, कल्पित साहित्यमें भी हमारे कवियोंने भाओी-बहनके अुज्ज्वल आदर्शका चित्रण करनेमें कहीं अपनी प्रतिभाका अुत्कर्ष नहीं दिखाया। सम्राट् श्रीहर्ष अपनी बहन राज्यश्रीको छुड़ानेके लिअे जंगलकी तरफ़ दौड़ा — अगर यह प्रेमपूर्ण प्रसंग अन्य देशोंके कवियोंके हाथ आता, तो न मालूम अुसे लेकर अुन्होंने कितने अमर काव्य लिखे होते!

हमारे कवियोंने यह अक्षम्य प्रमाद क्यों किया होगा? जिसके भाओी नहीं है, अुस कन्याके साथ ब्याह भी न करना चाहिये — यहाँ तक कह देनेवाले हमारे शास्त्रकारोंने भी भाओी-बहनके सम्बन्ध पर अपनी धर्मबुद्धि खर्च नहीं की। अिसका कारण? बाल-विवाह? जहाँ आठ-दस सालकी होनेसे पहले ही लड़की विवाहित होकर पीहर जाती हो, वहाँ भाओी-बहनके सम्बन्धके विकासको अवकाश ही कहाँ? लेकिन हमारे यहाँ बाल-विवाह आदि कालसे नहीं होता था। वेदमें यम-यमीके विख्यात यमल (जोड़ी) का काव्यमय अुल्लेख है। यमके मरने पर यमीके आँसू किसी तरह रुकते न थे। सभी देवोंने यमीको शान्त

करनेकी चेष्टा की, किन्तु अुसका सान्त्वन न होता था। अन्तमें देवोंने रात्रिका निर्माण किया। रात बीत गयी, और यमी भाअीकी मृत्युका दु:ख कुछ भूल-सी गयी। अुस रातके बाद ही आज और कलका भेद शुरू हुआ। अुससे पहले तो हमेशा 'आज' ही 'आज' रहता था।

वेदोंने यम-यमीके बन्धु-भगिनी प्रेमका वर्णन तो बहुत बढ़िया किया है; लेकिन अुन्होंने अिस रूपकको बिलकुल बिगाड़ डाला है। संभव है अिसी कारण हमारे कवियोंकी रुचि अिस विषयसे हट गयी हो, और अुसके बाद अुनमें भाअी-बहनके काव्यमय तथा आध्यात्मिक सम्बन्धका चित्रण करनेका अुत्साह ही न रहा हो। कच और देवयानीके बारेमें भी मामला अिसी तरह बिगड़ गया है। अिसीलिअे भाअी-बहनके पवित्र सम्बन्धके विषयमें कविगण नास्तिक बन गये होंगे। अनेक युगोंसे भारतवासी हर साल भाअीदूजका त्योहार मनाते आये हैं। फिर भी किसी कविके मनमें यह विचार न आया कि वह भाअी-बहनके सम्बन्धको प्राधान्य देकर कोअी महाकाव्य लिखे।

अिस तरह निराश मन जब अपनी हताश दृष्टि लोक-साहित्यकी ओर डालता है, तो वह आनन्दाश्चर्यसे आर्द्र हो जाती है। भाअी-बहनका सम्बन्ध अनादि है, हृदयसहज है, सार्वभौम है। अुसे लोक-हृदय कैसे भूले? लोक-गीतों और लोक-कथाओंमें जहाँ देखिये वहाँ भाअी-बहनके मीठे सम्बन्धकी स्मृतियाँ बिखरी पड़ी हैं। भविष्यके सामाजिक आदर्शको गढ़नेवाले आजके कवियो! अिस बिन जुते क्षेत्रकी ओर दृष्टि डालिये और स्त्री-पुरुषके बीचके अिस अेकमात्र निर्विकार, निष्काम, और समानतापूर्ण सम्बन्धका चित्रण करनेमें अपना शक्तिसर्वस्व खर्च कीजिये।

भैयादूज

कार्तिक सुदी २ **१ दिन**

सब त्योहारोंमें अिस त्योहारका काव्य कुछ अनूठा ही है। जिन स्कूलोंमें लड़कोंके साथ लड़कियोंका भी स्थान हो, वहाँ तो यह दिन विशेष रूपसे मनाया जा सकेगा। अिस दिनका नाश्ता या पूरा भोजन लड़कियाँ ही बनायें, और वे सब लड़कोंको परोसें। यह रिवाज भी अच्छा है कि लड़के अपने हाथसे बनायी हुअी कोअी भी अुपयोगी वस्तु बहनोंको भेंटस्वरूप दें। अपने हाथसे काते हुअे सूतकी खादीका टुकड़ा, कोअी किताब, दवात या अिसी तरहकी कोअी वस्तु दी जा सकती है।

भाअी-दूजके दिन प्रत्येक विद्यार्थी अपनी बहनको पत्र तो ज़रूर लिखे। अिस तरहके पत्रोंकी नकलें जमा करके व्यक्तिगत रूपसे पढ़ी जायँ, तो अुसमें कोअी हर्ज नहीं। लेकिन अिसमें कृत्रिमता न आनी चाहिये। कोअी कृष्ण-द्रौपदीकी कथा लिखे या अुस पर कविता करे।

संस्थामें तो सब विद्यार्थी सभी विद्यार्थिनियोंके भाअी हैं। अुनमें अैसा भेद नहीं होना चाहिये कि वे किसी ख़ास भाअी या बहनको चुनें।

महाअेकादशी

कार्तिक सुदी ११ **आधा दिन**

अिस दिन देवशयन और देव-प्रबोधनका रहस्य कोअी शिक्षक समझायें। चातुर्मास्यका अुद्यापन करें। तुलसीकी कहानीके सम्बन्धमें थोड़ा-बहुत विवेचन हो। महाअेकादशीके दिन सब लोग सवेरे चार बजे नहाकर प्रार्थनामें अुपस्थित रहें। कार्तिक स्नानका माहात्म्य विशेष समझा गया है। प्रार्थनामें गीताका पंद्रहवाँ अध्याय पढ़ा जाय। पेड़ोंकी क्यारियाँ साफ़ करके अुन्हें पानी देनेमें सभी लोग अिस दिन थोड़ा-

थोड़ा समय व्यतीत करें। यह अिस दिनका महायज्ञ है। महाअेकादशीका फलाहार तो है ही। हो सके तो दशमीकी शामको कुछ न खाया जाय। महाअेकादशीके दिन संगीतयुक्त भजनको अधिक समय देना चाहिये।

अेकादशियाँ दो आयें तो संस्थामें दूसरीको पसन्द किया जाय। वैष्णव धर्ममें भक्ति, चारित्र्यकी शुद्धि और मनुष्य-मनुष्यके बीचकी समानता, अिन तीन बातों पर विशेष जोर दिया गया है। छात्रोंको यह बात अच्छी तरह समझा दी जाय।

युद्ध-गीता जयन्ती

आज धर्मयुद्धकी अखंड प्रेरणा देनेवाली भगवद्‌गीताकी जयन्ती है। गीता ग्रंथ नहीं बल्कि राष्ट्रमाता है। आज अुसका सन्देश भारत द्वारा सारी दुनियाके लिअे है। जब गीता पहले-पहल गायी गयी, अुन दिनों वर्षका प्रारम्भ मार्गशीर्ष महीनेसे होता था। मार्गशीर्षको वैदिक लोग अग्रहायण कहते थे। आज भी हमारे देहाती लोग अुसे अगहन कहते हैं। गीतामें भगवान् कहते हैं — 'महीनोंमें मैं श्रेष्ठ महीना मार्गशीर्ष हूँ।' और अिस महीनेमें भी मोक्षदा अेकादशीके दिन गीता-माताका स्मरण होना स्वाभाविक है। गीताका स्मरण आते ही यह कहा जा सकता है कि गीताने हृदयमें जन्म लिया है। वहीं अुसका मन्दिर बनानेके लिअे हम गीता-जयन्ती मनाते हैं। भला गीतामाताके लिअे अींट-पत्थरका मन्दिर कैसे बनाया जाय? गीताकी स्थापना तो हृदय-मन्दिरमें ही की जा सकती है। गीताकी पूजा चावल, फूलों या पत्तोंसे नहीं की जा सकती। गीताको तो तभी सन्तोष होगा, जब हम अपना सारा जीवन अुसके लिअे अर्पण कर दें।

गीता कहती है कि अितने कच्चे मत बनो कि सुख-दुःख तुम्हें आसानीसे दबा लें। तुम्हें जय-पराजयकी भी परवाह न होनी चाहिये।

जो निश्चयी हैं, आग्रही हैं, हठी हैं, वे मनमें आयी हुअी चीज़को आखिरकार प्राप्त कर ही लेते हैं। अिसलिअे निर्मल बनो, वीर बनो। लम्बी यात्राके लिअे निकले हुअे लोगोंको रास्तेमें जाड़ा भी सहना पड़ता है और गरमी भी बरदाश्त करनी पड़ती है। रास्तेमें दिन भी निकल आता है, और रात भी हो जाती है। पर यात्रा तो चलानी ही चाहिये। समग्र जातिकी अैसी जीवन-यात्रा व्यक्तिगत स्वार्थके लिअे न हो, संकुचित स्वार्थके लिअे न हो। अिस यात्राके लिअे निकले हुअे लोगोंको 'सर्वभूतहिते रताः' होना चाहिये। अुनके मनमें किसीके प्रति द्वेषभाव तो होना ही न चाहिये। गीता धर्ममें लोग सिर्फ़ अीश्वरको पहचानते हैं। सभी जीव अीश्वरके ही बालक होनेसे वे किसीका द्वेष नहीं करते। अुनका युद्ध तो पाप, अनाचार और अत्याचारके विरुद्ध ही अखंड रूपसे चलता रहेगा। कामरूपी, वासनारूपी, दुरासद शत्रुका असहकारके दृढ़ शस्त्रसे छेदन करके वे ज़रूर अविचल पद प्राप्त करेंगे। जो लोग अिस युद्धकी दीक्षा लेते हैं, अुनके लिअे गीता-जयन्ती है। धर्मयुद्धसे अिनकार नहीं किया जा सकता। अिनकार करनेसे स्वधर्म और कीर्ति दोनोंका नाश होता है, और पल्लेमें सिर्फ़ पाप और थुक्का-फ़ज़ीहत ही आ पड़ती है। धर्मयुद्धमें गँवाने-जैसा कुछ है ही नहीं। जीत जायँ तो भी धर्मकी विजय; मारे जायँ तो भी धर्मकी ही विजय।

गीता कहती है कि अिस बातकी फिकर कभी मत करो कि हम मुट्ठीभर ही हैं। हम अपना हृदय अुन्नत करें; हम श्रेष्ठ बन जायँ। लोग तो आप ही आप हमारे पीछे आ जायँगे। जिधर श्रेष्ठ व्यक्ति प्रयाण करेंगे, अुधर आम लोग तो जायँगे ही। अगर हम आलसी बन गये, रुक गये, तो जनताको नष्ट करनेका पाप हमारे मत्थे पड़ेगा।

गीताजीने यह भी कहा है कि धर्मवीरकी शिक्षा कैसी होनी चाहिये। धर्मवीर अिन्द्रियोंके लालचमें नहीं फँसेगा, सुख-दुःखमें बह न जायगा; न लाभ-हानिसे ललचायेगा और न दबेगा। वह तो वीर है। ओछे कामोंमें वह अपने जीवनको फ़जूल खर्च न करेगा। वह

अीश्वरका सैनिक है। जब वह धर्मकी ग्लानि देखता है, अधर्मका अभ्युत्थान देखता है, तब अिस विश्वासको मनमें धारण करके कि भगवान् स्वयं आनेवाले हैं, भगवान्के धर्म-संस्थापनके सन्देशको सुननेके लिअे वह तैयार रहता है। जिनकी करतूतें दुष्ट हैं, अुनके पास वह नहीं फटकता। साधुओंकी रक्षाके लिअे वह हमेशा कटिबद्ध रहता है। अिस विचार या भीतिसे वह कर्मका त्याग नहीं करता कि कर्मके पीछे कष्ट हैं। सर्दी-गर्मीको भूलकर, लाभ-हानिका तनिक भी विचार किये बिना, मनमें किसी प्रकारके मत्सरको स्थान न देते हुअे, यदृच्छासे जो कुछ मिलता है, अुसीमें सन्तोष मानकर वह लड़ता ही रहता है। बड़े यज्ञका प्रारम्भ करनेके बाद वह जो कुछ भी करता है, यज्ञके लिअे ही करता है। यज्ञके बाद जो कुछ बचे, वही खानेका अुसे अधिकार है, अिसे समझकर वह अुतना ही लेता है। महाप्रबल शत्रुका छेदन करनेसे पहले अपने हृदयकी दुर्बलता और संशयवृत्तिका ही वह छेदन करता है। जब संशयवृत्ति चली जाती है, अविश्वास नष्ट हो जाता है, तब सहज श्रद्धाके कारण वह व्रजकाय बन जाता है। अीश्वरका कार्य करनेमें संशय किस बातका? चिन्ता किस बातकी? धर्मवीर कहता है कि मैं तो कुछ करता ही नहीं, परमेश्वर जैसी प्रेरणा देता है, वैसा करता हूँ। और अैसा करते हुअे मर भी जाअूँ तो क्या? अेक जन्मके बाद दूसरा तो आने ही वाला है। अिस जन्ममें अच्छा काम किया हो और वीरकी मृत्यु पायी हो, तो नया जन्म आजकी अपेक्षा बुरा तो होगा ही नहीं; कुछ अच्छा ही होगा। हमेशा अीश्वरका स्मरण रखकर लड़ना है। अीश्वरका ध्यान क़ायम रहेगा, तो अन्तमें अीश्वरके पास ही पहुँचा जा सकेगा।

गीता कहती है कि लोगोंका जीवन-मरण, कल्याण-अकल्याण काल-पुरुष परमात्माके हाथमें है। अुसे जो करना होगा वही होगा। हम अुसके हाथके निमित्तमात्र हैं, खिलौने हैं। भूतमात्रके कल्याणको मनमें रखकर, किसी प्रकारके राग-द्वेषको मनमें स्थान न देकर, हम

प्रभुके वचनका पालन करें। जब हम निर्वैर रहेंगे, तभी प्रभुके पास पहुँच सकेंगे। हम अुसका ध्यान धरें; वह हमारा अुद्धार करेगा।

तमाम दुनियाकी सत्ता और सहूलियतोंको अपने ही हाथमें रखनेके आग्रहसे प्रवृत्ति करनेवाले राक्षस कअी होते हैं। वे तो विलासितामें ही विश्वास रखते हैं। अुसके लिअे वे न्याय-अन्यायका भी विचार नहीं करते, और दुनियाका धन जहाँ-तहाँसे खींच लाते हैं। वे अपने मनमें हवाअी क़िले बनाते हैं — "देखो, आज अितना मिला; ये मेरे मनोरथ अब तृप्त होंगे; अितना धन तो मेरे पास है ही, अितना और मिल जायगा; अितने शत्रुओंको मैंने मारा, दूसरोंको भी मार डालूँगा; मैं दुनियाका स्वामी हूँ; भोगोंका अुपभोग करना मैं ही जानता हूँ; सुख-सामर्थ्य मेरे ही हैं। मेरी जाति सबसे श्रेष्ठ है; मेरे जैसा कोअी नहीं; दुनियाका भला मैं ही करूँगा; मैं दुनियाका अगुआ हूँ।" अिस तरहके खयालोंमें मशगूल रहनेवाले, दंभसे दुनियाको ठगनेवाले, और दीनोंकी देहमें बसनेवाले अीश्वरका अपमान करनेवाले तो कअी पड़े हैं।

शैतान अिस दुनियाको हजम करके बैठा है। यदि अुसकी जगह हम अीश्वरका राज्य प्रस्थापित कर सकें, तो हमारा काम बन जाय। अिस अनित्य और दुःखपूर्ण दुनियामें सुखका अुपभोग कौन करे? यह अीश्वरी सेवा मिली है, अिसीलिअे तो जीवन रससे भरा हुआ है।

२०–१२–'३१

गीता-जयन्ती

अगहन सुदी ११ **आधा दिन**

यह नव आविष्कृत त्योहार है। गीताके 'मासानां मार्गशीर्षोऽहम्' वचन परसे यह दिन निश्चित किया गया है। अत्यन्त प्राचीन कालमें मार्गशीर्ष महीनेसे वर्षारंभ होता था। अिस दिन पूरा गीतापाठ होना चाहिये। लोकमान्य तिलककी अग्रहायण सम्बन्धी कल्पना तथा ज्योतिष-शास्त्रका अयनचलन अिस दिन समझाया जा सकता है। अिस दिन गीताके सन्देशका विवेचन और श्रीकृष्णकी विभूतिके बारेमें चर्चा की जाय।

दत्त-जयन्ती

अगहन सुदी १५ **१ दिन**

दत्तात्रेयकी अुपासना अुत्तर भारतमें विशेष रूपसे प्रचलित नहीं है। फिर भी अगर यह दिन थोड़ा पैदल प्रवास करनेमें बिताया जाय, तो वह अिष्ट है। अगहन महीनेमें बहुत त्योहार नहीं पड़ते। पूर्णमासीके दिन सवेरे अेक गाँवमें नहाना, दूसरे गाँवमें जाकर भोजन करना, और तीसरे गाँवमें जाकर निवास करना, अिस तरह अवधूतके समान कार्यक्रम रखा जा सकता है।

अीसाअी धर्म अेक तरहकी गुरु-पूजा है। अिसलिअे आज Imitation of Christ (अीसाका अनुसरण) नामकी किताब भी पढ़ी जाय।

सिक्ख लोग अेक तरहसे गुरु-अुपासक कहे जा सकते हैं। अुन्होंने शुद्ध भक्ति और सदाचार पर हमें बहुत-सा धार्मिक साहित्य दिया है। अुसमें से कुछका आज पारायण किया जाय। अुदाहरणके लिअे, सुखमनी, जपजी आदिका। अिसके अलावा, सिक्ख गुरुओंने सात्त्विक

बलिदानका जो लोकोत्तर आदर्श सिद्ध करके दिखाया, अुससे सम्बन्ध रखनेवाली बातें भी विद्यार्थियोंसे कही जा सकती हैं। गुरु-पूर्णिमा और दत्त-जयन्तीके अिन दो त्योहारों पर सिक्ख सम्प्रदाय और गुरुभक्तिके विषयमें बहुत-कुछ कहा जा सकता है।

संक्रांति

(पौष मास)

पूस महीनेमें जब अेक महाराष्ट्रीय दूसरे महाराष्ट्रीय व्यक्तिसे मिलता है, तो 'तिलगुड़' ज़रूर देता है। हम अेक-दूसरेको तिलगुड़ हैं, और कहते हैं — 'तिळगुळ घ्या आणि गोड बोला' (तिलगुड़ लीजिये और मीठी बातें कीजिये); क्योंकि तिलमें स्नेह है और गुड़में मिठास। यह अिस संकल्पका चिह्न है कि सबके साथ प्रेम और मिठास रहे। वेदमें अेक मंत्र है —

मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्।
मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे।
मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे।

[अर्थात् — सब प्राणी मेरी ओर अवैरसे, स्नेहभावसे, देखें। मैं सब प्राणियोंकी ओर स्नेहकी दृष्टिसे देखता हूँ। हम सब स्नेहकी दृष्टिसे देखें।]

महाराष्ट्रके श्रद्धावान् लोगोंने अिस वैदिक मंत्रका ही यह मज़ेदार और मीठा रूपान्तर किया है।

जिस तरह मनुष्योंका मनुष्यों पर असर पड़ता है, अुसी तरह प्रकृतिका भी मनुष्यों पर असर पड़ता है — अुनके शरीर पर ही नहीं, बल्कि अुनके मन पर, अुनकी रहन-सहन पर, अुनके आदर्श पर और अुनके सामाजिक जीवन पर भी।

जिस तरह श्रेष्ठ और पूज्य विभूतियोंका असर हमारे जीवन पर पड़ता है, अुसी तरह प्रकृतिकी घटनाओंका भी पड़ता है। किसी रिश्तेदारकी मृत्युसे जिस तरह हम हतोत्साह हो जाते हैं, अुसी तरह सूर्यके खग्रास ग्रहणको देखकर भी हम विमनस्क हो जाते हैं। महायुद्ध और अकाल दोनोंका हम पर अेक-सा ही असर पड़ता है। कौन कह सकता है कि पुत्रोत्सव और वसन्तोत्सवमें समानता नहीं है? श्रीकृष्णने कंस पर, रामने रावण पर और बुद्धने मार पर जो विजय प्राप्त की, अुसे हज़ारों साल हो चुके हैं। फिर भी जब-जब अुस विजयका दिन आता है, तब-तब अुस विजयका सन्देश हमें पुनः पुनः मिलता है। प्रभावकी दृष्टिसे धूपकी जाड़े पर पायी हुअी विजय अिससे कुछ कम नहीं होती। चूँकि वह हर सालकी बात है, अिसलिअे वह कुछ कम असर करनेवाली नहीं होती। सूर्योदय प्रतिदिन होता है, फिर भी सब देशों और सब भाषाओंके कवियों और रसिकोंको सूर्योदयकी शोभा और अुसकी अुपमा अुत्साहप्रद ही प्रतीत होती है।

मकर-संक्रांति दिनकी रात पर, धूपकी जाड़े पर और प्रवृत्तिकी निद्रा पर विजय सूचित करती है। असाढ़ महीनेसे दीर्घतमा रात्रिकी विजय हो रही थी। दिन-प्रति-दिन प्रवृत्ति कम हो रही थी। सर्वत्र अेक तरहकी ग्लानि छायी हुअी थी। सूर्यकी किरणें कम हो रही थीं। दीपोत्सव करके हमने किसी तरह नये सालका अुत्सव मनाया, लेकिन जाड़ेकी कठोरता तो बढ़ती ही गयी। महात्मा सविता मानो दक्षिणके क़ैदख़ानेमें बन्द हो गये। कब छूटेंगे?

आपत्तिका भी अन्त तो होता ही है। सूर्यका दक्षिणकी तरफ़का संक्रमण पूरा हुआ और अुत्तरायणका आरंभ हुआ। सविताकी किरणें अधिकाधिक फैलने लगीं। दिनके पल बढ़ने लगे, रात्रिके पल घटने लगे। अिस बातके चिह्न स्पष्ट दृष्टिगोचर होने लगे कि रात्रिके साम्राज्यका क्षय शुरू हुआ ह, और अिसका पूरा यक़ीन होने लगा कि महात्मा

सविता दक्षिण दिशाके बन्धनसे अब ज़रूर मुक्त होंगे। बस, यह भावि मुक्तिका आनन्द ही मकर-संक्रमण है।

यह मकर-संक्रमण हम किस तरह मनायें? गंगाके किनारे जाकर देखिये। वहाँ असंख्य श्रद्धावान् लोग गंगाके पात्रमें झोंपड़ियाँ बनाकर कअी दिनोंसे वहीं रह रहे हैं। जहाँ गंगा और यमुनाका हिन्दूधर्मकी सरस्वतीके साथ संगम होता है, वहाँ हज़ारों लोगोंको प्रयाग-स्नानके लिअे आते देखकर मैं अभी लौटा हूँ। सूर्योदयसे पहले अुठकर नाम-स्मरण करते हुअे और भीष्म-माता गंगाकी या धर्मभगिनी यमुनाकी जय बोलते हुअे वे नहाने जाते हैं। क्या यमुनामें नहानेवाला यमसे डरेगा? गंगामें स्नान करनेवालेकी दृढ़ता क्या भीष्म पितामह जैसी नहीं होनी चाहिये? प्रयागका स्नान तो निर्भयता और दृढ़ताकी दीक्षा ही है।

मकर-संक्रमण जितना विजयका अुत्सव है, अुतना ही स्नेह और मिठासकी वृद्धिका भी अुत्सव है। भूख और जाड़ेसे क्षीण लोग भेड़ियोंकी तरह अेक-दूसरेसे लड़ें, तो अिसमें आश्चर्यकी कोअी बात नहीं। लेकिन प्रकाश और समृद्धिके समय तो अुन्हें यह सब भूल जाना चाहिये। अिसीलिअे हिन्दुस्तानके अनेक प्रान्तोंमें अुत्तरायणके प्रारम्भमें अेक-दूसरेको तिल और गुड़ देनेका रिवाज है। सिर्फ़ अिसीलिअे नहीं कि जाड़ेके दिनोंमें वह अेक पुष्टिकारक खुराक है, बल्कि स्नेह और मिठासकी वृद्धिका सूचन करनेके लिअे भी। (तिलमें स्नेह है—संस्कृतमें स्नेहके मानी हैं तेल—और गुड़में मिठास है।) सब अनाजोंमें तिलकी अुपज सबसे अधिक होती है, अिसीलिअे अुसका यानी प्रेमका लेन-देन कल्याणकर माना गया है।

मकर-संक्रांतिके दिन परस्पर तिल और गुड़ देकर आपसके पुराने अपराधोंकी क्षमा माँगनेका रिवाज दिलसे अपना लिया जाय, तो समाजमें अैक्य और अुत्साहकी वृद्धि अवश्य होगी। और बढ़ते हुअे सूर्यकी तरह देशका सौभाग्य भी बढ़ेगा।

अुत्तरायणका यह सन्देश अुन्नतिकारक है। स्वराज्यके दिनोंमें हमें अिसे भूलना न चाहिये।

अुत्तरायणके बाद वसन्त पंचमी, फिर रथ-सप्तमी करके अन्तमें भोगविलासोंको जला डालकर संयमधर्मका स्वीकार करनेके लिअे होलिकोत्सव मनाना होता है। ऋतुचक्रके परिवर्तनमें भी धर्म है। प्रकृतिके साथ जिसका सहकार नहीं टूटा है, वही अुसे प्राप्त कर सकता है।

१८–१–'२३

मकर-संक्रांति

पौष मास

अब यह झगड़ा शुरू होनेवाला है कि मकर-संक्रमणका दिन कौनसा हो? सायन पंचांगवाले तो दिसम्बरकी २३ वीं तारीख़से ही चिपटे रहेंगे, और सामान्य पत्रे जनवरीकी १३ वीं या १४ वीं तारीख़ तक राह देखेंगे।

मकर-संक्रांतिका दिन हमारी पंचांग पद्धतिको समझने और समझानेके लिअे अनुकूल है। महाराष्ट्रका रिवाज स्वादिष्ट लगता हो, तो अिस दिन तिल-गुड़का प्रचार करने जैसा है। सारे पूस महीनेमें तिल खायें, तो भी ठीक ही है। जाड़ेके मौसमके अुत्तरार्धमें स्निग्ध अन्न पौष्टिक होता है। लेकिन प्रधान वृत्ति तो पतंग अुड़ानेकी ही हो, बशर्ते कि अुसका धागा स्वदेशी हो। अगर लड़के बाज़ारसे बने-बनाये पतंग लायें, तो यह त्योहार रखनेका कुछ मतलब ही नहीं रहता। पतंग तो घर पर ही बनाये जायँ और साथ मिलकर अुड़ाये जायँ। पतंग बनानेकी भी अेक ख़ास वैज्ञानिक कला होती है।

अितिहास और समाज-विज्ञानके रसिक अध्यापक अिस दिन जीवन-संक्रमण या राष्ट्रीय संक्रमणके बारेमें व्याख्यान दें, तो अुसे सुननेके लिअे तैयार रहना चाहिये।

वसन्त

[माघ सुदी ५]

वसन्त पंचमी अर्थात् ऋतुराजका स्वागत !

माघ शुक्ला पंचमीको हम वसन्त पंचमी कहते हैं, लेकिन प्रत्येक व्यक्तिके लिअे अुसी दिन वसन्त पंचमी नहीं होती। ठण्डे खून-वाले मनुष्यके लिअे वह अितनी जल्दी नहीं आती।

वसन्त पंचमी प्रकृतिका यौवन है। जिसकी रहन-सहन प्रकृतिसे अलग न पड़ गयी हो, जो प्रकृतिके रंगमें रँग गया हो, वह मनुष्य बिना कहे ही वसन्त पंचमीका अनुभव करता है। नदीके क्षीण प्रवाहमें अेकाअेक आयी हुअी ज़ोरकी बाढ़को जिस प्रकार हम अपनी आँखोंसे साफ़ देख सकते हैं, अुसी प्रकार हम वसन्तको भी आता हुआ देख सकते हैं। अलबत्ता, वह अेक ही समय पर सबके हृदयोंमें प्रवेश नहीं करता।

जब वसन्त आता है तो यौवनके अुन्मादके साथ आता है। यौवनमें सुन्दरता होती है, लेकिन यह नहीं कहा जा सकता कि अुसमें हमेशा क्षेम भी होता है। यौवनमें शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्यकी रक्षा करना बहुत ही कठिन हो जाता है। यही हालत वसन्तमें भी होती है। तारुण्यकी तरह वसन्त भी मनमौजी और चंचल होता है। अिन दिनों कभी जाड़ा मालूम होता है, कभी गरमी; कभी जी अूबने लगता है, तो कभी अुल्लास मालूम होने लगता है। खोयी हुअी शक्तिको जाड़ेमें फिरसे प्राप्त किया जा सकता है। मगर जाड़ेमें प्राप्त की हुअी शक्तिको वसन्तमें संचित कर रखना आसान नहीं है। वसन्तमें संयमका पालन किया जाय, तो सारे वर्षके लिअे आरोग्यकी रक्षा हो जाती है। वसन्त ऋतुमें जीवमात्र पर अेक चित्ताकर्षक कान्ति छा जाती है, पर वह अुतनी ही खतरनाक भी होती है।

वसन्तके अुल्लासमें संयमकी भाषा शोभा नहीं देती; वह सहन भी नहीं होती; परंतु अिसी समय अुसकी अत्यन्त आवश्यकता होती है। अगर क्षीण मनुष्य पथ्यसे रहे, तो अुसमें कौन आश्चर्यकी बात है? अुससे लाभ भी क्या? किसी तरह जीवित रहनेमें क्या स्वारस्य है? सुरक्षित वसन्त ही जीवनका आनन्द है।

वसन्त अुड़ाअू होता है। अिसमें भी प्रकृतिका तारुण्य ही प्रकट होता है। कितने ही फूल और फल मुरझा जाते हैं। मानो प्रकृति जाड़ेकी कंजूसीका बदला ले रही हो। वसन्तकी समृद्धि कोअी शाश्वत समृद्धि नहीं। जितना कुछ दिखाअी देता है, अुतना टिकता नहीं।

राष्ट्रका वसंत भी अकसर अुड़ाअू होता है। कितने ही फूल और फल बड़ी-बड़ी आशाअें दिखाते हैं; लेकिन परिपक्व होनेसे पहले ही मुरझाकर गिर पड़ते हैं। सच्चे वही हैं, जो शरद् ऋतु तक क़ायम रहते हैं। राष्ट्रके वसन्तमें संयमकी वाणी अप्रिय मालूम होती है, परंतु वही पथ्यकर होती है।

अुत्सवमें विनय, समृद्धिमें स्थिरता, यौवनमें संयम — यही सफल जीवनका रहस्य है। फूलोंकी सार्थकता अिसी बातमें है कि अुनका दर्प फलके रसमें परिणत हो।

वसन्त पंचमीके अुत्सवकी सृष्टि न तो शास्त्रकारों द्वारा हुअी है, और न धर्माचार्योंने अुसे स्वीकार ही किया है। अुसे तो कवियों और गायकों, तरुणों और रसिकोंने जन्म दिया है। कोयलने अुसे आमंत्रण दिया है, और फूलोंने अुसका स्वागत किया है। वसन्तके मानी हैं, पक्षियोंका गान, आम्र-मंजरियोंकी सुगन्ध, शुभ्र अभ्रोंकी विविधता और पवनकी चंचलता। पवन तो हमेशा ही चंचल होता है; लेकिन वसन्तमें वह विशेष भावसे क्रीड़ा करता है। जहाँ जाता है, वहाँ पूरे जोश-ख़रोशके साथ जाता है; जहाँ बहता है, वहाँ पूरे वेगसे बहता है; जब गाता है, तब पूरी शक्तिके साथ गाता है, और थोड़ी देरमें बदल भी जाता है।

वसन्तसे संगीतका नया सत्र शुरू होता है। गायक आठों पहर वसन्तके आलाप ले सकते हैं। वे न तो पूर्व रात्रि देखते हैं, न अुत्तर रात्रि।

जब संयम, औचित्य और रस तीनोंका संयोग होता है, तभी संगीतका प्रवाह चलता है। जीवनमें भी अकेला संयम स्मशानवत् हो जायगा, अकेला औचित्य दंभरूप हो जायगा, और अकेला रस क्षणजीवी विलासितामें ही खप जायगा। अिन तीनोंका संयोग ही जीवन है। वसन्तमें प्रकृति हमें रसकी बाढ़ प्रदान करती है। अैसे समय संयम और औचित्य ही हमारी पूंजी होनी चाहिये।

फरवरी, १९२३

मंगलमूर्ति भीष्म

[माघ सुदी ८]

आज भीष्माष्टमीका पवित्र दिन है। भारतीय युद्धके बाद बाणोंकी शय्या बनाकर अुत्तरायणकी राह देखनेवाले, और बीचके अिस समयमें, मानव-जातिको धर्मकी प्रतिष्ठाकी रक्षा कर सकनेवाली राजनीतिका अुपदेश देनेवाले अखंड ब्रह्मचारी भीष्माचार्यका यह पुण्यदिन है।

महाभारतकी मंगलमूर्तियाँ तीन हैं — भीष्म, कृष्ण और व्यास। अिस त्रिमूर्तिमें भी प्रधान स्थान तो भीष्मका ही है। कृष्णकी विभूति तो आखिर दिव्य ही ठहरी; अिसलिअे अुसे भव्य नहीं कहा जा सकता। व्यास किसी वानप्रस्थकी तरह दूर-दूर ही रहते हैं। समस्त भारत पर अपनी मंगल छाया फैलानेवाले तो धर्मात्मा भीष्म ही हैं। वे सागरके समान गंभीर, हिमालयके समान अुत्तुंग-प्रचण्ड और अनन्त आकाशकी तरह शान्त-निर्मल हैं।

भीष्म कृष्णके अुत्तम भक्तोंमें से अेक हैं—

प्रह्लाद-नारद-पराशर-पुण्डरीक –
व्यासाम्बरीष-शुक-शौनक-भीष्म-दाल्भ्यान्।
रुक्माङ्गदार्जुन-वसिष्ठ-विभीषणादीन्
पुण्यान् अिमान् परम-भागवतान् स्मरामि ।।

अिस तरह हर रोज़ सवेरे अुठकर हम जिन-जिन परम-भागवतोंका स्मरण करते हैं, अुनमें भी भीष्मका स्थान कुछ निराला ही है। दूसरे भागवत भगवान्के अधीन रहकर अुनकी प्रेरणाके अनुरूप अपना बरताव रखते हैं। भीष्मके भाग्यमें अपने परम प्रभुका अखंड विरोध करना ही बदा था। और अैसा होते हुअे भी अुनकी वह भक्ति विरोधी भक्ति नहीं थी।

भीष्म और कृष्णका राष्ट्र-पुरुषके रूपमें विचार करते समय भी अुनका आत्यंतिक स्वभावभेद स्पष्ट रूपसे दिखाअी देता है। दोनों धर्मनिष्ठ, धर्मपरायण और धर्मकार थे; किन्तु दोनोंका जीवन-दर्शन बिलकुल भिन्न था। भीष्मका जीवनतत्त्व बहुत-कुछ प्रभु रामचन्द्रके जीवनतत्त्व जैसा है। दोनों मर्यादा-पुरुषोत्तम, अपनेको धर्म-परतंत्र समझनेवाले और धर्मपालनके लिअे बड़े-से-बड़ा त्याग शीतल वृत्तिसे करनेवाले थे। मानव-जातिके सामने आदर्श प्रस्तुत करनेवाले ये दो ही हैं। दूसरी तरफ़ श्रीकृष्ण हैं— जैसे प्रतिष्ठा-भंजक वैसे ही मर्यादा-भंजक! अुन्होंने तो मानो यह दिखानेके लिअे ही अवतार धारण किया था कि धर्म-मार्गके प्रत्येक नियमके लिअे अपवाद कैसे हो सकते हैं। बाबू बंकिमचन्द्रने श्रीकृष्णका अेक जीवनचरित्र लिखा है। वह चरित्र नहीं, बल्कि श्रीकृष्ण पर किये जानेवाले आक्षेपोंका अेक बड़ा खंडन ही है। यदि न्याय-निपुण लोग अपना बुद्धिसर्वस्व लगाकर श्रीकृष्णकी पैरवी न करें, तो श्रीकृष्णके अेक भी कामका औचित्य ध्यानमें न आये। मृत्यु-समयकी असह्य वेदनाओंसे पीड़ित बछड़ेको मृत्युके हवाले करके जिस

तरह गांधीजीने अहिंसा-धर्मका पालन किया था, अुसी तरहका कोअी काम करके श्रीकृष्णने हर बार धर्मका पालन किया होगा, अैसा भास होता है। धार्मिक सिद्धान्तोंके मूलमें पहुँचकर अुनके तत्त्वार्थका पालन करनेके लिअे शब्दार्थका विरोध किस तरह किया जाय, अिसीका अध्ययन श्रीकृष्णने किया होगा।

देवव्रत (भीष्माचार्य) ने अैन जवानीमें अेक भीष्म-प्रतिज्ञा करके राज्य और स्त्रीका त्याग किया। अिस अेक प्रतिज्ञा-पालनके लिअे अुन्होंने सब तरफ़से अपनी हानि होने दी। प्रतिज्ञा-पालनका प्रयोजन पूरा होनेके बाद भी अुन्होंने अुस प्रतिज्ञाका त्याग नहीं किया। और अुनका नसीब भी कैसा अजीब था? हालाँकि अुन्होंने राज्यका स्वीकार नहीं किया, फिर भी अुसका सारा भार तो अुन्हींको ढोना पड़ा। भाअी-भाअीमें होनेवाले झगड़ोंको टालनेके लिअे अुन्होंने ब्याह करना टाला; लेकिन अुन्हें कअी नियोग और कअी ब्याह कराने पड़े। अधिक क्या कहें? स्वयंवरोंमें भाग लेकर यौवन-संपन्न लड़कियोंको भी वे जीत लाये! और भाअी-भाअीके बीचमें जिस झगड़ेको टालनेके लिअे अुन्होंने अखंड ब्रह्मचर्यका स्वीकार किया था, अुसी झगड़ेके कारण अपनी अिच्छाके विरुद्ध असत‌पक्षके लिअे लड़कर और लाखों लोगोंका संहार करके अुन्हें अपने प्राण त्यागने पड़े। जिस तरह भीष्म-प्रतिज्ञा जगत्‌के लिअे आदर्शभूत है, अुसी तरह अुनका ब्रह्मचर्य भी अुतना ही अलौकिक है। अिस ब्रह्मचर्यके बल पर वे परम ज्ञानी, परम समर्थ और धर्मज्ञ बने; यही नहीं, बल्कि अिच्छा-मरणवाले भी बन गये। लेकिन अुनकी अुस प्रतिज्ञासे कौरवकुलको या आर्यसंस्कृतिको क्या लाभ हुआ? और नहीं तो कम-से-कम अितना संतोष तो अुन्हें मिलना चाहिये था कि "मैं सत्यके लिअे युद्ध कर रहा हूँ!" अुन्होंने राज्य-विषयक अपना अधिकार छोड़ दिया और स्वयं राजाके सेवक बने। अपनी सारी वफ़ादारी अुन्होंने राजगद्दीको अर्पित कर दी। 'मैं अिस गद्दीका अन्न खाता हूँ, अिसलिअे गद्दीकी

जो आज्ञा हो, वह मुझे सिरमाथे चढ़ानी चाहिये।' अिस तरहकी वैधानिक वृत्ति अुन्होंने धारण की। सचमुच भीष्म-जैसा कट्टर विधानवादी (Constitutionalist) शायद ही कोअी हुआ होगा। लेकिन विधानको ही देवता समझकर आचरण करनेसे अुन्होंने राष्ट्र-हितका तो सत्यानाश ही होने दिया।

*　　　　*　　　　*

महाभारतके धर्म-धुरंधर दो – श्रीकृष्ण और भीष्म। श्रीकृष्णका अुपदेश भगवत्‌गीतामें समाया हुआ है। भीष्मका अुपदेश कहीं अेकत्र किया हुआ नहीं मिलता। अुनका विख्यात राजधर्म शान्तिपर्वमें है। लेकिन भीष्मने अपनी सिखावनका सारा निचोड़ देह-त्याग करते समय कही गअी तीन ही पंक्तियोंमें दे दिया है। महाभारतने भीष्माचार्यको अिच्छामरणी कहा है। भीष्मको राजा युधिष्ठिरसे जो कुछ कहना था, वह सब अुन्होंने कह दिया। अुसके बाद भगवान् श्रीकृष्णकी ओर मुड़कर अुन्होंने भगवान्‌से देह-त्यागकी अनुज्ञा माँगी। पितृभक्त और निष्पाप भीष्मको श्रीकृष्णने अनुज्ञा दे दी। सभी पांडव पितामहके आसपास जमा हुअे। अुस समय अुनको और अुनकी मारफ़त सब भारतवासियोंको भीष्माचार्यने नीचे लिखे वचन कह सुनाये —

सत्येषु यतितव्यं वः सत्यं हि परमं बलम्॥
आनृशंस्यपरैर्भाव्यं सदैव नियतात्मभिः।
ब्रह्मण्यै धर्मशीलैश्च तपोनित्यैश्च भारताः॥

"सत्यके लिअे निरंतर प्रयत्न करो। सत्य सबसे श्रेष्ठ बल है। हमेशा अपने मन पर, हृदय पर क़ाबू रखकर दयाभावको अपनाओ। दुष्ट वृत्तिके अधीन मत होओ। जनताको ज्ञान और चारित्र्यकी शिक्षा देनेवाले वर्गका हमेशा पोषण करते रहो। धर्मकी प्रेरणाके अनुसार चलो, और हमेशा अपनी सारी शक्तियोंका विकास करते रहो।"

आज भी भारतवासियोंके लिअे दूसरा कौनसा अुपदेश हो सकता है?

१९३७

भीष्माष्टमी

माघ सुदी ८ **१ समय**

यह पुराना त्योहार क़रीब-क़रीब भुलाया जा चुका था। अब कहीं-कहीं अिसका पुनरुज्जीवन होने लगा है। हमारे यहाँ भी वैसा प्रयत्न होना चाहिये। भीष्म ब्रह्मचारी, दृढ़व्रत, भगवद्भक्त और नीतिज्ञ थे। महाभारतसे भीष्मकी जीवनीका निचोड़ निकालकर वह गंगा-प्रसाद विद्यार्थियोंको देना चाहिये; ख़ासकर कर्ण और भीष्मका अंतिम संवाद। शुद्ध, सात्त्विक आहार करके अिस दिन प्रार्थनापूर्वक ब्रह्मचर्यका व्रत लेना चाहिये। अगर यह त्योहार समाजमें जड़ पकड़े, तो अिसमें बहुत-सी बातें जोड़ी जा सकती हैं। आदर्श ब्रह्मचारियोंकी नामावली तैयार करके आजके दिन अुनकी जीवनियोंका परिचय कराया जाय। अुदाहरणके लिअे, रामकृष्ण परमहंस और शारदादेवी, अीसा, शुकदेव, योगवासिष्ठकी चुड़ाला, हनुमान, वनवासी लक्ष्मण, रामदास आदि।

अिस दिन लाठी, क़वायद और संघ-व्यायाम रखा जा सकता है।

महाशिवरात्रि

[माघ वदी १४]

१. अेक पत्र

यही बात बार-बार मनमें अुठ रही है कि आज आप लोग महाशिवरात्रिका त्योहार किस तरह मना रहे होंगे? शिवरात्रिका त्योहार अुत्सव नहीं, बल्कि व्रत है। शिवरात्रिका त्योहार व्रत समझा जाता है, अिसलिअे वैष्णव लोग अुसके बारेमें अुदासीन रहते हैं। शैव-वैष्णवोंका यह भेद अेक ज़मानेमें हमारे देशमें बहुत ही तीव्र था। जब तक मनुष्यमें लड़नेकी वृत्ति है, तब तक चाहे जिस भेदको आगे करके वह लड़ेगा। दक्षिण हिन्दुस्तानके शैव-

वैष्णवोंने पुराने ज़मानेमें अेक-दूसरेका कुछ कम खून नहीं बहाया है।

शिवरात्रिका माहात्म्य तो आप सब लोग जानते ही हैं। 'हरिणोंकी स्मृति' के संबंधमें आपने मेरी किताबमें पढ़ा और सुना ही है। वचन-पालनकी टेक, मातृवात्सल्य और दूसरोंके लिअे स्वात्मार्पण — यह सिखावन अिस कहानीसे आपने ली ही होगी। लेकिन आज मेरे मनमें शिवरात्रिका महत्त्व दूसरी दृष्टिसे स्फुरित हो रहा है।

हमारे धर्ममें जीव-दयाकी सिखावन सर्वोच्च और शुद्ध भूमिका परसे दी गयी है। तिर्यंच यानी मनुष्येतर जीव भी अीश्वरके ही बालक हैं। अीश्वरके हृदयमें अुनके प्रति भी अुतना ही वात्सल्य रहता है, जितना हमारे प्रति। मूक पशु-पक्षियोंमें भी हमारी ही तरह भावनायें होती हैं। अुन्हें दुःखी बनाना अधमता है। पशुओंको पीड़ा पहुँचानेसे अीश्वर विशेष रूपसे नाराज़ होता है, आदि बातोंकी सीख हमारे धर्ममें अनेक सुन्दर और प्रभावकारी ढंगोंसे दी गयी है। हमारा यह धर्म-सिद्धांत है कि पशु हमारी दयाके पात्र नहीं, वरन् प्रेमके अधिकारी हैं। जीव-दया नहीं, बल्कि जीवके प्रति आत्मौपम्यवाली प्रेमकी भावना हमारे धर्मको अभीष्ट है, पसन्द है।

जीव-प्रेमके प्रथम हिमायती हैं हमारे वाल्मीकि। अुन्होंने रामायणकी कथामें देवता, राक्षस, मनुष्य आदिके साथ पशु-पक्षियोंको भी बराबरीका स्थान दिया है। तिर्यक् योनिमें भी वीर, मुत्सद्दी (कूटनीतिज्ञ), साधु और प्रेम-सेवक होते हैं, अिसके बारेमें वाल्मीकिने कुछ अैसे ढंगसे गीत गाये हैं, मानो वे कोअी नयी बात कहते ही न हों — मानो बिलकुल स्वाभाविक बातें लिख रहे हों! भक्त शिरोमणि हनुमान, अुग्रशासन सुग्रीव, आर्त्तत्राण जटायु और सेनापति जाम्बुवानके विषयमें मनमें दयाभाव नहीं, आदरभाव ही अुत्पन्न होता है। हम यह भी भूल जाते हैं कि वे पशु-पक्षी हैं। यह समभाव ही जीव-प्रेमकी सच्ची बुनियाद है।

वसिष्ठ और कामधेनु, दिलीप और नन्दिनी, नेवला और राजसूय यज्ञ, गज और ग्राह, वेदकी सरमा और चोरी करनेवाले पणि लोग (फिनीशियन्स), धर्मराजका श्वान, नल-दमयन्तीके हंस और कर्कोटक, भगवान् मनुको बचानेवाला मत्स्य, प्रभु रामचन्द्रकी मदद करनेवाली गिलहरी — अैसी अेक-दो नहीं बल्कि असंख्य घटनाओंके वर्णन हमारे धर्मग्रंथोंमें किये गये हैं। अुनसे प्राणियोंके प्रति समभाव दृढ़ होता है। हमारे कअी अवतार भी मनुष्येतर हैं। जातक-कथाअें, पंचतंत्र, हितोपदेशकी कहानियाँ आदि सब अिसी दिशामें काम करती हैं। 'हरिणोंका स्मरण' भी हममें मनुष्येतरोंके प्रति प्रेम और समभाव अुत्पन्न करता है।

तो शिवरात्रिके दिन हम क्या करें? सिद्धैया कहेंगे — "गोरक्षाके लिअे २,००० गज सूत कातें।" किशोरलालभाअी कहेंगे — "अपने आश्रमके लावारिस कुत्तोंको हम क्यों न पालें? अगर हरअेक कुत्तेको यह महसूस होने लगे कि अुसे अपना समझकर खिलाने-पिलानेवाला यहाँ कोअी है, तो वह आर्य बनेगा और नालायक़ कुत्तोंको यहाँ आने न देगा।" डाह्याभाअी कहेंगे — "सबसे पहले जहाँ तक हो सके, गाड़ीमें न बैठनेका और अुसमें कम-से-कम बोझ लादनेका नियम बनायें, तो हमारा जीव-प्रेम सार्थक हो।" मगनलाल भाअी कहेंगे — "लड़के कुत्तोंके पीछे पड़कर अुन्हें मारते हैं; अगर अुन्हें रोका जाय, तो वह काफ़ी होगा।" ठाकोरभाअी कहेंगे — "कमरे साफ़ रखकर मकड़ी वग़ैराके जाले बनने ही न दिये जायँ, तो वह जीव-दयाका अेक सुन्दर अंग होगा।" मुझ-जैसा कहेगा — "रातके समय नदीके पानीमें जाकर अुसके अन्दर सोयी हुअी मछलियोंको तकलीफ़ न दी जाय, तो शिवरात्रिके दिन मछलियोंके लिअे भी शिव-रात्रि रहेगी।" शंकर कहेगा — "गरमीके दिनोंमें चिड़ियोंके लिअे पीनेका पानी रखना ज़रूरी है।" प्रत्येक प्रस्तावमें कुछ-न-कुछ सुन्दरता है, और ये सभी नियम आश्रम-जीवनमें शोभा देनेवाले हैं।

तो कहिये, शिवरात्रिका स्मरण करके आप कौनसा नया व्रत लेंगे? यह काम प्रेमका है, और अिसे प्रेमसे करना है। यह जरूरी नहीं कि लिया हुआ व्रत प्रकट किया ही जाय। आप स्वयं अुसे चुन लें, और अुसके अनुसार अुत्साहके साथ बरताव करने लगें।

२. हरिणोंका स्मरण

अेक विशाल वन था। बीस-बीस, तीस-तीस कोस तक न झोंपड़ीका पता था, न मुसाफ़िरोंके कामचलाअू चूल्होंका। वनमें अेक रमणीय तालाब था। तालाबके पास कुछ हरिण रहते थे। तालाबके किनारे बेलका अेक पेड़ था। अुस पेड़के नीचे पाषाण-रूपमें महादेवजी विराजमान थे। हरिण रोज़ तालाबमें नहाते, महादेवजीके दर्शन करते और चरने जाते। दोपहरको आकर बेलके पेड़के नीचे विश्राम करते; शामको तालाबका पानी पीकर महादेवजीके दर्शन करते और सो जाते। बिना कोअी शास्त्र पढ़े ही हरिणोंको धर्मका ज्ञान हुआ था। अिसलिअे वे संतोषपूर्वक अपना निर्दोष जीवन व्यतीत करते थे।

माघका महीना था। कृष्णपक्षकी चतुर्दशीके दिनकी बात है। अेक विकराल व्याध अुस वनमें घुसा। शाम हुआ ही चाहती थी। व्याध बहुत ही भूखा था। व्याधोंकी भूख अैसी-वैसी भूख नहीं होती। अगर अुन्हें कुछ न मिले, तो वे कच्चा मांस ही खाने बैठ जाते हैं। लेकिन हमारे अिस व्याधको अपनी भूखका दुःख न था। "घरमें बाल-बच्चे भूखे हैं, अुन्हें क्या खिलाअूँ? क्या मुँह लेकर घर जाअूँ? अगर शिकार न मिला, तो खाली हाथ घर जानेकी अपेक्षा रात वनमें ही रह जाना अच्छा होगा — शायद कुछ हाथ लग जाय।" अिस तरह सोचता हुआ वह तालाबके किनारे आया और बेलके पेड़ पर चढ़कर बैठ गया।

अपने बाल-बच्चोंके भरण-पोषणके लिअे स्वयं बहुत कष्ट अुठाने और खतरोंका सामना करनेको ही वह अपना धर्म समझता था। अिससे अधिक व्यापक धर्मका ज्ञान अुसे नहीं था।

रात हुआी। कृष्णपक्षकी घोर अँधेरी काली रात। कुछ दिखाआी न पड़ता था। व्याधने तालाबकी ओर देखनेमें रुकावट डालनेवाले बेलके पत्तोंको तोड़-तोड़कर नीचे फेंक दिया। अितनेमें वहाँ दो-चार हरिण पानी पीने आये। पेड़ पर बैठे व्याधको देखकर वे चौंक पड़े और निराशाभरे स्वरमें बोले — "हे व्याध, अपने धनुष्य पर बाण न चढ़ा। हम मरनेको तैयार हैं, पर हमें अितना समय दे कि हम घर जाकर अपने बाल-बच्चों और सगे-संबंधियोंसे मिल आयें। सूर्योदयसे पहले ही हम यहाँ हाज़िर हो जायँगे।

व्याध खिलखिलाकर हँस पड़ा। बोला — "क्या तुम मुझे बुद्धू समझते हो? क्या मैं अिस तरह अपने हाथ आये शिकारको छोड़ दूँ? मेरे बाल-बच्चे तो अुधर भूखसे तड़प रहे हैं।"

"हम भी तेरी तरह बाल-बच्चोंका ही खयाल करके अितनी छुट्टी चाह रहे हैं। अेक बार आज़माकर तो देख कि हम अपने वचनका पालन करते हैं या नहीं?"

व्याधके मनमें श्रद्धा और कौतुक जाग अुठा। ठीक सूर्योदयसे पहले लौट आनेकी ताकीद करके अुसने अुन हरिणोंको घर जाने दिया, और खुद बेलके पत्तोंको तोड़ता हुआ रातभर जागता रहा। श्रद्धावान् व्याधके हाथों अपने सिर पर पड़े बिल्वपत्रोंसे महादेवजी संतुष्ट हुअे।

ठीक सूर्योदयका समय हुआ, और हरिणोंका अेक बड़ा दल वहाँ आ पहुँचा।

हरिण घर गये, बाल-बच्चोंसे मिले, अपने सींगोंसे अेक-दूसरेको खुजलाया, नन्हें बच्चोंको प्रेमसे चाटा, अुन्हें व्याधकी कहानी कह सुनाआी और बिदा माँगी।

'दुष्ट व्याधके साथ वचन-पालन कैसा?' 'शठं प्रति शाठ्यं कुर्यात्।' पैरोंमें जितना ज़ोर हो अुतना सब ज़ोर लगाकर यहाँसे चुप-चाप भाग जाओ!" अैसी सलाह देनेवाला अुनमें कोआी न निकला। सगे-संबंधियोंने कहा — "चलो, हम भी साथ चलते हैं। स्वेच्छासे

मृत्यु स्वीकार करने पर मोक्ष मिलता है। आपके अपूर्व आत्म-यज्ञको देखकर हम पुनीत होंगे।"

बाल-बच्चे साथ हो लिये। मानो सब व्याधकी हिंस्रताकी परीक्षा करने ही निकले हों!

सूर्योदयसे पहले ही सारा दल वहाँ आ पहुँचा। रातवाले हरिण आगे बढ़े और बोले — "लो भाओी, हम वधके लिअे तैयार हैं।" दूसरे हरिण भी बोल अुठे — "हमें भी मार डालो! अगर हमें मारनेसे तुम्हारे बाल-बच्चोंकी भूख शान्त होती है तो अच्छा ही है।" व्याधकी हिंसावृत्ति रात्रिकी तरह लुप्त हो गयी। सारे दिनका अुपवास और सारे रातके जागरणसे अुसकी चित्तवृत्ति अन्तर्मुख हुअी थी। तिस पर अिन प्रतिज्ञा-पालक हरिणोंका धर्माचरण देखकर वह दंग रह गया। अुसके हृदयमें नया प्रकाश फैला। अुसे प्रेम-शौर्यकी दीक्षा मिली। वह पेड़से अुतरा और हरिणोंकी शरण गया। दो पैरवालेने चार पैर-वाले पशुओंके पैर छुअे। आकाशसे श्वेत पुष्पोंकी वृष्टि हुअी। कैलाशसे अेक बड़ा विमान अुतर आया। व्याध और हरिण अुसमें बैठे और कल्याणकारिणी शिवरात्रिका माहात्म्य गाते हुअे शिवलोक सिधारे। आज भी वे दिव्य रूपमें चमकते हैं।*

महाशिवरात्रिका दिन मानो अिन धर्मनिष्ठ, सत्यव्रत हरिणोंके स्मरणका ही दिन है।×

मार्च, १९२२

---

* मृगनक्षत्र और व्याध।

× अेकादशी, अष्टमी, चतुर्थी और शिवरात्रि ये सब हिन्दू महीनोंमें हमेशा आनेवाले त्यौहार हैं। वैष्णवोंने अेकादशीको सबके लिअे लोकप्रिय बना दिया है। गणपतिके अुपासक विनायकी और संकष्टी चतुर्थीका व्रत रखते हैं। देवीके अुपासक अष्टमीका व्रत रखते हैं। शिवरात्रि हर महीने कृष्णपक्षकी चतुर्दशीके दिन आती है। शैव लोग

महाशिवरात्रि

माघ वदी १४ **आधा दिन**

यह अपरिग्रह और जीव-दयाका त्योहार है। महाशिवरात्रिके दिन अकेले शिव-अुपासक ही नहीं, वरन् सभी लोग अुपवास रखें, और अिस बात पर विचार करें तो अच्छा हो कि अपने रोज़-रोज़के जीवनमें अनावश्यक चीज़ोंका कितना त्याग किया जा सकता है। हमारा सबसे बड़ा परिग्रह लोभ और आलस्यका है। अुसे कम करनेका अिलाज खोजनेमें आजका कुछ समय खर्च किया जाय, तो वह अिष्ट होगा। अपरिग्रही महादेवजीके दर्शनोंको जानेका रिवाज जरूर ही जारी रखने जैसा है। महादेवजीका द्वार हमेशा मुक्त द्वार रहता है। आजके दिन शिक्षक महादेवजीकी कोअी अच्छी धर्म-बोधक कहानी लड़कोंको सुनायें। वे अुन्हें कारण देकर समझायें कि क्यों महादेवको आमके मौर चढ़ाना ठीक नहीं।

शिवरात्रिका व्रत रखते हैं। जिस तरह अेकादशियोंमें आषाढ़ी और कार्तिकी अेकादशियाँ महाअेकादशियाँ हैं, अुसी तरह माघ महीनेकी शिवरात्रि महाशिवरात्रि है।

प्रत्येक मासके प्रत्येक त्योहारका अपना माहात्म्य और अुसकी अपनी अेक कथा होती है। अुनमें से महाशिवरात्रिकी कथा अूपर दी गअी है।

कहानीके अिस पुरातन क्षेत्रकी ओर लोक-कथाओंका संग्रह करनेवाले संशोधकोंका ध्यान जाना चाहिये।

ग़ुलामोंका त्योहार

प्रत्येक त्योहारमें कुछ-न-कुछ ग्रहण करने योग्य अवश्य होता है। लेकिन क्या आजकलकी होलीसे भी कुछ शिक्षा मिल सकती है? पिछले बीस-पच्चीस बरसोंमें यह त्योहार जिस ढंगसे मनाया गया है, अुसे देखते हुअे तो अिसके विषयमें किसी तरहका अुत्साह अुत्पन्न नहीं हो सकता। न अिसका प्राचीन अितिहास और न पौराणिक कथाअें ही अिस त्योहार पर कोअी अच्छा प्रकाश डालती हैं। फिर भी यह तो स्वीकार करना ही चाहिये कि होली अेक प्राचीनतम त्योहार है। जाड़ेके समाप्त होने पर अेक ज़बरदस्त होली जलाकर आनन्दोत्सव मनानेका रिवाज हर देशमें और हर ज़मानेमें मौजूद रहा है। अिस अुत्सवमें लोग संयमकी लगाम ढीली छोड़कर स्वच्छंदताका थोड़ा आस्वाद लेना चाहते हैं। हिन्दुओंमें अकेले मनुष्योंकी ही जाति नहीं होती, बल्कि देवताओं, पशु-पक्षियों और त्योहारोंकी भी अपनी जातियाँ होती हैं। स्वर्गके अष्टावसु जातिके वैश्य हैं, नाग और कबूतर ब्राह्मण होते हैं, और तोता बनिया माना जाता है। अिसी तरह होलीका त्योहार शूद्रोंका त्योहार है। क्या अिसीलिअे किसी ज़मानेके बिगड़े हुअे शूद्रों द्वारा होलीका यह कार्यक्रम बनाया गया था, और अुनके हकोंको क़ायम रखनेके लिअे दूसरे वर्णोंने अुसे स्वीकार कर लिया था? पुराणोंमें अेक नियम है कि होलीके दिन अछूतोंको छूना चाहिये। भला अिसका क्या अुद्देश्य रहा होगा? द्विज लोग संस्कारी अर्थात् संयमी और शूद्र स्वच्छन्दी हैं, क्या अिसी विचारसे होलीमें अितनी स्वच्छंदता रखी गयी है? होलीके दिन राजा-प्रजा अेक होकर अेक-दूसरे पर रंग अुड़ाते हैं। क्या अिसका आशय यह है कि सालमें कम-से-कम चार-पाँच दिन तो सब लोग समानताके सिद्धान्तका अनुभव करें?

होली यानी काम-दहन; वैराग्यकी साधना। विषयको काव्यका मोहक रूप देनेसे वह बढ़ता है। अुसीको बीभत्स स्वरूप देकर, नंगा

करके समाजके सामने अुसका असली रूप खड़ा करके, विषयभोगके प्रति घृणा अुत्पन्न करनेका अुद्देश्य तो अिसमें नहीं था न? जाड़ेभर जिसके मोहपाशमें फँसे रहे, अुसकी दुर्गति करके, अुसे जलाकर और पश्चात्तापकी राख शरीर पर मलकर वैराग्य धारण करनेका अुद्देश्य तो अिसमें नहीं था न?

अिसकी जड़में प्राचीन कालकी लिंग-पूजाकी विडम्बना तो नहीं थी न?

लेकिन होलीका अर्थ वसन्तोत्सव भी तो है। जाड़ा गया, वसन्तका नूतन जीवन वनस्पतियोंमें भी आ गया। अतः जाड़ेमें जमा करके रखी हुअी तमाम लकड़ियोंको अेकत्र करके आखिरी बार आग जलाकर ठण्डको बिदा करनेका तो यह अुत्सव नहीं है न? और यह ढुण्ढा राक्षसी कौन है? कहते हैं कि यह नन्हे बच्चोंको सताती है। होलीके दिन जगह-जगह आग सुलगाकर, शोर-गुल मचाकर अुसे भगा दिया जाता है। अिसमें कौनसी कवि-कल्पना है? क्या रहस्य है?

लोगोंमें अश्लीलता तो है ही। वह मिटाये मिट नहीं सकती। कुछ लोगोंका खयाल है कि 'तुष्यतु दुर्जनः' न्यायके अनुसार सालमें अेक दिन दे देनेसे वह हीन वृत्ति वर्षभर क़ाबूमें रहती है। अगर यह सच है, तो यह अेक भयंकर भूल है। आगमें घी डालनेसे वह कभी क़ाबूमें नहीं रहती। पाप और अग्निके साथ स्नेह कैसा? वसन्तका अुत्सव अीश्वरस्मरण-पूर्वक सौम्य रीतिसे मनाना चाहिये। क्या दीवालीमें अुत्सवका आनन्द कम होता है? क्या लकड़ियोंकी होली जलानेसे ही सच्चा वसन्तोत्सव मनाया जा सकता है? यदि यह माना जाय कि होलिका अेक राक्षसी थी और अुसे जलानेका यह त्योहार है, तो हम अुसे चुराकर लायी हुअी लकड़ियोंसे नहीं जला सकते। होलिका राक्षसी तो प्रह्लादकी निर्वैर पवित्रतासे ही जल सकती है।

हमें यह सोचना चाहिये कि हमारे त्योहार हमारे राष्ट्रीय जीवन और हमारी संस्कृतिके प्रतिबिम्ब हैं या नहीं? मनुष्यमात्र अुत्सव-प्रिय

है। परंतु स्वतंत्र मनुष्योंका अुत्सव जुदा होता है और गुलामोंका जुदा। जो स्वतंत्र होता है, जिसके सिर ज़िम्मेदारी होती है, जिसको अधिकारका अुपयोग करना होता है, अुसकी अभिरुचि सादी और प्रतिष्ठित होती है। जो परतंत्र होता ह, जिसे अपने अुत्तरदायित्वका ज्ञान नहीं, जिसके जीवनमें कोअी महत्त्वाकांक्षा नहीं, अुसकी अभिरुचि बेढंगी और अतिरेकयुक्त होती है। अेक ग्रंथकारने लिखा है कि स्त्रियोंको तरह-तरहके रंग जो पसन्द आते हैं और रंग-बिरंगी व चित्र-विचित्र पोशाककी ओर अुनका मन जो दौड़ा करता है, अुसका कारण अुनकी परवशता है। यदि स्त्री स्वाधीन हो जाय, तो अुसका पहनावा भी सादा और सफ़ेद हो जायगा। स्त्रियोंके संबंधमें यह बात सच हो या न हो, मगर जनता पर तो यह भलीभाँति चरितार्थ होती है। जिस ज़मानेमें जनता अधिकार-हीन, परतन्त्र, बालवृत्तिवाली और गैरज़िम्मेदार रही होगी, अुसी ज़मानेमें मूर्खतापूर्ण कार्यों द्वारा अिस त्योहारको मनानेकी यह प्रथा प्रचलित हुअी होगी।

रोमन लोगोंमें सैटर्नेलिया नामसे गुलामोंका अेक त्योहार मनाया जाता था। अुस दिन ग़ुलाम अपने मालिकके साथ खाना खाते, जुआ खेलते, आज़ादीसे बोलते-चालते और खुशियाँ मनाते। अुस दिन अितना आनंद मनानेके बाद फिर अेक साल तक ग़ुलामीमें रहनेकी हिम्मत अुनमें आ जाती थी।

स्वराज्यवादी जनताको अधिक गंभीर बनना चाहिये। अपनी योग्यता क्या है, अपनी स्थिति कैसी है, आदि बातोंका विचार करके अुसको अैसा जीवन बिताना चाहिये, जो अुसे शोभा दे। अगर वसन्तोत्सव मनाना है, तो समाजमें नया जीवन पैदा करके यह त्योहार मनाना चाहिये। अगर काम-दहन करना है, तो ब्रह्मचर्यव्रत धारण करके पवित्र बनना चाहिये। यदि होलिकोत्सव ग़ुलामीके लिअे अेकमात्र सांत्वनाका साधन हो, तो स्वराज्यकी खातिर अुसे तुरन्त ही मिटा देना चाहिये। अगर भाषाके भण्डारमें गालियोंकी पूँजी कम हो जाय, तो अुसके लिअे

शोक करनेकी कोअी ज़रूरत नहीं। होलीके दिनोंमें शहरों और गाँवोंकी सफ़ाअी करनेमें हम अपना समय बिता सकते हैं। लड़के कसरत करने और बहादुरीके मरदाने खेल खेलनेमें तथा शराबके व्यसनमें फँसे हुअे लोगोंके मुहल्लोंमें जाकर अुन्हें शराबखोरी छोड़ देनेका व्यक्तिगत अुपदेश देनेमें अिस दिनका अुपयोग कर सकते हैं। स्त्रियाँ स्वदेशीके गीत गा-गा कर खादीका प्रचार कर सकती हैं।

प्रत्येक त्योहारका अपना अेक स्वराज्य-संस्करण अवश्य होना चाहिये, क्योंकि स्वराज्यका अर्थ है, आत्मशुद्धि और नवजीवन।

१२-३-'२२

होली

फागुन पूनो **१ दिन**

होलीका त्योहार है तो हटा देने लायक़, क्योंकि अिस दिनके पुराने कार्यक्रममें अुन्नतिका अेक भी अंश नहीं। फिर भी यह त्योहार सारे देशमें अितना अधिक रूढ़ और लोकप्रिय है कि अगर हम अिसका अुपयोग न कर सके, तो वह हमारा ही दोष समझा जायगा। आज तक होलीके दिन संस्कारी समझे जानेवाले लोग भी असंस्कारी बनते रहे हैं। अगर आगेसे संस्कारी लोग असंस्कारी लोगोंकी सेवा करनेमें अिस दिनका अुपयोग करें, तो यह त्योहार सार्थक हो जायगा। होलीके दिन हम हरिजनोंको विशेष रूपसे अपने यहाँ बुलायें, समानभावसे अुनका स्वागत करें, अुनके सुख-दुःखको समझें, या हरिजनोंकी बस्तीमें जाकर अुन्हें कोरा अुपदेश करनेके बजाय अुनके प्रति अपनी सक्रिय सहानुभूति दिखायें। अुनके लड़कोंको अपने यहाँ खेलनेके लिअे बुलायें और अुनके साथ कबड्डी वगैरा खेलें।

होलीका त्योहार मैदानी और मरदाने खेलोंके लिअे विशेष अनुकूल है। दिनमें तरह-तरहकी कसरतोंके दंगल रखे जायँ। अुसके बाद सब मिलकर भोजन करें। रातको चाँदनीमें कबड्डी खेली जाय।

अच्छा हो यदि होली जलानेकी प्रथा अुठा दी जाय। सिर्फ़ शौक़के लिअे ज़रूरी चीज़ें जलाना हमारे समाजको न पुसायेगा। घास, गोबर आदि खेतीके लिअे कामकी चीज़ें जलानेमें खेतीके प्रति लापरवाही प्रकट होती है, फिर भी छात्रोंको यह समझा दिया जाय कि गोशालामें धुआँ करके मच्छरोंसे जानवरोंकी रक्षा करनी चाहिये।

होलीके दिन कच्चे आमकी भाँति-भाँतिकी चीज़ें बनाकर खानेमें औचित्य है।

अिस दिन अपने सम्पर्कमें आनेवाले मज़दूरों, नौकरों और दूसरे ग़रीब लोगोंके साथ बैठकर खाना खानेकी प्रथा बहुत ही अच्छी है। खानेमें अैसी ही चीज़ें रहें, जो सबको मिल सकती हों।

बहुत अच्छा हो यदि होलीके दिन मद्यपान-निषेधका काम भी ख़ास तौरसे किया जाय। अिस दिन हरिजनोंमें पैदा हुअे अनेक साधु-सन्तोंके चरित्रोंका कीर्तन विशेष रूपसे किया जाना चाहिये। जैसे, गुहक, नन्दनार, चोखामेळा, कनकदास, बळ आदि।

धर्म-रक्षक शिवाजी

[फागुन वदी ३]

अेक बार सत्याग्रहाश्रममें शिवाजी महाराजकी जयन्ती मनायी गयी थी। अुस अवसर पर पूज्य गांधीजीने कहा था — "शिवाजी महाराजके बारेमें अितिहासकार क्या कहते हैं, अुस तरफ ध्यान देनेकी अपेक्षा मैं अिस बातको अधिक महत्त्व दूँगा कि सन्तोंने अुनके संबंधमें क्या कहा है। अगर सन्त पुरुषोंने अुन्हें अच्छा प्रमाण-पत्र दिया हो, तो मेरे लिअे वह काफ़ी है।"

शिवाजी महाराजके विषयमें संत तुकाराम और समर्थ रामदासने जो आदर-वचन कहे हैं, वे सचमुच बहुत क़ीमती हैं; क्योंकि वे दोनों शिवाजीके समकालीन थे। महाराष्ट्रके महाकवि मोरोपन्तने

शिवाजीकी तुलना जनक राजाके साथ की है। अुसे हम अतिशयोक्ति समझकर छोड़ दें। शिवाजी महाराज जितने राज्य-संस्थापक थे, अुतने ही धर्म-रक्षक भी थे। अुनके ब्राह्मणोंको विशेष दान देनेकी कोअी घटना नहीं मिलती। अुन्होंने कहीं कोअी गोशाला भी नहीं बनवायी थी। फिर भी महाराष्ट्रकी जनताने अुन्हें 'गो-ब्राह्मण-प्रतिपालक छत्रपति' की अुपाधि प्रदान की थी।

अीस्वी सन् ७०० में, जब मुसलमान हिन्दुस्तानमें आने लगे थे, अिस देशकी हालत कुछ अच्छी नहीं थी। लोगोंमें आपसी फूट, जातिकी अुच्च-नीचताका अभिमान, वहम, आलस्य और प्रमादका साम्राज्य सर्वत्र फैला हुआ था। श्री शंकराचार्यने हिन्दू-समाजको संगठित करनेका जो प्रयत्न शुरू किया था, अुसे अीस्वी सन् १५०० तक अनेक सन्तोंने आगे बढ़ाया। वेदान्तके सूर्य और भक्तिकी चाँदनीके प्रभावसे हिन्दूधर्मका सनातनत्व फिर अेक बार चमक अुठा। फिर भी राजनीतिक तथा सामाजिक स्थिति पूरी तरह सुधरी नहीं थी। अिसलिअे बहुतसे लोग धर्मान्तर करने लगे। अिसमें ज़ुल्म और ज़बरदस्तीका अंश कितना ही क्यों न रहा हो, तो भी यह निश्चित बात है कि सिर्फ़ अुसी कारणसे अितने ज्यादा लोग धर्मान्तरित न किये जाते। कअी कारीगर जातियाँ बिना किसी कारणके अस्पृश्य समझी जानेसे अूब गयी थीं। अुन्हें सामाजिक अत्याचारोंके अलावा सरकारी ज़ुल्म-ज़बरदस्तियाँ भी बहुत बरदाश्त करनी पड़ती थीं। अितिहासका सबूत है कि अिस तकलीफ़से परेशान होकर कअी जातियाँ पूरी-की-पूरी दूसरे धर्मोंमें चली गयीं। और अिस रास्ते वे अपने अस्पृश्यताके कलंकसे मुक्त हो सकीं।

मुसलमानोंका जो हमला पंजाबसे शुरू हुआ, वह पूर्वमें बंगाल और अुत्कल तक पहुँचा और दक्षिणमें पांड्य, केरल और चोल लोगोंके राज्यों तक फैल गया। अीस्वी सन् १३०० तक यह आक्रमण लगभग पूरा हो गया। अुस वक़्त दक्षिणमें अनागोंदी और हम्पीकी तरफ होयसळ

वंशने हिन्दू संगठनका अेक बड़ा ज़बरदस्त और सफल प्रयोग करके विजयनगरके साम्राज्यकी स्थापना की। यह साम्राज्य सिर्फ़ दो सौ बरस तक चला, लेकिन बगदादके बादशाह और चीनके सम्राट्की अपेक्षा विजयनगरके 'तीन मुकुट धारण करनेवाले' महाराजाधिराजका वैभव बड़ा समझा जाता था। विजयनगरने अेक बार फिर पुरानी हिन्दू संस्कृतिका अुद्धार करनेका पूरा-पूरा प्रयत्न करके देखा। अुसने वेद-विद्याको फिरसे चालू किया; व्रत, अुत्सव आदिका विस्तार किया। अिसके परिणामस्वरूप श्रुति-स्मृति-पुराण तथा तंत्र द्वारा विस्तृत बना हुआ हिन्दूधर्म राजमान्य हुआ।

लेकिन अुसके अिस प्रयत्नमें आवश्यक आधुनिकता और मानवताको स्थान न मिलनेसे राकसतागड़ीकी लड़ाअी (अिसे ताली-कोटका युद्ध भी कहते हैं) में विजयनगरके साम्राज्यका अेकाअेक नाश हुआ और हिन्दूधर्म तथा हिन्दू-समाज फिर अेक बार अनाथ बने।

अैसी स्थितिको पहुँचे हुअे हिन्दू-समाजमें फिरसे जी अुठनेकी जो छटपटाहट मौजूद थी और जिसे साधुसन्तोंने पुनः सींचा था, वह छटपटाहट शिवाजी महाराजमें प्रकट हुअी और अुन्होंने फिरसे 'हिन्दवी स्वराज्य' की प्रस्थापना करनेका निश्चय किया।

विशेष रूपसे ध्यानमें रखने लायक़ बात यह है कि शिवाजीके मनमें अिस्लामके प्रति, अुसके औलियों या धर्मग्रंथोंके प्रति तनिक भी तिरस्कार न था। हिन्दुओं द्वारा मुसलमानोंकी मस्जिदों, रोज़ों या मक़बरोंके तोड़े जानेकी अेक भी मिसाल नहीं पायी जाती। हिन्दू लोगोंके मनमें केवल अपने धर्मके प्रति नहीं, बल्कि सभी धर्मोंके प्रति श्रद्धा और आदर होता है। धर्म वही है, जो मनुष्यको अूपर अुठाये। हिन्दू लोग अितना तो अच्छी तरह समझने लगे थे कि अगर धर्मका नाश होने दिया गया, तो सारी मानवता ही नष्ट हो जायगी। अगर अुनमें कोअी खामी थी, तो वह यही थी कि जिस तरह धौंकनी चलाकर अग्निको प्रज्वलित रखा जाता है, अुसी तरह जीवनके शुद्धीकरण और

संस्करण द्वारा धर्मका भी संस्करण करनेकी आवश्यकता होती है, अिसके बारेमें वे पर्याप्त रूपसे जाग्रत नहीं थे।

शिवाजीके समयमें समाज पर सन्तमतका प्रभाव बहुत पड़ चुका था, और तुकाराम तथा रामदास जैसे प्रभावशाली धर्मसुधारक धर्म-सेवा कर रहे थे। तुकाराम जैसे कअी साधुओंने पंढरपुरकी वारी* संस्था चलाकर भक्ति-संप्रदायका संगठन किया, और रामदासने जगह-जगह अपने मठों और हनुमानके मंदिरोंके साथ-साथ अखाड़ोंकी स्थापना करके वर्णाश्रमधर्मका संगठन किया।

अिसके साथ ही जो क़िले प्राचीन कालसे देशकी रक्षा करते आ रहे थे, अुन्हें जीत कर शिवाजीने अपने राज्यका संगठन किया। धर्मान्तरित सरदारोंको फिरसे हिन्दूधर्ममें लेकर, सेनामें हिन्दुओंके साथ मुसलमानोंको भी भरती करके, राज्य-तंत्रमें सभी जातियोंके लोगोंको स्थान देकर, किसीको जागीर या अिनाम न देनेका नियम करके, राज्यको मजबूत बनाकर, अच्छे लोगोंकी सिफ़ारिशसे आये हुअे निष्ठावान लोगोंको ही सेनामें तथा राज्य-तंत्रमें शामिल करके और अैसे ही दूसरे अुपायोंसे शिवाजीने अपने राज्य-तंत्रको संगठित, सुदृढ़ और कार्यक्षम बनाया और धीरे-धीरे अपनी जलसेना भी तैयार करके व्यापार बढ़ानेका प्रयत्न किया।

शिवाजीका अितिहास देखनेसे साफ़ ही मालूम होता है कि वे अपने ज़मानेसे बहुत आगे बढ़े हुअे थे। प्रत्येक काम नियत समय पर होना ही चाहिये, निश्चित की हुअी योजनाको क्रमसे पूरा करना ही चाहिये, होनेवाला खर्च हिसाब और अनुपातसे बाहर जाना ही न चाहिये, हुक्मकी तामीलमें थोड़ी भी गफ़लत हरगिज़ न होनी चाहिये,

---

* वारी = प्रत्येक अेकादशीके दिन पांडुरंगके दर्शन करनेके लिअे पैदल पंढरपुर जाना।

वगैरा तमाम बातोंमें शिवाजीकी दृढ़ता लगभग अंग्रेज़ों-जैसी ही थी। शिवाजी अच्छी तरह् जानते थे कि राज्य चलानेके लिअे अखंड द्रव्यबल और मनुष्यबलकी आवश्यकता रहती है; अिसलिअे अपनी पूरी ताक़त लगाकर अुन्होंने अिन दोनोंका बहुत बड़ा संग्रह किया था। शिवाजीके पुत्र संभाजीने अपने पिताकी अिस चौमुखी कमाअीको बहुत कुछ बरबाद कर दिया था; फिर भी राजारामके समयमें महाराष्ट्र औरंगज़ेबके ख़िलाफ, जो खुद वहाँ लड़ने पहुँचा था, अठारह बरस तक लड़ता रहा। यही नहीं, बल्कि अन्तमें अुसने अुस सम्राट्की बलि ली और अपना समवाय-तंत्र (फेडरेशन) प्रस्थापित किया। यह अेक ही बात शिवाजीकी योग्यताका पर्याप्त प्रमाण है।

शिवाजीके अेक सरदारने, अुस ज़मानेके रिवाजके मुताबिक़ लड़ाअीकी लूटमें कल्याणके सूबेदारकी ख़ूबसूरत बहूको पकड़ा और अुसे शिवाजीको समर्पित किया। मगर नौजवान शिवाजीने अपने मनमें किसी तरहके पापको स्थान नहीं दिया। अुन्होंने अुसे बहन माना और भाअीकी तरफ़से भेंटके तौर पर दो गाँव अिनाममें देकर बड़े सन्मानके साथ अुसे अुसके घर भेज दिया। अुस युवतीका रूप-लावण्य देखकर शिवाजीने अितना ही कहा — "अगर मेरी माँ अितनी ख़ूबसूरत होती, तो मैं भी ख़ूबसूरत होता।"

शिवाजीकी माताने अपने पुत्रको रामायण-महाभारतके आदर्शोंकी दीक्षा दी थी, और यह भी सिखाया था कि धर्मके लिअे जीना चाहिये तथा धर्मके लिअे मरना भी चाहिये। शक्तिके अुपासक शिवाजीने देशकी धर्म-शक्तिको चमका दिया और हिन्दुस्तानके सामने अेक अूँचा अुज्ज्वल आदर्श पेश किया। अुनका जीवनमंत्र था — 'अन्यायके ख़िलाफ लड़ना और किसी हालतमें हिम्मत न हारना।'

२५-५-'३६

शिवाजी-जयन्ती

फागुन वदी ३ **१ दिन**

गुजरात और महाराष्ट्रका संबंध अटूट है। जिस तरह महाराष्ट्रमें गुजराती लोग बसे हुअे हैं, अुसी तरह गुजरातमें भी महाराष्ट्री लोग स्थायी रूपसे बस गये हैं। महाराष्ट्र अुत्सवप्रिय है। अुसने गणेश-चतुर्थी जैसे कुछ त्योहारोंको बड़ा सामाजिक और राष्ट्रीय रूप दे दिया है। वे सब त्योहार गुजरातमें नहीं चल सकते। लेकिन यह वांछनीय है कि खास महाराष्ट्रियोंके लिअे अेक त्योहार रखकर गुजराती और महाराष्ट्री लोग अुसे मिलकर मनायें।

शिवाजी-जयंती मनानेमें अेक विशेष अर्थ है। अंग्रेज़ अितिहास-कारोंने शिवाजीको गुजरातके दुश्मनके रूपमें चित्रित किया है। अिस असरको धो डालनेके लिअे और महाराष्ट्रके रामदास-जैसे साधु-सन्तोंका स्मरण करनेके लिअे फागुन वदी ३ निश्चित की जाय। ज्ञानेश्वर, अेकनाथ, तुकाराम, नामदेव, जनाबाअी, मुक्ताबाअी आदि महाराष्ट्रके सन्तोंका तर्पण अिसी दिन किया जा सकेगा। अिस त्योहारके मनानेमें महाराष्ट्रियोंसे सलाह और मदद भले ही ली जाय, लेकिन अच्छा यह होगा कि अिसका सूत्रपात गुजराती लोग ही करें। रामदास और ज्ञाने-श्वरका परिचय गुजरातीमें दिया जा सकता है। दूसरे साधु-संतोंके विषयमें भी अिस दिन थोड़ी-बहुत जानकारी दी जाय और अुनकी कविताओंका गुजरातीमें अनुवाद हो जाय, तो परिचायक साहित्यमें अुतनी वृद्धि होगी।

अिस दिन सब तरहके मरदाने खेल खेले जायँ। खेलोंमें भालेका खेल अवश्य रखा जाय।

प्रेमवीर ब्रह्मचारी

[२५ दिसम्बर]

प्रेममूर्ति, भगवद्भक्त, ब्रह्मचारी ओसाने ओश्वरकी अेक अद्भुत विभूति व्यक्त की है। बुद्ध भगवान्‌की तरह ओसाका जीवन भी करुण-गंभीर और अुदात्त-कोमल है। अेक बढ़ओीका अपढ़ लड़का अपने समयके साधु पुरुषों और धर्माचार्योंसे प्रश्न पूछ-पूछ कर स्वतंत्र रूपसे धार्मिकताका आदी बनता गया, और केवल श्रद्धा और ओश्वरकृपासे ओश्वर-परायण भक्त बना। यह तो सभी कहते थे कि ओश्वर सर्वशक्तिमान है; लेकिन ओश्वर क्षमावान ही नहीं, बल्कि सर्वसह भी है, अिसे पहचाननेवाले सत्पुरुषोंमें भी ओसाका अपना अनूठा स्थान है। ब्रह्मचर्यके माहात्म्यको पहचानकर अुस रसायनको सिद्ध करनेवाले तपस्वी तो बहुत हो गये हैं; लेकिन जिनके लिअे ब्रह्मचर्य सहज सिद्ध था, अैसे सत्पुरुषोंमें भी ओसा विशेष रूपसे अलग दिखायी देता है, क्योंकि अुसमें अिस ओश्वरी प्रसादका अहंकार न था। वह कहता था — 'ब्रह्मचर्य तो अुन्हीं लोगोंके लिअे सहज सिद्ध है, जिन्हें वह परमेश्वरसे मिला है; औरोंके लिअे तो वह लोहेके चने चबाने-जैसा ही मुश्किल है।' यदि किसी ब्रह्मचारीने स्त्री-जातिके अुद्धारके लिअे अपना हृदय निचोया हो, तो वह ब्रह्मचारी ओसा था। अितनी अुत्तमताको अुसका ज़माना हजम न कर सका। जिस अपराधके लिअे सुकरातको मौतकी सज़ा मिली, अुसी अपराधके लिअे प्रभुभक्त ओसाको सूली पर चढ़ना पड़ा। अनेक अवतारी पुरुषोंने अपने-अपने शिष्यों और भक्तोंको भक्तिधर्मकी दीक्षा दी है। ओसाने अपने श्रावकों और अनुयायियोंको जो अुपदेश दिये, अुनमें से दो-चार संग्रहीत हुअे हैं। अुनका असर सैकड़ों बरसोंसे लोगों पर होता रहा। अिसे अेक तरहका दुर्भाग्य ही समझना चाहिये कि अैसे कारुण्यवीरके

नामसे अेक स्वतंत्र धर्मकी स्थापना हुअी। बरबस यह अनुभव होता है कि अीसाके अनुयायियोंने अेक अलग धर्मकी स्थापना करके अुसके अुपदेशकी व्यापकताको मर्यादित कर दिया है। जो भी हो, सभी धर्मके लोगोंको चाहिये कि वे आजके अीसाअी कहे जानेवाले लोगोंकी तरफ़ न देखकर अीसाके जीवन, अुपदेश और बलिदानकी ओर देख और अुस अुपदेशके अनुसार चलनेवाले सन्तोंके जीवनका निरीक्षण करें।

यही दृष्टि दूसरे धर्मोंके बारेमें भी रखनी चाहिये।

९-६-'३८

बड़ा दिन

२५ दिसम्बर **१ दिन**

हिन्द देवीके दरबारमें हरअेक धर्म, पंथ और मतको स्थान है। हिन्दूधर्मका किसी भी धर्मके साथ विरोध नहीं। 'यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः' यह वृत्ति हिन्दूधर्मकी नस-नसमें मौजूद है।

त्यागी, ब्रह्मचारी, भगवद्‌भक्त, निष्ठावीर अीसामसीहकी जयन्ती भी हम ज़रूर मनायें। अपने ढंगसे मनायें। हिन्दूधर्ममें सद्‌गुरुकी अुपासनाका जो मार्ग है, 'यस्य देवे पराभक्तिः यथा देवे तथा गुरौ' की जो वृत्ति है, अुसीका अेक स्वरूप अीसाअी धर्म है। अिस दिन अीसाका गिरिप्रवचन पढ़ा जाय। अपने पड़ोसमें कोअी दीन, दुःखी या बीमार हो, तो अुसकी सेवा की जाय। जिसके पास कम हो, अुसे कुछ-न-कुछ दिया जाय। विद्यार्थियोंको अीसाके बलिदानकी कहानी पढ़कर सुनायी जाय। अीसाअी मित्रोंको अपने घर बुलाया जाय, और हम भी अुनके घर जायें।

मुहर्रम

शिया और सुन्नी पंथियोंमें क्या मतभेद है, अिस्लामी धर्म-पुरुषोंमें हसन और हुसैनका क्या स्थान है, अिस बारेमें हिन्दू लोग भले ही अुदासीन हों, लेकिन अेशियाके पश्चिमी प्रदेशोंमें, अरबस्तानकी पुण्यभूमिमें, धर्मके लिअे कितना बड़ा बलिदान किया गया और पैग़म्बरकी आज्ञा और अुपदेशोंके प्रति वफ़ादार रहनेकी ख़ातिर धर्मनिष्ठ मुसलमानोंने कैसे-कैसे त्याग किये, कितनी मुसीबतें अुठायीं, और सारे युद्धमें कितनी बहादुरीके साथ क्षात्रधर्मके सब अंगोंका पालन किया, आदि सब बातें हमारे लिअे बहुत महत्त्वकी हैं। मुहर्रमका त्योहार मुसलमान भाअियोंके लिअे श्राद्धका त्योहार है। अिस्लामके बड़े-से-बड़े शहीदोंकी याद दिलानेकी शक्ति अिस त्योहारमें है। हमारे मुसलमान भाअी मुहर्रमके दिनोंमें अेक पुरानी कहानीसे धर्मनिष्ठा प्राप्त करते हैं; और अुस हद तक भारतवर्षकी धर्म-निष्ठामें वृद्धि करते हैं। हिन्दुस्तान धर्म-भूमि है। यहाँ की हरअेक जाति जिस हद तक धर्मनिष्ठाकी आदत डालेगी, अुस हद तक अिस धर्मभूमिकी शक्ति अवश्य बढ़ेगी।

३-९-'२२

मुहर्रम

१ दिन

यह धर्मवीरोंका त्योहार है। भले हम ताज़ियेमें शरीक न हो सकें, फिर भी जो लोग धर्मके नाम पर प्राणार्पण करनेको तैयार हो जाते हैं, अुनके जीवन और मरणसे हमें ज़रूर प्रेरणा मिल सकती है। अिमाम हुसैनकी कहानी, ख़िलाफ़तका प्राचीन अितिहास और करबलाकी भीषण घटना, आदिके बारेमें हम विद्यार्थियोंको समझायें। विद्यार्थी शिया और सुन्नीके भेदको भी जानें।

अिस दिन हम अपने मुसलमान मित्रोंको विशेष रूपसे मिलनेके लिअे बुलायें। अगर अुस दिन अुनके यहाँ पशु-वध न हुआ हो, तो हम ख़ास तौर पर अुनसे मिलने जायें।

अेकताका त्योहार

[बक्र्-अीद]

अीश्वरभक्ति और कौटुम्बिक मोह, अिन दोमें परापूर्वसे युद्ध होता रहा है। हरअेक धर्ममें धर्मपालनके लिअे कौटुम्बिक मोहका नाश करनेवाले भक्तोंकी कअी मिसालें मौजूद हैं।

अेकादशी व्रतकी अेक कहानीमें कहा गया है कि राजा रुक्मांगदने अपनी चहेती रानीको अेक वरदान दिया था। राजा परम वैष्णव था और अेकादशीका व्रत रखता था। रानीने राजासे वरदान माँगा कि या तो व्रतभंग करके भोजन करो, या अपने प्यारे बेटेका वध करो। व्रतभंग करना राजाके लिअे असंभव था। पितृभक्त पुत्रने राजासे अनुरोध किया — 'अुचित ही होगा कि अपने वचनकी पूर्तिके लिअे आप मेरा वध करें। मैं मरनेके लिअे तैयार हूँ। " राजा शस्त्र अुठाता है, किन्तु भक्तवत्सल भगवान् विष्णु बीचमें ही अुसका हाथ पकड़ लेते हैं।

स्त्री-पुत्रको बेच डालनेवाले हरिश्चन्द्र और सीताका त्याग करनेवाले रामचन्द्र अिसी श्रेणीके मानव थे। मालिकके पुत्रकी रक्षा करनेके लिअे अपने बेटेका बलिदान करनेवाली पन्ना भी अिसी कोटिकी थी।

अिसी तरहके अेक भक्तराजकी यादगारमें मुसलमान लोगोंमें बक्र्-अीदका त्योहार प्रचलित हुआ है। यह त्योहार महम्मद पैग़म्बर साहबने शुरू नहीं किया। यह पैग़म्बरसे भी पहलेके धर्मसे लिया गया है; अिसलिअे बहुत प्राचीन है।

अीश्वरनिष्ठ अिब्राहीमके दो लड़के थे। अुनमें से छोटेका नाम अिस्माअिल था। पिताका अिस्माअिलके प्रति विशेष प्रेम देखकर शैतानने अीश्वरसे कहा — "देख ली अपने भक्तकी भक्ति! तू समझता है कि वह तेरा भक्त है; लेकिन वह तो अपने पुत्रका भक्त है।" सपनेमें

आकर अीश्वरने अिब्राहीमसे क़ुरबानी करनेको कहा। क़ुरबानीका क़ायदा यह है कि जो चीज़ हमें अत्यन्त प्रिय हो, जिसे हम सबसे ज़्यादा क़ीमती समझते हों, अुसकी क़ुरबानी की जानी चाहिये। दूसरे दिन अिब्राहीमने गाय या बकरेकी क़ुरबानी की। लेकिन रात अुसने फिर वही सपना देखा — 'क़ुरबानी कर!' अुसने पहलेसे कुछ बड़ी क़ुरबानी की; मगर वह मंजूर नहीं हुअी। फिर सपना दिखाअी पड़ा। अुसने नम्र होकर अीश्वरसे प्रार्थना की और पूछा — "हे मालिक, तू किसकी क़ुरबानी चाहता है?" अीश्वरने कहा — "तेरे प्यारे बेटे की।"

भक्तश्रेष्ठ अिब्राहीमके हृदय पर तनिक भी आघात न हुआ। अुसने अीश्वरको अपना सर्वस्व सर्मपित किया था। दूसरे दिन लड़केको लेकर भक्तराज क़ुरबानगाहकी ओर निकल पड़ा। शैताननने माँ और बेटेको बहकानेकी कोशिश की, लेकिन अुस प्रेमल कुटुम्बमें अीश्वरभक्ति अितनी दृढ़ थी कि तीनोंमें से अेक भी व्यक्ति मोहवश न हुआ। पिताने पुत्रकी गर्दन पर छुरी रखी ही थी कि अितनेमें परमेश्वरने अुसे रोका और अिस्माअिलके बदलेमें अेक पशुकी क़ुरबानी ही स्वीकार की। अिब्राहीम, अिस्माअिल और अिस्माअिलकी माता, तीनोंकी परीक्षा पूरी हुअी और शैतानकी फ़ज़ीहत हुअी।

अिस अिस्माअिलके वंशमें ही अिस्लामी धर्मके नबी महम्मद पैग़म्बरका जन्म हुआ था।

अैसी अिस अद्‌भुत घटनाकी यादमें अिस्लामी भाअी बक्र-अीदके दिन क़ुरबानी करते हैं। कौटुम्बिक मोहको त्यागकर शुद्ध अीश्वर-भक्ति करने और कर्त्तव्यके आगे मोहको नष्ट करनेका धार्मिक तत्त्व ही अिस त्योहारमें अभिप्रेत है। यह तत्त्व जितना अिस्लामको प्रिय है, अुतना ही दूसरे धर्मोंको भी प्रिय है। स्वार्थ, मोह, लोभ आदि सबका नाश करनेके लिअे अपनी और अपनी प्रिय वस्तुकी क़ुरबानी करना ही सच्ची धार्मिकता है। यही महान् यज्ञ है। अिसके स्मृति-चिह्नके रूपमें प्रत्येक धर्ममें बलिदानकी

प्रथा पुराने समयसे चली आयी है। लेकिन जैसे-जैसे हममें जीव-दया बढ़ती गयी, वैसे-वैसे हम अिस बलिदानसे अेक-अेक बाहरी चीजको कम करते गये। हमने नरमेध छोड़ा, अश्वमेध छोड़ा, मांसका भोग लगाना छोड़ा, और अन्तमें भैंस या बकरेकी हत्या करनेके बदले अुर्दके आटेका पशु बनाकर अुसकी बलि चढ़ाने लगे। आखिर कुम्हड़ा काट कर या नारियल फोड़कर ही हम संतोष मानने लगे। लेकिन बलिदानकी कल्पनाको हमने जाग्रत रखा है। मांसाहारी लोग पशुकी बलि चढ़ायें, तो अुसमें आश्चर्यजनक या अनुपयुक्त कुछ भी नहीं। हमने पशुहत्याको पाप समझकर मांसाहारका त्याग कर दिया, अिसलिअे पशुका बलिदान भी छोड़ दिया।

हिन्दुस्तानमें दया-धर्म है। वह जैनोंमें है और दूसरे हिन्दुओंमें भी है; और जिस तरह हिन्दुओंमें है, अुसी तरह मुसलमानोंमें भी है। यदि अिस दया-धर्म पर हम विश्वास रखें, तो अुसका असर सर्वव्यापी हुअे बिना न रहेगा। यह सोचना ग़लत है कि मुसलमान लोग हमेशा हिन्दुओंके दिलोंको ठेस पहुँचानेके लिअे ही गोहत्या किया करते हैं। अगर हम अिस विचारको त्याग दें, तो हमारे बिना कहे, बिना किसी तरहकी शर्त्त लगाये या क़ानून पास किये ही मुसलमान लोग यथा-समय गायकी हत्या करना छोड़ देंगे। मुस्लिम समाजमें ख़ानदानियत है। पड़ोसी-धर्मका पालन करनेके लिअे अुन्होंने आज तक कअी बार अपनी जान खतरेमें झोंक दी है, और कअी मरतबा सर्वस्वका त्याग करके वे बरबाद हुअे हैं। मुसलमान लोग हमारी ही तरह खेती-बाड़ी पर गुज़र-बसर करते हैं; हमारी तरह वे भी अपने ढोरोंसे प्यार करते हैं। गोरोंकी तरह अुन्होंने गोमांसको अपने नित्यके भोजनकी चीज़ नहीं बनाया है। गोरक्षाके बारेमें मुसलमान लोग हमारे शत्रु नहीं, मित्र बन सकते हैं। अगर हम अिस्लाम पर विश्वास करें, तो सिर्फ़ हिन्दुस्तानमें नहीं, बल्कि अिस्लामी दुनियामें भी अुनकी मददसे हम गोरक्षा कर सकेंगे।

बक़्र-ीदका त्योहार सिर्फ़ अिब्राहीम और अुसके स्त्री-पुत्रका स्मरण करनेका त्योहार नहीं है। आज तक धर्मके नाम पर जिन्होंने अपना सर्वस्व समर्पित किया है, अुन सभी धर्म-वीरोंका स्मरण आजके अिस पवित्र अवसर पर हम करें। अगर बक़्र-ीदके दिन हिन्दू भी अिस भक्तराजका स्मरण करें, तो अुनकी धार्मिकतामें वृद्धि हुअे बिना न रहेगी। और बक़्र-ीदका त्योहार हिन्दुस्तानकी राष्ट्रीय अेकताको नष्ट करनेके बजाय अुसे बढ़ायेगा। जिस तरह ज़िलहिज्ज मासकी दसवीं तारीख़ अिब्राहीमकी याद लेकर आती है, अुसी तरह वह अिस बातकी भी साक्षी रहेगी कि ख़िलाफ़त और स्वराज्यके लिअे हिन्दू और मुसलमान अेक हो गये थे। हम यह आशा करें कि अिब्राहीम जैसे पवित्र पुरुषके स्मृति-दिनको हम हिन्दू-मुसलमानोंके झगड़ेसे अपवित्र न बनायेंगे। अितनी सावधानी धार्मिक हिन्दू-मुसलमान ज़रूर बरतें। अेक-दूसरेके हृदयकी सच्चाअीको पहचान लेनेके बाद झगड़ोंका मूल कारण ही न रहेगा।

१-८-'२२

बक़्र-ीद

१ दिन

अिब्राहीमके प्राचीन धर्मका यह त्योहार है। बलिदानकी महिमाको समझानेके लिअे मुसलमानोंके नबी साहबने अिसका महत्त्व बढ़ाया है। पशुओंको क़त्ल करनेके शौक़के तौर पर यह त्योहार नहीं चलाया गया है। इस त्योहारका प्रयोजन यह है कि जो वस्तु हमें अत्यंत प्रिय हो, वह अीश्वरको समर्पित करनेकी तैयारी की जाय। छात्रोंको अिस दिनकी कहानी सुनाअी जाय।

स्वर्गीय लोकमान्य तिलक

[पहली अगस्त]

अीस्वी सन् १८५७ के असफल प्रयत्नके बाद अंग्रेज़ोंकी सत्ता अिस देशमें पूरी तरह जम गयी, क्योंकि आपसी फूटके कारण देशका शारीरिक बल छिन्न-भिन्न हो चुका था। शरीर-बलके अिस युद्धमें अनुशासन और अेकताके अभावमें देश हार गया; लेकिन भारतीय राष्ट्र और भारतीय संस्कृति अंग्रेज़ोंके चंगुलमें न फँसी है, न फँसनेवाली है। हिन्दुस्तानियोंको और अंग्रेज़ी सल्तनतको अिस बातका अखण्ड स्मरण और पूरा विश्वास दिलानेवाली जो चन्द हस्तियाँ अिस देशमें पैदा हुअीं, अुनमें से अेक विक्रमवीर अिस लोकको छोड़कर चल बसा है। सन् सत्तावनमें, जब स्वतंत्रताका महाप्रयत्न हुआ, बालगंगाधर अेक वर्षके बालक थे। जिस शिक्षाके बल पर अंग्रेज़ यहाँ विजय प्राप्त कर सके, अुसी शिक्षाको हासिल करके अंग्रेज़ोंके साथ लड़नेका विचार रखनेवाले व्यक्तियोंमें तिलक अग्रसर सिद्ध हुअे। सार्वजनिक जीवनमें अुनके साथी और गुरु श्री विष्णुशास्त्री चिपळूणकर अंग्रेज़ी साहित्यको 'शेरनीका दूध' कहते थे। अुस 'दूध' का पान करके तिलकने जन-हितके लिअे राज्यकर्त्ताओंके साथ लड़नेका निश्चय किया।

शुरूसे स्वदेश-सेवाके सपने देखनेवाले बालगंगाधरके जीवनमें अिस ब्योरेका कोअी खास महत्त्व नहीं कि अुन्होंने बीस सालकी अुम्रमें बी० अे० का अिम्तहान पास किया, और फिर अेल-अेल०बी० की परीक्षा दी, वगैरा-वगैरा। सन् सत्तावनके अनुभवसे यह तो निश्चित हो चुका था कि प्रजा-शरीर कमज़ोर हो चुका है। अुसे बलशाली बनानेका, जन-जाग्रतिका, अेकमात्र अुपाय राष्ट्रीय शिक्षा है, अिसका निर्णय तिलकने

बचपनमें ही चिपळूणकर, नामजोशी, आगरकर आदि मित्रोंके साथ कर लिया था। विष्णुशास्त्री स्वाभिमानकी मूर्ति थे। स्वधर्म, स्वदेश और स्वभाषाके बारेमें अुनके मनमें आदर और अभिमान था। अिसलिअे स्वाभिमानवश सरकारी नौकरीका मार्ग छोड़कर अुन्होंने जन-शिक्षाके कार्यमें अपना जीवन समर्पित कर दिया। देशमें तेजस्वी शिक्षाका प्रसार हो, लोगोंको निर्दोष साहित्य पढ़नेको मिले, देशहितके प्रश्नोंकी चर्चा हो, यही नहीं, बल्कि लोगोंकी अभिरुचि धर्मको हानि पहुँचानेवाली न बन जाय, अिस अुद्देश्यसे श्री विष्णुशास्त्री चिपळूणकरने 'न्यू अिंग्लिश स्कूल' नामका अेक स्कूल, 'नवीन किताबखाना' नामकी पुस्तकोंकी अेक दुकान, 'निबन्धमाला' नामकी अेक तेजस्वी मासिक पत्रिका, और पौराणिक तथा हिन्दू-जीवनसे सम्बन्ध रखनेवाली तसवीरें छापनेके लिअे 'चित्रशाला' नामके अेक कलागृहकी स्थापना की। आगरकर अुनके समान ही देशाभिमानी थे, लेकिन अुनका झुकाव अंग्रेज़ी साहित्यकी ओर विशेष होनेसे अुनमें समाज-सुधारकी वृत्ति अधिक तीव्र थी। अिन लोगोंने लोकशिक्षाका कार्य शुरू किया। तिलक 'न्यू अिंग्लिश स्कूल'में गणित पढ़ाते थे; बादमें अिस मित्रमंडलने अेक कॉलेजकी स्थापना की। पहले अुसका नाम 'महाराष्ट्र कॉलेज' रखनेका अिरादा था; लेकिन फिर अुसे 'फर्ग्युसन कॉलेज'का नाम दिया गया। अिसके साथ ही तिलक अेक लॉ क्लास भी चलाते थे। देशभक्तोंका यह युवक-मंडल सभी प्रश्नोंकी चर्चा किया करता था। लेकिन तिलककी अपनी वृत्ति यह थी कि राष्ट्रीय शिक्षाका काम हाथमें लेनेके बाद जहाँ तक हो सके, दूसरे कामोंमें नहीं पड़ना चाहिये। विद्यार्थी जीवनमें अुनकी अेकाग्र अध्ययनशीलता और अध्यापनके प्रति अुनकी रुचि व कलाको देखते हुअे अुनकी यह वृत्ति अुनके लिअे स्वाभाविक थी। यही कारण था कि डेक्कन अेज्युकेशन सोसायटीको 'जेस्युअिट' संस्थाके ढंग पर चलाने और अुसमें काम करनेवाले व्यक्तियों द्वारा अपना सर्वस्व संस्थाको समर्पित करनेके आदर्शके बारेमें वे आग्रही थे। आगरकरजी

अिस विचारसे सहमत न हो सके। मतभेद बढ़ता गया और तिलकने फर्ग्युसन कॉलेज छोड़ दिया। जन्मसिद्ध अध्यापकके जीवनमें परिवर्तन हुआ, और अेक पत्रकारकी हैसियतसे जन-शिक्षाका व्यापक कार्य हाथमें लेकर वे लोकमान्य बने।

तिलकने मराठीमें 'केसरी' नामका पत्र निकालना शुरू किया, और वे अंग्रेज़ीमें 'मराठा' भी चलाने लगे। जब 'केसरी' के साथ मतभेद अुत्पन्न हुआ, तो आगरकरने 'सुधारक' पत्र शुरू किया। अिन दो पत्रोंने समाज-सुधारके बारेमें और हिन्दू-समाज-व्यवस्थामें सरकारी हस्तक्षेपकी मर्यादाके बारेमें कअी वर्षों तक चर्चा करके महाराष्ट्रको भली या बुरी, किन्तु बड़ी-से-बड़ी शिक्षा प्रदान की। 'केसरी' में फूट पड़नेसे पहले ही अिस युवक-मंडल पर अेक भारी आफत आ पड़ी।

जब शिवाजी महाराजके अेक वंशज, कोल्हापुरके महाराजको, पागल ठहराकर मद्रास भेजा गया, तो अिन देशाभिमानी नवयुवकोंका पुण्यप्रकोप भड़क अुठा। अुन्होंने अिस घटनाकी गहराअीमें अुतरकर 'केसरी' में लेख लिखे, जिसके परिणामस्वरूप 'केसरी' पर मुक़दमा चलाया गया। अिस मुक़दमेके दरमियान विष्णुशास्त्री बत्तीस सालकी छोटी अुम्रमें चल बसे, और आगरकर तथा तिलकको अेक सौ अेक दिनकी सरकारकी मेहमानगिरी स्वीकार करनी पड़ी। जनमत तैयार करके सरकार तक अुसकी आवाज़ पहुँचानेके अिरादेसे महामति रानडे जैसे व्यक्तियोंने पूनामें 'सार्वजनिक सभा' की स्थापना की थी। 'सार्वजनिक सभा' कांग्रेसकी जननी समझी जाती है। अिस सभामें भी अिस प्रश्न पर मतभेद पैदा हुआ कि सरकारके साथ किस हद तक सहयोग किया जाय; और जिन्हें तिलकके विचार पसन्द न थे, अुन्होंने 'डेक्कन सभा' की नींव डाली। अिस तरह पूनावालोंमें परस्पर तीव्र मतभेद रहने लगा और अुसके कारण पूनाका राजनीतिक वायुमंडल गरम रहने लगा। आज भी राजनीतिक चर्चामें और अंग्रेज़ोंकी नीतिके प्रति सजग रहनेमें सारे देशमें पूना शहर सबसे आगे गिना जाता है।

जेलसे छूटकर आनेके बाद तिलकने अपना सारा ध्यान 'केसरी' पर केंद्रित किया। मराठी भाषाको गढ़कर अुसे समृद्ध बनाने, वर्तमान समयके सभी विचारों और राजनीतिक सिद्धान्तोंको मराठी भाषा द्वारा जनसमुदायको समझाने, जनताके भावोंकी सभी छटाओंको अुसमें व्यक्त करने और भाषामें राष्ट्रीय जाग्रतिके प्राण अुत्पन्न करनेके विविध अुद्देश्यको सामने रखकर अुन्होंने प्रति सप्ताह लिखना शुरू किया। अगर कोअी कहे कि 'केसरी'ने राजनीतिक महाराष्ट्रका निर्माण किया, तो वह अयथार्थ न होगा। लोकमान्यके 'केसरी' की भाषा आडम्बर-रहित, सीधी किन्तु प्रौढ़ होती थी। अुसमें प्रकाशित होनेवाला साहित्य विषय पर पूर्ण अधिकार बतानेवाला, दलीलोंसे युक्त और जोशीला होता था। जब 'केसरी' किसी प्रतिपक्षीके खिलाफ़ मैदानमें अुतरता, तो अुसकी भाषाका आवेश कमाल तक पहुँच जाता। जोशके साथ कटुता या जहर न रहता हो सो बात नहीं; लेकिन अुसमें भी गंभीरताका पालन बहुत हद तक किया जाता था। प्रतिपक्षीको हरानेके लिअे 'केसरी' जिस ज़हरका प्रयोग करता था, वह बहुतसे लोगोंकी सौम्य अभिरुचिको असहनीय-सा लगता था। अिसलिअे बहुतोंने अिस आशयकी आलोचना भी की थी कि तिलककी भाषामें विनय नहीं होता, आदर नहीं होता। अिस आक्षेपका जवाब तिलक अिस तरह दिया करते — "लड़वैया आदमी अिससे भिन्न कुछ कर ही नहीं सकता। अगर मुझे निवृत्तिमें ही समय बिताना होता, तो मैं भी सब तरहकी अुदारता अवश्य दिखलाता; लेकिन जिसे काम करना है, अुसे तो मौक़ा पड़ने पर प्रखर भी होना ही चाहिये।" देशी वृत्त-पत्रोंमें 'केसरी' के समान व्यवस्थित, प्रतिष्ठित और लोकप्रिय वृत्तपत्र हिन्दुस्तानमें शायद ही कोअी हो। महाराष्ट्रका सार्वजनिक जीवन, हिन्दुस्तानकी जाग्रति, अेशियाकी भवितव्यता, यूरोपकी राजनीति, और दुनियाकी प्रगतिके बारेमें 'केसरी' में हमेशा विद्वत्तापूर्ण और जानकारीसे भरे हुअे प्रौढ़ लेख छपा करते थे। 'केसरी' अत्यन्त

नियमित पत्र है। अुसका सब विधान और प्रबन्ध स्वयं तिलकने ही किया था। कहा जाता है कि दुनियामें जहाँ-जहाँ मराठी भाषा बोली या पढ़ी जाती है, वहाँ-वहाँ 'केसरी' पहुँच जाता है।

लेकिन अेक 'केसरी' ही तिलक महाराजका कार्यक्षेत्र न था। अुन्हें अेक तरफ़ सरकारके खिलाफ़ और दूसरी तरफ़ समाज-सुधारकोंके खिलाफ़ लड़ना पड़ता था। वास्तवमें तिलक पुराणप्रिय (दक़ियानूसी) नहीं थे; कअी सामाजिक सुधार अुन्हें बहुत जरूरी मालूम होते थे। फिर भी अुन्होंने बहुतसे सुधारोंका विरोध किया, जिससे ग़लत-फ़हमियाँ पैदा हुअीं। लोग अुन्हें कुधारक (सुधारोंके दुश्मन) मानने लगे। तिलककी धारणा यह थी कि "समाज-सुधारोंका काम तो हमेशाका काम है; अिसलिअे वह आहिस्ता-आहिस्ता होना चाहिये; खासकर जब विदेशी राज्यके नीचे दबकर जनता आत्म-विश्वास खो बैठी हो और जब विधर्मी पादरियों द्वारा रात-दिन हमारी संस्कृति पर प्रहार हो रहे हों, तब समाजको स्वाभिमानशून्य और हतोत्साह बनाना बड़ी ग़लती है। फिर अगर हम समाज-सुधारोंके पीछे पड़ गये, तो शिक्षित और अशिक्षितके बीच अेक खाअी-सी पैदा हो जायगी; अुनमें फूट पड़ेगी और राजनीतिक मामलोंमें हम अधिक कमज़ोर बन जायँगे। अिसलिअे समाज पर हमला करके नहीं, बल्कि धीरे-धीरे समाजको अपने वशमें करके ही यथासंभव सुधार किये जायँ। जब सरकारकी शक्तिसे चौंधियाकर हम अुसके सामने नरम बन जाते हैं, तो फिर श्रद्धा और आदरके साथ समाजके सामने भी हम नम्र क्यों न बनें?" अपने अैसे विचारोंके कारण, जहाँ तक बन पाता, वे 'केसरी'में समाज-सुधारके सवालको अुठाते ही न थे। अितनेमें 'सम्मति वयका बिल'—Age of consent bill—पेश हुआ। यह नहीं कि तिलकको अिस बिलका तत्त्व मान्य न था; फिर भी अुन्होंने अुसका घोर विरोध किया। अुनका कहना था कि "अंग्रेज़ लोग पराये हैं, वे जान-बूझकर हमारी सामाजिक बातोंमें

दखल नहीं देते, अिसलिअे अुनकी अुदासीनताके कारण ही क्यों न हो, धार्मिक और सामाजिक विषयोंमें हमें जो स्वराज्य मिला है, अुसे हम अपने ही हाथों क्यों खोयें? अगर हम खुद ही सरकारको अपने घरके अन्दर प्रवेश करने देंगे, तो हमारा स्वाभिमान और स्वातंत्र्य कम हो जायगा और हम अधिक दुर्बल और पराधीन बन जायँगे।" तिलक सभी पुराने रिवाजोंका पालन नहीं करते थे। पंक्ति-भेदके बारेमें आज जिस स्वतंत्रताका अुपयोग किया जाता है, वे भी अुसका वैसा ही अुपयोग करते थे। अुनका जीवन अत्यन्त सादा और निष्पाप था, और फिर भी अुसमें धार्मिकताका आडम्बर बिलकुल न था। समाज और धर्मके अधिकारको स्वीकार करनेके विचारसे अुन्होंने विलायतसे लौटने पर प्रायश्चित्त भी किया था, हालाँकि विलायतमें अुन्होंने खाने-पीनेमें संपूर्ण शुद्धिका पालन किया था। अुन्होंने राजनीतिक जलसोंमें मुसलमानों और अीसाअियोंके साथ बैठ कर भोजन किया था। अुन्होंने यह घोषित कर दिया था कि शास्त्रोंमें कहीं यह आज्ञा नहीं मिलती कि अन्त्यजोंको अस्पृश्य समझा जाय। अुनके कअी घनिष्ठ मित्र सामाजिक सुधारोंमें अगुआ थे।

सन् १८९६में बम्बअीमें ताअून (प्लेग) का प्रकोप हुआ, और पूनामें भी अुसने प्रवेश किया। यह अेक अनपेक्षित और बिलकुल नअी आपत्ति थी। सब लोग अिससे घबड़ा अुठे। सरकारको भी यह न सूझा कि प्लेगकी रोकके लिअे क्या अिलाज किये जायँ। अिसलिअे 'सेग्रीगेशन' और 'क्वारेण्टाअिन' (अलहदा रखना) जैसे कठोर अुपाय बरते गये, और अुनका ठीक-ठीक अमल करवानेके लिअे भावना और सभ्यतासे रहित गोरे सिपाहियोंकी नियुक्ति की गयी। प्लेगकी तकलीफ़की बनिस्बत अिन सोल्जरोंकी तलाशीका आतंक लोगोंके लिअे अधिक असह्य हो अुठा और सर्वत्र हाहाकार मच गया। जिसे जिधर रास्ता मिला, वह अुधर भाग निकला। लेकिन तिलकने अैसे वक़्त पूना नहीं छोड़ा। वे शहरमें रहकर अेक ओर लोगोंकी मदद करने लगे, और

दूसरी ओर अुपायके बदले अपाय करनेवाली विवेकशून्य सरकारी सख़्तीके कारण अुत्पन्न होनेवाले जन-क्षोभको 'केसरी' द्वारा व्यक्त करने लगे। तिलकने तो क्षोभ व्यक्त भर किया था, मगर सरकारको लगा कि अुन्होंने अुसे पैदा किया है। अिस लोकक्षोभकी परिणति प्लेग-अफ़सर रैण्ड साहबकी हत्यामें हुअी। सरकारने अपनी प्लेग-नीतिमें परिवर्तन तो ज़रूर किया, लेकिन अुग्र स्वरूप धारण करके लोगोंको दबानेमें भी कोअी कसर न रखी। पूनाके सरदार नातुबन्धुओंको सरकारने नज़रबन्द किया, और 'केसरी' पर राजद्रोहका मुक़दमा दायर किया। कुछ मित्रोंने तिलकको माफ़ी माँगनेकी सलाह दी, लेकिन अुन्होंने कहा — "जो काम मैंने सच्ची नीयतसे किया है, अुसके लिअे मैं माफ़ी क्यों माँगूं? जिस तरह मल्लाहका काम करनेवाला किसी दिन समुद्रमें डूब भी सकता है, अुसी तरह देशसेवा करनेवालेके लिअे जेल-यात्राकी नौबत भी आ सकती है। ये तो हमारे व्यवसायके ख़तरे हैं। माफ़ी माँगकर मैं देशकी कुछ भी सेवा न कर सकूँगा। दूसरे, यदि अुसके कारण मेरा सत्त्व नष्ट हो गया, तो फिर मुझमें रह ही क्या जायगा?" सरकारने अुन्हें डेढ़ सालकी सज़ा दी; यही नहीं, बल्कि असल क़ानूनमें भी तब्दीली करके राजद्रोहवाली धाराको अधिक कड़ा बना दिया। कहा जाता है कि जब तिलक जेल गये, तो पहले ही दिन अुन्हें अितना सख़्त काम दिया गया कि चक्की पीसते-पीसते वे बेहोश हो गये। लेकिन होशमें आते ही वे फिर काममें जुट गये। अुन्होंने छुट्टी नहीं माँगी। छुट्टी माँगना अुन्हें बहुत अपमानजनक मालूम होता था। जब अेक सालके बाद वे जेलसे छूटे, तो अुनके शरीरका वज़न बहुत ही घट गया था; किन्तु जनतामें अुनका वज़न अुतना ही बढ़ गया था। वापस आने पर अुन्होंने फिर 'केसरी'को हाथमें लिया और 'पुनश्च हरिः ॐ' कहकर लिखने लगे।

तिलकके कारावासके दिनोंमें पश्चिमके संस्कृत-पंडित मैक्समुलरके हाथमें अुनकी लिखी 'ओरायन्' अथवा 'मृगशिरस्' नामकी किताब

पड़ी। 'ओरायन्'में ज्योतिषशास्त्रकी दृष्टिसे वैदिक काल-निर्णयकी चर्चा थी। अिस किताबको देखकर मैक्समुलर दंग रह गये, मुग्ध हुअे, और अुन्हें लगा कि अिस तरहकी अगाध विद्वत्ता रखनेवाले विद्वान्‌के पास ऋग्वेदका अपना अनुवाद सम्मतिके लिअे भेजना चाहिये। लेकिन अुन्हें पता चला कि ग्रन्थकर्त्ता तो जेलमें है। अिस-लिअे अुन्होंने सरकारकी मारफत पहले यह प्रबन्ध करवाया कि तिलकको जेलमें किताबें दी जायँ, पढ़नेके लिअे समय दिया जाय और बत्ती दी जाय। फिर अुनकी मध्यस्थताके कारण सरकारको नियत अवधिसे छः महीने पहले ही तिलकको छोड़ देना पड़ा। जेलमें वेदोंका निरीक्षण करते हुअे अुन्हें सूझा कि आर्योंका मूल निवासस्थान अुत्तर ध्रुवकी ओर होना चाहिये। अुनका यह खयाल हुआ कि वेदोंमें अिस आशयका अुल्लेख मिलता है कि आर्य लोग सुमेरुके आसपास रहते थे। जेलसे छूटनेके बाद, जब ताअी महाराजके मुक़दमे-जैसा सिर खानेवाला मुक़दमा चल रहा था, अुसी अरसेमें 'आर्क्टिक होम अिन दि वेदाज़' यानी 'वेदकालमें आर्योंका सुमेरुकी ओरका निवासस्थान' नामक विद्वत्ता और शोध-खोजसे भरा हुआ ग्रंथ अुन्होंने प्रकाशित किया। अिस ग्रंथके कारण अुनकी कीर्ति यूरोपके विद्वानोंकी मंडलीमें फैल गयी। 'आर्क्टिक होम' ग्रंथ लिखते समय अुन्होंने पारसियोंके धर्मग्रंथोंका अध्ययन किया। फिर अीरान, मेसोपोटेमिया, खाल्डिया, सीरिया, असीरिया आदि देशोंके प्राचीन अितिहास और अुनकी संस्कृतिकी ओर अुनका ध्यान गया। और अुन्होंने अपने कअी विद्वन्मान्य निबन्धोंमें यह दिखा दिया कि वैदिक संस्कृतिके साथ अिनका कितना साम्य है। कअी लोग अुनकी विद्वत्ता देखकर अुनसे अनुरोध करते — "आप अिन राजनीतिक झमेलोंको छोड़ दीजिये, और अपनी विद्वत्तासे दुनियाकी जो बड़ी-से-बड़ी सेवा आप कर सकते हैं, कीजिये!" अिसके अुत्तरमें वे कहते — "मुझे अिस तरह स्वच्छन्द (मनमानी) नहीं करना है। देशके लिअे लड़ना ही मेरा कर्तव्य है। विद्वत्ताका काम करनेवाले पंडित तो

हिन्दुस्तानमें कअी पैदा होंगे; आर्यबुद्धि बंध्या नहीं हुअी है।" अुनके अेक मित्रने अुनसे पूछा — "स्वराज्य मिलने पर आप किस विभागके मंत्री बनेंगे?" अुन्होंने कहा — "मुझे राजनीतिमें कोअी दिलचस्पी नहीं। स्वराज्य मिलने पर मैं तो गणितका अध्यापक बन जाअूँगा, और निश्चिन्तताके साथ विद्यानन्दका सुख लूटता रहूँगा।"

जब तक अपने देशबन्धुओंको भरपेट खानेको नहीं मिलता, तब तक विद्यानन्द-जैसा सात्त्विक आनन्द भी अुन्हें हराम मालूम होता था। वे हमेशा कहते — "स्वराज्यका आन्दोलन तो रोटीका आन्दोलन है।" अिसलिअे जब सरकारने खेतीके लगानके क़ानूनमें परिवर्तन करके अनादिकालसे चलते आये ज़मीनके वंशपरंपरागत स्वामित्वका अधिकार भूमिके बालकोंसे छीन लिया, सात समुद्र पारसे आयी हुअी सरकारको हिन्दुस्तानकी भूमिका स्वामी करार दे दिया, और हिन्दुस्तानी किसानको सिर्फ़ अपना भाड़ेका नौकर बना दिया, तो तिलकने सरकारको भूमिकर न देनेका आन्दोलन चलानेका विचार किया था। लेकिन अुस वक़्त जनता अुतनी तैयार नहीं हुअी थी।

अिसी अरसेमें बम्बअी और पूनामें हिन्दू-मुसलमानोंमें किसी कारणसे झगड़ा हुआ और बहुत मार-पीट हुअी। पूनाके हिन्दू बरसोंसे मुहर्रममें शरीक होते थे। अब अुन्होंने शरीक होना बन्द कर दिया। तिलकने स्वीकार किया था कि अिस दंगेमें दोनोंकी ग़लती थी; मगर अुन्होंने यह भी स्पष्ट कर दिया कि ज़्यादा क़सूर मुसलमानोंका ही था। अिसलिअे कुछ मुसलमानोंके दिलमें यह वहम पैदा हुआ कि तिलक मुस्लिम जमातके ख़िलाफ़ हैं। लेकिन चूँकि वह ग़लत था, अिसलिअे कुछ समयके बाद निकल भी गया। ख़िलाफ़त डेप्युटेशनवाले सैयद हुसैन साहबने ज़ाहिरा तौर यह बात स्वीकार की है कि 'हमारी यह धारणा ग़लत थी कि तिलक मुसलमानोंके ख़िलाफ़ हैं।' क्योंकि लखनअूकी कांग्रेसमें हिन्दुओं और मुसलमानोंके बीच कोअी विरोध और संशय न रखनेके लिअे जो अधिकार-विभाजन किया गया

था, अुसमें मुसलमान जो कुछ माँगते थे, वह सब अुन्हें दे देनेकी सलाह स्वयं तिलकने दूसरे नेताओंको दी थी। अुस समयका अुनका अेक मशहूर वाक्य यह है — "पहले देशका विचार होना चाहिये। मैं हिन्दू हूँ या मुसलमान, यह भेद देशके हितका विचार करते समय मनमें नहीं आना चाहिये।" यह देखकर कि पूनाके हिन्दू-मुसलमानोंमें जो मनमुटाव पैदा हुआ, वह धर्मकी संकुचित कल्पना रखनेके कारण हुआ था, और अिस ख़यालसे कि हिन्दुओंको भी मुहर्रमके बदले अुत्सव मनानेका कोअी साधन मिल जाय, अुन्होंने गणेश-अुत्सव शुरू किया। गणेश-अुत्सवमें स्वयंसेवकों और दूसरे युवकोंके दल भजन गाते हैं; विद्वान् नेता धार्मिक, सामाजिक और कभी-कभी राजनीतिक विषयकी चर्चा करते हैं। अिस तरह लोगोंको समयानुकूल शिक्षा मिलती है।

जिस तरह गणेश-अुत्सवसे धार्मिक जाग्रति हुअी, अुसी तरह गणेश-अुत्सवसे पहले ही देशाभिमान और स्वाभिमानको जाग्रत करनेके लिअे तिलकने जो शिवाजी-अुत्सव शुरू किया था, अुससे भी बहुत-कुछ जन-जाग्रति हुअी। अिन दोनों आन्दोलनोंके कारण महाराष्ट्रमें स्वदेशीका प्रचार बहुत हुआ, और शिक्षित तथा अशिक्षितके बीचका भेद कम होता गया। शिवाजी-अुत्सवके कारण ही पुराने अितिहासकी जाँच-पड़ताल करनेकी वृत्ति बढ़ी, और कुछ चुने हुअे विद्वानोंका 'भारत-अितिहास-संशोधक-मंडल' बना।

सन् १९०४ में युनिवर्सिटी अेक्ट पास हुआ, और सरकारने शिक्षा-विभागको — अुच्च शिक्षाको भी — अपने अंकुशके नीचे और भी दबा दिया। सन् १९०५ में बंग-भंग हुआ। बंगालियोंने अर्जियों, सभाओं आदिके रूपमें जो कुछ किया जा सकता था, सो सब किया; और अन्तमें स्वदेशी तथा बहिष्कारका महाराष्ट्रीय आन्दोलन शुरू किया। स्वाभाविक रूपसे बंगाली लोगोंको पहली सहानुभूति महाराष्ट्रकी तरफ़से मिली। सरकार तो यही समझती है कि अत्याचारका अुपदेश भी बंगालको पूनाकी ओरसे ही मिला है। यह राष्ट्रीय मूलमंत्र सब जगह फैल

गया कि स्वदेशी, बहिष्कार और राष्ट्रीय शिक्षा, अिन तीन अुपायोंसे हमें स्वराज्य हासिल करना है। तिलकने अिसे 'स्वराज्यकी चतुःसूत्री' कहा है।

बंगालके राष्ट्रीय नेता स्वराज्यका अर्थ 'पूर्ण स्वाधीनता' और बहिष्कारका अर्थ 'अंग्रेज़ी राष्ट्रके साथ संपूर्ण असहयोग' करते थे। अिस पर बहुतसे नरम नेताओंको यह लगा कि कांग्रेसके लिअे अेक बंधन (creed) रखना चाहिये। तिलकका खयाल था कि अैसा बन्धन अेक तरहसे सब लोग स्वेच्छासे मानते ही आये हैं, अिसलिअे सौगन्धके साथ हस्ताक्षर करके अुसे स्वीकार करनेमें अेक प्रकारकी मानहानि होगी और देशके सभी पक्षोंको कांग्रेसमें आने देनेसे असुविधा होगी। अिसलिअे अुन्होंने अुसे पसन्द न किया। सूरतमें कांग्रेसके अन्दर फूट पड़ गयी।

बंग-भंगके कारण स्वावलम्बनका मार्ग अख्तियार करनेवाली जनता परसे अेक तरफ़ कांग्रेसका अंकुश दूर हुआ और अुसी वक़्त दूसरी तरफ़ सरकारने दंडनीतिका अवलम्बन किया। अिसके फलस्वरूप बंगालमें यूरोपके आसुरी हथियारका, अर्थात् बमका जन्म हुआ। 'देशका दुर्दैव' शीर्षक अपने अेक अग्रलेखमें तिलकने अिसके लिअे सरकारकी नीतिको ही ज़िम्मेदार करार दिया। महाराष्ट्रमें बंगालके प्रति सम्पूर्ण सहानुभूति थी, लेकिन तिलककी दूरन्देश नीतिके कारण अत्याचारकी प्रवृत्ति पर रोक लगी हुअी थी। अिसी अरसेमें स्वदेशी और बहिष्कारके आन्दोलनके साथ-साथ शराबबन्दीके आन्दोलनको ज़ोर देकर अुन्होंने जनताके जीवनको विशुद्ध बनानेका प्रयत्न किया। सरकारको यह भी अच्छा न लगा। शराबकी दुकानोंके सामने खड़े होकर लोगोंको समझानेवाले समाज-सेवकोंको सरकारने दबा दिया। तिलकने बम्बअीके मिल-मज़दूरोंमें भी शराबबन्दीका आन्दोलन चलाया, जिससे बहुत ही जन-जाग्रति हुअी। लोकमान्य मिल-मज़दूरोंसे कहते — "आप लोग अज्ञान और व्यसनोंमें किस लिअे सड़ रहे हैं? अगर आप अपने जीवनमें

सुधार कर लेंगे, तो समझिये कि बम्बअी आपकी ही होगी, क्योंकि यहाँ आपकी तादाद तीन लाख है। आप अपने जीवनमें सुधार कीजिये, अपने बीच अेकता स्थापित कीजिये, और वर्तमान स्थितिको समझ लीजिये।" यह शुद्ध सात्त्विक आन्दोलन भी सरकारको भारी पड़ गया। तिलकके कारण महाराष्ट्रमें अत्याचार या आतंकवादके आगमनमें बाधा पड़ी थी; लेकिन सरकारने अिसे भी अुलटा ही महसूस किया। देशके और सरकारके दुर्भाग्यसे तिलकके 'देशका दुर्दैव' नामक लेखमें सरकारको राजद्रोह दिखाअी दिया। "जिस देशसे प्रेम करनेका आप दावा करते हैं, अुस देशसे आपको छः सालके लिअे बाहर रखनेमें ही देशका भला है", यह कहकर हाअीकोर्टने तिलकको देश-निकालेकी सज़ा दी। "व्यक्तियों और राष्ट्रोंका भाग्य अिस न्याय-मन्दिरकी अपेक्षा अधिक अुच्च व्यक्तियों और शक्तियोंके हाथमें रहता है; और शायद जगन्नियन्ताकी यह अिच्छा है कि जिस सिद्धान्तके लिअे मैं लड़ रहा हूँ, अुसका अुत्कर्ष मेरे मुक्त रहनेकी अपेक्षा मेरे कारावाससे ही हो"— अिन शब्दोंके साथ अुस महात्माने अुसे दी गअी सज़ा स्वीकार की। लोकमान्यकी अिस तपश्चर्यासे स्वराज्यका मंत्र प्रत्येक भारतवासीके हृदयमें प्रस्फुरित होने लगा। छः सालकी अिस तपश्चर्याका दूसरा फल 'गीता-रहस्य' जैसे साहित्य-रत्नके रूपमें प्रकट हुआ।

तिलकको सज़ा देकर सरकार जो परिणाम पैदा करना चाहती थी, अुससे अुलटा ही परिणाम हुआ। तिलककी प्रेरणा और अंकुशके दूर होते ही महाराष्ट्रके युवक निरंकुश बन गये, और जो अत्याचार तिलकके रहनेसे रुका हुआ था, और तिलकको सज़ा करके जिसे सरकार रोकना चाहती थी वही अत्याचार महाराष्ट्रमें फूट निकला। नासिकमें षड्यंत्र हुआ। कलेक्टर जैक्सनकी हत्या हुअी, और अनर्थपरंपराका प्रवाह बहने लगा।

क़रीब-क़रीब पूरे छः साल बाद अुम्रके लिहाज़से बूढ़े, क्षीणकाय किन्तु अुत्साहमें नवयुवक लोकमान्य कर्मयोगका सन्देश लेकर वापस आये। यह सन्देश हिन्दुस्तानकी लगभग सभी भाषाओंमें फैल गया। कर्मयोगके आचार्यने 'स्वराज्य-संघ' की स्थापना की, और देशमें स्वराज्यका आन्दोलन शुरू हुआ। राष्ट्र-मदसे अन्धे बने यूरोपियन राष्ट्रोंमें युद्ध शुरू हुआ, और साम्राज्य-सरकारको डर लगा कि अैन मौक़े पर हिन्दुस्तान वफ़ादार रहेगा या नहीं। अुस वक़्त तिलकने यह घोषणा करके कि 'अिस समय ब्रिटिश-साम्राज्यके साथ रहनेमें हिन्दुस्तानका हित है', ब्रिटिश साम्राज्यकी बहुत भारी सेवा की। अितने पर भी शक्की सरकारको तिलकके भाषणमें राजद्रोह ही दिखाअी दिया। अेक बार फिर सरकारने तिलक पर नोटिस तामील किया, लेकिन अिस बार हाअीकोर्टको तिलकके निर्दोष होनेमें विश्वास हुआ, और वे बरी कर दिये गये।

अिसके बादका अितिहास बिलकुल ताज़ा है। फ़ौजके लिअे रंगरूट भरती करनेके अुनके प्रयत्न, पंजाब और दिल्लीकी तरफ़ न जानेकी अुन पर लगायी गअी पाबन्दी, माण्टेग्यूसे मुलाक़ात, विलायत जानेकी मुमानियत — लेकिन बादमें मिली अिजाज़त — विलायतमें किया हुआ काम, आदि बातें तो अभी पिछले साल जितनी ताज़ा हैं। तिलककी सारी ज़िन्दगी लड़नेमें ही बीती। जैसा कि अेक पत्रकारने कहा है — 'मृत्युने ही पहली बार अुन्हें शान्ति प्रदान की।' अुनका निजी जीवन सादा और शुद्ध था। अुनकी राजनीतिक प्रवृत्ति जोशीली और लड़ाकू थी। लड़ाअीके मैदानमें अुतरनेके बाद वे किसीसे दयाकी याचना न करते थे, न स्वयं ही किसी पर दया करते थे। फिर भी अुनके मनमें द्वेष नहीं टिकता था। अुन्होंने आगरकरजीका कसकर विरोध किया; लेकिन अुनके अन्त समयमें अुनकी सेवा करनेके लिअे वे स्वयं अुपस्थित रहे। वे प्रहार तो अपने विद्यागुरु भाण्डारकरजी पर भी करते थे, लेकिन साथ ही अुनकी क़द्र करके अुनके प्रति

शिष्यभावका पालन भी करते थे। गोखलेजीके साथ अुनकी कभी न बनी, लेकिन सन् १९०४–५ में गोखलेजीने विलायतमें हिन्दुस्तानकी जो सेवा की, अुसकी क़द्र करनेके लिअे पूना शहरकी तरफ़से अुनका सार्वजनिक अभिनन्दन करनेमें स्वयं तिलक ही अग्रसर थे। आज यह देखनेका अवसर नहीं कि तिलकके राजनीतिक मत क्या थे। भारतीय जगत अुनके मतोंसे भलीभाँति परिचित है। अगर कोअी अुन्हें न जानता हो, तो वह तिलकका दोष नहीं। अपने मतका प्रचार करनेकी तिलककी शक्ति और कला सचमुच अलौकिक थी। दुनियाको अुनकी विद्वत्ताका साक्षात्कार हुआ है। लेकिन भारतीय जनताके मोक्षके लिअे अुन्होंने अपनी सारी विद्वत्ता जन्मभूमिके चरणोंमें समर्पित कर दी थी। 'स्वराज्य' अुनके जीवनका आधार-स्तंभ था। वे बुद्धिसे ब्राह्मण और वृत्तिसे क्षत्रिय थे। वे भारतीय जाग्रतिके जनक, आधुनिक महाराष्ट्रके पंचप्राण, राष्ट्रीय पक्षके अध्वर्यु, स्वराज्य-मंत्रके ऋषि, नौकरशाहीके शत्रु और हिन्ददेवीके अनन्य अुपासक थे। जब हम हिन्दुस्तानी लोग अुनके जीवनसे स्वदेश-सेवाकी दीक्षा लेकर स्वराज्यके अधिकारी बनेंगे, तभी अुनकी पराक्रमी आत्माको शान्ति मिलेगी, और तभी अुनका जीवन सफल होगा। स्वप्रयत्नसे मनुष्य जितना जीवन-साफल्य प्राप्त कर सकता है, अुतना अुन्होंने पूर्ण रूपसे प्राप्त कर लिया था।

८–८–'२०

तिलक-पुण्यतिथि

पहली अगस्त **१ दिन**

अिस दिन विद्यार्थियोंको तिलककी जीवनी सुनाअी जाय। अुन्हें यह भी समझाया जाय कि जनताको नौकरशाहीके स्वरूपका ज्ञान करानेमें अपना सारा जीवन लगाकर अुन्होंने राष्ट्रीय आचार्यका पद प्राप्त कर लिया था। 'स्वराज्य लोगोंका जन्मसिद्ध हक़ है, और

अुसे प्राप्त करनेके लिअे प्रत्येकको ओीश्वर-निष्ठापूर्वक निष्काम कर्म करना चाहिये', अिस तिलक-गीता-रहस्य पर विशेष ज़ोर दिया जाय। 'गीता-रहस्य' की अच्छी-अच्छी कण्डिकायें (पैराग्राफ) पढ़ी जायँ।

आजके दिन कअी विद्यार्थी लोकमान्यके स्मरणके साथ यह प्रतिज्ञा ले सकते हैं कि जब तक स्वराज्य नहीं मिलेगा, तब तक वे सरकारी नौकरी नहीं करेंगे।

त्यागी देशबन्धु

१६ जून]

कालिदासका अेक वचन है कि "देवोंको अपना अमृत पिलाकर क्षीण बना हुआ कृष्णपक्षका चन्द्रमा शुक्लपक्षके चन्द्रकी अपेक्षा अधिक सुन्दर दिखाओी देता है।" देशबन्धु चित्तरंजनदास अिस सुन्दरता तक पहुँचे थे। विद्यार्थी जीवन पूरा करके जब अुन्होंने अपना व्यवसाय शुरू किया, तब अुन पर अुनके पिताजीके समयका बहुत ज़्यादा कर्ज़ था। अथक परिश्रम करके अुन्होंने वह सारा कर्ज़ चुका दिया। अिस कर्ज़के कारण अुन्हें बहुत तकलीफ़ें अुठानी पड़ी थीं। सार्वजनिक कामोंमें वे शरीक न हो पाते थे। ऋणमुक्त होनेके बाद शुक्लपक्षके चन्द्रकी तरह अुनकी समृद्धि बढ़ी। हमेशा दान करते रहने पर भी अुनकी आमदनी तो बढ़ती ही गअी। जिस दिन अुन्होंने अपना आलीशान मकान बनवाकर पूरा किया, अुस दिन अुन्हें कितना आनन्द हुआ होगा?

परन्तु देशबन्धुकी देशभक्ति अैसी नहीं थी, जो केवल दान करके ही तृप्त हो जाय। अुन पर त्याग-धर्मका रंग चढ़ चुका था। अुन्होंने अपनी वकालत छोड़ दी, स्वयं ग़रीब बने, और ग़रीबोंकी सेवा करनेकी दीक्षा ली। अदालतने अुनका घर कुर्क़ करनेका फैसला किया। देशबन्धु पैसा कमानेकी बात सोचते, तो अेक क्षणके अन्दर

वे अपनी सारी मिल्कियत बचा सकते थे। लेकिन अुन पर त्याग-धर्मकी धुन सवार थी। घर बनाते समय अुन्हें जो आनन्द हुआ था, अुससे भी अधिक आनन्द अुस घरको हाथसे जाने देते समय अुन्हें हुआ होगा।

यदि अैसे पुण्य-पुरुषोंके त्यागसे भारतीय समाजकी आत्मशुद्धि न हुअी, तो क्या अुससे कोअी आशा रखी जा सकती है? प्राचीन कालसे शिबि और हरिश्चन्द्र जैसे त्यागशूरोंने जो परम्परा चलायी, वह आज भी हिन्दुस्तानमें मौजूद है। लेकिन अुसके साथ ही यदि हमने दान पर परिपुष्ट होनेकी और निरे स्वार्थी या पामर मनुष्यको ही शोभा देनेवाले मोहके लिअे मलिन जीवन बितानेकी परम्परा भी जारी रखी, तो हम पर अीश्वरकी दया न रहेगी और हम अुसके महान् कोपको भी जाग्रत करेंगे।

देशबन्धुका देहान्त होते ही महात्माजीने अुनके स्मारकके लिअे लाखों रुपये अिकट्ठा करके देशबन्धुका वह भव्य प्रासाद छुड़ा लिया, और अुसमें अुन्हींके नामसे स्त्रियोंके लिअे अेक बड़ा अस्पताल खोल दिया।

स्वराज्यका आन्दोलन चलानेके तरीक़ेके बारेमें गांधीजीके साथ मतभेद हो जाने पर देशबन्धुने पण्डित मोतीलाल नेहरूकी मददसे स्वराज्य पक्षके नामसे अपना अेक अलग दल क़ायम किया था। लेकिन दोनोंके अन्तःकरण बहुत विशाल थे। अिसलिअे मतभेद दूर होते ही अुन्होंने बड़े प्रेमके साथ गांधीजीसे मेल कर लिया। अिसमें कोअी शक नहीं कि गांधीजीने तो शुरूसे ही अुनके साथ बड़े प्रेम और आदरका बरताव रखा था।

अख़ीर-अख़ीरमें देशबन्धु और गांधीजीके बीच कुछ भी मतभेद नहीं रहा था। अुन्होंने गांधीजीके सारे कार्यक्रमको अपने कार्यक्रमके तौर पर स्वीकार कर लिया था।

२५–७–'२३

देशबन्धु-पुण्यतिथि

२६ जून **१ समय**

देशबन्धु यानी बंगालकी खानदानियत और बंगालका हृदय! अुनका जीवन अैसा था, मानो अुन्होंने विश्वजित् यज्ञ ही किया हो! देशभक्तोंकी सेवा और भक्ति करना अुनके जीवनका प्रधान सुर था। देशबन्धुकी जीवनीसे विद्यार्थियोंको यह सीख दी जाय। ग्राम-संगठन और स्त्रियोंके अुद्धारके विषयमें अिस दिन विवेचन किया जाय। अुनके रचे हुअे कुछ भजन गाये जायँ, और अुनका 'सागर संगीत' काव्य पढ़ा जाय।

स्वराज्य-महाव्रत

[अप्रैल ६ से १३ तक]

व्रत हो या त्योहार, अुसके पीछे कोअी-न-कोअी महान सामाजिक या आध्यात्मिक तत्त्व होता ही है। चैत्रकी प्रतिपदाके दिन दक्षिण हिन्दुस्तानमें बड़ा अुत्सव मनाया जाता है, क्योंकि अुस दिन श्री रामचन्द्रजीने बालिको हराकर दक्षिण भारतको स्वाधीनता और निर्भयता प्रदान की थी। अुसी दिन प्रजा-अुद्धारकर्त्ता शालिवाहनने विदेशी हूण और शक लोगोंके आतंकसे प्रजाको मुक्त किया था। और वह भी किस तरह? मिट्टीके पुतलोंमें संजीवनी डालकर और अुन्हें शूर सिपाही बनाकर!

आजका हमारा स्वराज्य-सप्ताह अिसी तरहके अेक महाव्रतका दिन है। स्वराज्यकी प्रस्थापना होनेके बाद यह अुत्सवका दिन बनेगा। अिसके पीछे कअी तारक तत्त्व हैं। अिस सप्ताहमें मिट्टीके पुतलों जैसी जनतामें सत्याग्रहकी वह संजीवनी डाली गयी, जिससे पेटके बल रेंगनेवाला राष्ट्र अुठ खड़ा हुआ। अिसी सप्ताहकी प्रेरणाके बल पर बरसोंसे आपसमें लड़कर अेक-दूसरेकी जानके गाहक बने हुअे हिन्दू-

मुसलमान अेक हुअे और अिसी अेकताके कारण अैसा प्रतीत होने लगा, मानो अितन दिनों तक असंभव-सा मालूम होनेवाला स्वराज्य अचानक प्रकट हो गया हो। निराशामें ही पले और बड़े हुअे लोगोंको तो यही लग रहा है कि अितनी जल्दी स्वराज्यके आगमनकी संभावना हो ही कैसे सकती है ? लेकिन स्वराज्यका आगमन अितना अधिक प्रत्यक्ष है कि अुसे माननेकी तैयारी हो या न हो, माने बिना छुटकारा नहीं।

जो लोग अब तक 'असंभव, असंभव' कहते थे, वे आज कहने लगे हैं कि 'यह सारा अिन्द्रजाल क्या है ?' लेकिन अिसमें अिन्द्रजालकी क्या बात है ? फ़ी घंटा चालीस मीलकी रफ़्तारसे दौड़ने-वाली रेलगाड़ीको अगर हवाके दबावसे अेकदम रोका जा सकता है, तो असहयोगके द्वारा अेक अुन्मत्त सल्तनतको ठिकाने लानेमें अिन्द्र-जाल क्या है ?

अपने पैरों चलकर आनेवाले अिस स्वराज्यका स्वागत हम कैसे करें ? हमें अिस बातकी जाँच करनी चाहिये कि हमारा हृदय-मन्दिर स्वराज्य-देवीके बैठने योग्य शुद्ध और पवित्र है या नहीं ? अिसीलिअे अिस सप्ताहको हम 'आत्मशुद्धिका सप्ताह' कहते हैं।

अिस सप्ताहमें हम सब तरहके व्यसनोंका त्याग करनेका निश्चय करें। स्वराज्य-फण्डमें यथाशक्ति द्रव्य दें। यह कोअी दान नहीं, बल्कि स्वराज्यके लिअे स्वेच्छासे दिया जानेवाला टैक्स है। स्वराज्यका अर्थ है ज़ुल्म और ज़बरदस्तीका अभाव। अतः प्रत्येक व्यक्ति अपनी श्रद्धाके अनुसार अधिकसे अधिक कर दे। सत्ताका अुपयोग किये बिना राष्ट्रीय महासभा (कांग्रेस) हिन्दुस्तान पर राज करती है। रामराज्यमें अिससे अधिक और क्या होगा ?

आज हम अपने हृदयस्थ परमेश्वरकी प्रार्थना करें —"हे हृदयस्थ देव ! हे जनतारूपी जनार्दन ! तुम हमें स्वराज्यके सच्चे अुपासक बनाओ। स्वराज्य-विषयक अपनी श्रद्धाके विचलित होनेसे

पहले ही अिस शरीरसे हमारे प्राण निकल जायँ! हमने आज तक बहुत दुःख अुठाया है; अतः हममें किसीको भी दुःख देनेकी बुद्धि अुत्पन्न न हो! हम आज तक पराधीनतामें सड़ते आये हैं, अिसलिअे किसीकी स्वाधीनताका अपहरण करनेकी वृत्ति या शक्ति हममें न आये! हम साम्राज्यके अमर्याद मदके शिकार बने हैं; अतः हमारे हृदयमें अैहिक साम्राज्य प्रस्थापित करनेकी लालसा कभी अुत्पन्न न हो! साम्राज्य तो अेक तुम्हारा ही सर्वत्र प्रस्थापित हो जाय! और, अैसी तपश्चर्यासे पुनीत बना हुआ यह राष्ट्रीय सप्ताह कभी कलुषित न हो। सत्य, अहिंसा और संयमके अुत्सवके रूपमें यह सप्ताह दुनियामें अनन्त काल तक स्थायी बने!"

१२–४–'२१

राष्ट्रीय सप्ताह

६ अप्रैलसे १३ अप्रैल तक **८ दिन**

राष्ट्रीय अेकताके अिस पर्वके दिन सभी हृदयोंको सूतके धागेसे अेकत्र बाँधना ही अिस सप्ताहका अेकमात्र कार्यक्रम हो सकता है। अिस वक़्त विद्यार्थियोंको अच्छी तरह समझा दिया जाय कि हरअेक भारतवासीके सिर पर समान संकट मँडरा रहा है। अिस सप्ताहमें जितना हो सके अुतना सूत काता जाय।

अमृतसरसे लेकर आज तकका कांग्रेसका अितिहास पढ़ा जाय या अुसका विवेचन किया जाय।

छोटे त्योहार

[अिनमें से प्रत्येक त्योहारको वर्गमें अेक-अेक घण्टा दिया जा सकता है।]

दादाभाअी नौरोजी

३० जून

राष्ट्रीय महासभाके अितिहासमें दादाभाअीका नाम हिन्दके दादाके नाते अमर बन चुका है। 'हिन्दुस्तानका खास रोग अुसकी बढ़ती हुअी दरिद्रता है; अुसका कारण अंग्रज़ोंका राज है; और अुसका अिलाज स्वराज्य है;' यह सब सप्रमाण साबित करके दादाभाअीने देशको जाग्रत किया। कांग्रेसके अध्यक्षपदसे यह कहकर कि 'अकसर जी चाहता है कि विप्लव मचा दिया जाय', अुन्होंने अिस बातका सूचन किया कि देशकी दुर्दशाको दूर करनेका अुपाय कितनी जल्दी किया जाना चाहिये। अिस तरह मानो अुन्होंने स्वदेशी और असहयोगकी नींव डाली। अिसीलिअे 'दादा-जयन्ती' मनाना चाहिये। दादाभाअीका सारा जीवन सादा, निर्मल और असाधारण अुद्यमी जीवन था। छात्रोंको अिस बारेमें भी बहुत कुछ कहा जा सकता है।

गोखलेजीको श्रद्धांजलि*

[१९ फरवरी]

आजका दिन श्राद्धका दिन है। श्राद्धके मानी हैं, श्रद्धा द्वारा भूतकालको जीवित रखनेका अेक अद्‌भुत अुपाय। गोखलेजीको अिस लोकसे गये आज सात साल हो चुके हैं, फिर भी अभी हम अुनसे प्रेरणा लेते हैं, स्फूर्ति लेते हैं, अखंड सेवाकी दीक्षा लेते हैं, और अिस तरह अुन्हें हम अपनेमें जीवित रखते हैं। सन् १९१५के फरवरी महीनेकी १९वीं तारीख तक वे अपने चैतन्यसे जीते थे; आज वे हम सबके चैतन्यसे जी सकते हैं। हममें जितना चैतन्य होगा, अुतने ही वे जियेंगे। गोखलेजीके जीवनने हममें जो जीवन डाला, वह हममें जीवित रहा तो गोखलेजी और भी जियेंगे। वह जीवन हममें बढ़ेगा, तो गोखलेजी चढ़ेंगे; और जब वह जीवन हममें से समूल नष्ट हो जायगा, तभी गोखलेजी मर जायँगे। आज हम यहाँ अिकट्ठे होकर गोखलेजीका श्राद्ध कर रहे हैं। अिसके द्वारा हम कह रहे हैं कि भारत-सेवक गोखलेजी चिरंजीवी हों।

किसी भी मनुष्यका जीवन देखिये, अुसमें परिवर्तन होते ही रहते हैं। जीवन ही परिवर्तन है। जीवन ही प्रगति है। प्रतिवर्ष, प्रतिदिन और प्रतिक्षण मनुष्यका अनुभव बढ़ता जाता है, मनुष्यकी दृष्टि विशाल होती जाती है, और मनुष्यका जीवन विकसित होता जाता है। विद्यार्थी गोखलेकी अपेक्षा अध्यापक गोखले आगे बढ़े; अर्थ-शास्त्री गोखलेकी अपेक्षा माननीय गोखले अधिक श्रेष्ठ सिद्ध हुअे; माननीय गोखलेकी अपेक्षा राष्ट्र-नायक गोखले अधिक श्रेष्ठ ठहरे।

---

* सन् १९२२ की गोखले-पुण्यतिथिके अुपलक्ष्यमें बम्बअीके भगिनी-समाजमें अर्पित श्रद्धांजलि।

अिस तरह गोखलेजीकी श्रेष्ठता दिन-प्रतिदिन बढ़ती ही गयी। साधारण लोग समझते हैं कि मनुष्य मृत्यु तक ही बढ़ता है, लेकिन यह ग़लत है। जीवित गोखलेजीकी अपेक्षा राष्ट्रके हृदयमें बसनेवाले आजके गोखलेजी कअी गुना श्रेष्ठ हैं। जीवित गोखले रोज सोते थे, काम करके थक जाते थे, अूब जाते थे, कभी खीझ भी अुठते थे। लेकिन आजके गोखले — हृदयस्थ गोखले — आदर्श हैं, आजकी अुनकी देश-सेवा अमर्याद और अखंड है, वह दिन-दिन अूपर चढ़ती जायगी और विशुद्ध होती जायगी।

यह शक्ति किसकी है? यह शक्ति श्राद्धकी है। श्राद्धका मतलब स्मृति नहीं, श्राद्धका अर्थ अितिहासका अध्ययन नहीं, बल्कि श्राद्ध अमृतसंजीवनी है। स्मृति दुःखरूप होती है, और दुःखकी तरह वह अल्पजीवी भी होती है। जिस तरह दुःखका भी अन्त होता है, अुसी तरह स्मृति भी मिटती जाती है। जिस तरह दुःख हमें दुर्बल बनाता है, अुसी तरह स्मृति भी हमें करुणार्द्र कर डालती है। अितिहासका भी यही हाल है। अितिहास न चलता है न बढ़ता है। अितिहासकी स्थिरता मारक होती है। अितिहासमें जीवन नहीं होता। अितिहास अेक पुतला है, अेक तसवीर है। छोटी-सी बालिका जब प्रसन्नता-पूर्वक हँसती है, तो अुसमें कितना अपूर्व चैतन्य, माधुर्य और पावित्र्य होता है! लेकिन अुसी हास्यकी तसवीर खींचो या मूर्ति बनाओ और देखो, तो अुसकी स्थिरता ही सारे सौंदर्यको नष्ट कर डालती है। अितिहासका भी यही हाल है। अितिहास सत्यके वर्णनको स्थिर करने जाता है, और अुसी प्रयासमें स्वयं असत्यरूप बन जाता है। अितिहास सत्यका प्रेत है। अितिहास व्यक्ति या राष्ट्रके स्वरूपको स्थिर करके अेक तरहसे अुसे निर्जीव बना देता है।

श्राद्ध अिससे अलग ही चीज़ है। श्राद्ध मृत व्यक्तिको अमर बनाता है। रामायण और महाभारत अितिहास नहीं, बल्कि श्राद्ध हैं। अिसीलिअे ये राष्ट्रीय ग्रंथ युगोंसे अिस राष्ट्रमें प्राण डालते आये हैं।

अितिहासमें यह शक्ति कहाँ ? हम वार्षिक श्राद्ध द्वारा पूज्य व्यक्तिको दिन-प्रतिदिन अधिक राष्ट्रीय बनाते हैं। सन् १८६६ से १९१५ तक जीनेवाले गोखलेजी कैसे थे, अिसका यथार्थ चित्रण अितिहास भले ही करके रखे, हमें अुसकी परवाह नहीं। जो गोखलेजी आज हमारे हृदयमें हैं, अुन्हींके दर्शन हम करें, अुन्हींका स्मरण करें, अुन्हींसे देशसेवाकी दीक्षा ले लें। अुस समयके गोखलेजी हमसे कहते थे — 'ज्यादा पैसे देकर भी स्वदेशी कपड़े ही पहनो।' वे ही गोखलेजी आज हृदयमें प्रवेश करके हमसे कह रहे हैं — 'पैसेका खयाल ही मत करो, खादी ही पहनो।' हृदयस्थ गोखलेजी कहते हैं — 'मैं अर्थशास्त्रका अध्यापक था, लेकिन आज मैं तुमसे कहता हूँ कि धर्मशास्त्रके आगे अर्थशास्त्र शून्य है। जो धर्मशास्त्रके अधीन रहता है, वही सच्चा अर्थशास्त्र है। खादी पहननेवाले हिन्दुस्तानका कभी आर्थिक अकल्याण होनेवाला नहीं है; क्योंकि खादीमें धर्म है।'

सरयू नदीके किनारे रहनेवाले रामचन्द्रजीने क्या किया, अुनका जीवन कैसा था, आदि बातें हमको मालूम नहीं हो सकतीं, न हमें अुनकी आवश्यकता ही है। लेकिन वाल्मीकिके प्रतिभा-स्रोतसे जन्मे हुअे और आर्यावर्त्तके हृदय पर राज्य करनेवाले राजा रामचन्द्रको ही हम जानना चाहते हैं। क्योंकि अैतिहासिक रामकी अपेक्षा वाल्मीकिके राष्ट्रीय रामने ही भारतवर्षका अधिक कल्याण किया है। शकुंतलाकी भावगम्य छबिको चित्रित करते समय जैसे-जैसे शकुंतलाका ध्यान बढ़ता जाता था, वैसे-वैसे विरही दुष्यन्त 'यद्यत्साधु न चित्रे स्यात् क्रियते तत् तदन्यथा' कहकर हेरफेर करता ही जाता था, और फिर भी वह तसवीर तो शकुंतलाकी ही रहती थी। यही बात हम राष्ट्रीय पुरुषोंके श्राद्धमें करते हैं; हम अुनका राष्ट्रीय संस्करण तैयार करते हैं।

अैसा करनेमें जितना लाभ है, अुतना ख़तरा भी है। पवित्र पुरुषोंकी स्मृति अेक तरहकी विरासत है। अुसे हम बढ़ा भी सकते हैं और बिगाड़ भी सकते हैं। क़ीमती विरासतके साथ हम पर भारी ज़िम्मेदारी भी आ पड़ती है; और अिस ज़िम्मेदारीका भान ही हमारे लिअे प्रेरक और तारक होना चाहिये।

आजके श्राद्धके दिन मुझे गोखलेजीके विषयमें कुछ कहना चाहिये, लेकिन सच कहूँ तो मैंने अैतिहासिक दृष्टिसे या अध्ययनकी दृष्टिसे गोखलेजीके जीवनको न देखा है, न पढ़ा है। गोखलेजीको मैंने बहुत बार देखा भी नहीं। किसी फ़रिश्तेके दर्शनकी तरह मैं अुन्हें दो-चार बार ही देख पाया हूँ। अुस समयकी स्मृतिको मैंने श्राद्धकी भूमिमें संग्रहीत करके रखा है — नहीं, संग्रहीत नहीं किया, बल्कि बो दिया है। अिस बीजको समय-समय पर सिंचन मिला है, जिससे वह अंकुरित होकर अनेक प्रकारसे फला-फूला है।

गोखलेजीका पहला दर्शन — अव्यक्त दर्शन — मुझे फर्ग्युसन कॉलेज (पूना) की मारफत हुआ। जब मैं अुस कॉलेजमें गया, तब गोखलेजी वहाँ नहीं थे, लेकिन वहाँका वायुमंडल गोखलेमय था। सब जगह गोखलेजीकी छाप दिखाअी देती थी।

फर्ग्युसन कॉलेज यानी वाद-विवादका कुरुक्षेत्र! पूनामें जितने पक्ष हैं, अुतने ही नहीं, बल्कि अुससे भी अधिक पक्ष फर्ग्युसन कॉलेजके विद्यार्थी-निवास (होस्टल) में दिखाअी देते हैं। जब मैं पहले-पहल फर्ग्युसन कॉलेजमें गया, तो मेरी हालत वैसी ही थी, जैसी पहली बार शहरमें आनेवाले देहाती विद्यार्थीकी हुआ करती है। छात्रावासमें प्रत्येक पक्षके हिमायती मेरे पास आते और मुझे अपने मतोंको निश्चित करनेमें 'मदद' करते। पूनामें कोअी भी व्यक्ति पक्षरहित नहीं रह सकता। वहाँका वायुमंडल अैसे आदमीको बरदाश्त ही नहीं कर सकता। फर्ग्युसन कॉलेजके छात्रावासमें मैंने गोखलेजीकी निन्दा और स्तुति

दोनों अितनी अधिक मात्रामें सुनीं कि किसी निर्णय पर पहुँचना मेरे लिअे असंभव हो गया। मेरे मनमें अितना निश्चय तो अवश्य हुआ कि गोखलेजी चाहे जैसे हों, फिर भी वे अेक जानने लायक़ व्यक्ति तो ज़रूर हैं। अुनकी निन्दा और स्तुतिने परस्पर विघातक कार्य किया, अिसलिअे मैं अुनसे अछूता रह गया। मनमें अितनी भावना अवश्य रह गयी थी कि गोखलेजी बड़े देशसेवक तो हैं, फिर भी अुन्होंने अुन गोरे सिपाहियोंसे जो माफ़ी माँगी, वह तो अुनके लिअे कलंकरूप ही है। सबूत न मिलनेसे क्या हुआ? जब तक अपने मनको पूरा यक़ीन है, तब तक हम किस लिअे माफ़ी माँगें? मेरा यह मत बहुत बरसों तक रहा। आज वह वैसा नहीं है; सार्वजनिक जीवनके स्मृति-शास्त्रको अब मैं अधिक अच्छी तरहसे समझने लगा हूँ।

कांग्रेसकी तरफ़से विलायतमें प्रकाशित होनेवाला 'अिण्डिया' नामक पत्र मैं कॉलेजमें बहुत ध्यानसे पढ़ा करता था। अिसलिअे गोखलेजी विलायतमें जो भाषण देते, मद्यनिषेधकी जो योजनायें बनाते, और अपने देशके लिअे कनाड़ा जैसा जो 'सेल्फ गवर्नमेण्ट'—स्वशासन— माँगते, अुन सभी बातोंसे मैं परिचित रहता था और अुससे गोखलेजीके प्रति मेरे मनमें धीरे-धीरे श्रद्धा अुत्पन्न होती थी। आखिर अेक दिन अैसा आया, जब मैंने सुना कि आज गोखलेजी कॉलेजमें आनेवाले हैं। यह तो अब याद नहीं कि वह कौनसा अवसर था।

गोखलेजीकी प्रसन्न-गंभीर मूर्ति मंच पर खड़ी हुअी थी। अुनकी भाषा या अुनकी आवाज़में शास्त्रोक्त वक्ताकी चमत्कृति या चमक नहीं थी, लेकिन अुनकी भाषामें संस्कारिता तथा देशकल्याण और देशसेवाकी लगन ओतप्रोत थी। अुनके स्वरमें अंतःकरणकी अुत्कटताका गुंजन था। यह स्पष्ट रूपसे दिखाअी दे रहा था कि यह हमेशा अुदात्त वायुमंडलमें विहार करनेवाली कोअी विभूति है। और फर्ग्युसन कॉलेज तो अुन्हींके हाथों परवरिश पाया हुआ गोकुल था। अिसलिअे अुनके अुपदेशमें अधिकार और वात्सल्य समानरूपसे भरे

हुअे थे। अुस दिनका व्याख्यान तो में अब भूल गया हूँ, पर व्याख्यानका असर अब भी क़ायम है। अेक ही बात अभी अच्छी तरह याद है। अुन्होंने कहा था — "आपको मालूम है कि आय-कर लेनेवाले सरकारी कर्मचारी हर साल आपके दरवाज़े आते हैं और आप लोगोंसे सरकारी कर वसूल करके चले जाते हैं। आज देशके नाम पर अैसा ही अेक 'टैक्स-गैदरर' (कर अुगाहनेवाला) मैं आपके दरवाज़े आकर खड़ा हूँ। मुझे पाँच फ़ी-सदीके हिसाबसे कर चाहिये। लेकिन वह पैसोंका नहीं, नवयुवकोंके श्रद्धावान् जीवनका। मैं चाहता हूँ कि अिस महा-विद्यालयमें पढ़नेवाले युवक विद्यार्थियोंमें से पाँच फ़ी-सदी विद्यार्थी देशसेवाके लिअे अपना जीवन समर्पित करें। अैसा होने पर ही मुझे सन्तोष होगा!"

कितनी महत्त्वपूर्ण माँग, और फिर भी कितनी कम! अुस दिन मेरे हृदयमें नया प्रकाश आया, विचारोंको अेक नयी दिशा मिली, और मैं कुछ अंशोंमें द्विज बना।

अिसी अरसेमें गोखलेजी बनारसमें कांग्रेसके अध्यक्ष बने। बनारसकी भोलीभाली जनताने 'पूनाका राजा' कहकर अुनका स्वागत किया। अुस समयका अुनका भाषण कुछ अैसा संपूर्ण था कि कअी बार पढ़ने पर भी मुझे संतोष न हुआ। अिसके बाद बंग-भंगके ख़िलाफ़ आन्दोलन बढ़ा। स्वदेशी, बहिष्कार, राष्ट्रीय शिक्षा और स्वराज्यका चतुर्विध आन्दोलन ज़ोरके साथ जाग अुठा। मैं अुसमें बह गया। विपिनचन्द्र पाल और अरविन्द घोषने मेरे हृदय पर क़ब्जा कर लिया, और गोखलेजीकी छाप मिटती गयी। मैं यह भी भूल गया कि मुझमें देशसेवाकी ज्योति गोखलेजीने ही प्रज्वलित की थी। अुसके बाद सूरतमें गृहयुद्ध हुआ। अुस समयके दोनों पक्षोंके अखबार पढ़कर मुझे निराशा हुअी। अुन अखबारोंमें अितनी अधिक क्षुद्रता दिखाअी देती थी की अुसे दुर्गन्धकी अुपमा दी जा सकती है। अुसके बाद राजनीति कुछ अजीब ढंगसे बहने लगी। सरकार पागल हो गयी, और हमारे

दोनों पक्ष अीर्ष्या, असूया और हिंसासे सराबोर हो गये। अिसका भी मुझ पर बहुत असर हुआ। राष्ट्रीय पक्षके तत्त्व मुझे पसन्द थे, अराजक लोगोंका युक्तिवाद मुझे यथार्थ प्रतीत होता था; फिर भी नरमदलके नेताओंके बारेमें जो निन्दाप्रचुर बीभत्स लेख और चित्र अखबारोंमें निकलते थे, अुनसे मुझे सख्त नफ़रत होती थी। असूयावृत्ति समाजमें अितनी अधिक बढ़ गयी कि गोखलेजीको 'हिन्दूपंच' पत्रके खिलाफ़ मानहानिकी नालिश दायर करनी पड़ी। मुझे यह बात बिलकुल अच्छी न लगी कि महान् गोखलेजी 'हिन्दूपंच' जैसे क्षुद्र पत्रके खिलाफ़ मानहानिका मुक़दमा चलाकर अुससे माफ़ी मँगवायें। आज यह बात तो मेरी समझमें आती है कि गोखलेजीने ब्रिटिश सोल्जरोंसे जो माफ़ी माँगी थी, अुससे अुनकी महत्तामें वृद्धि हुअी थी। लेकिन मैं मानता हूँ कि 'हिन्दूपंच' से क्षमा-याचना करानेमें गोखलेजीने कुछ भी हासिल नहीं किया। लेकिन अिसमें गोखलेजीकी अपेक्षा मैं अपने जैसे लोगोंका ही दोष अधिक देखता हूँ। गोखलेजीकी अभद्र निन्दा सुनकर तिलमिला अुठनेवाले मेरे-जैसे बहुतसे लोग होंगे। लेकिन हम चुपचाप बैठे रहे। अगर हमने अुस समय प्रकट रूपसे अिस तरहकी निन्दाका निषेध किया होता, तो गोखलेजीको अपने समाजके विषयमें अितना अधिक निराश न होना पड़ता।

अिसी अरसेमें बम्बअीमें प्रभु ज्ञातिकी महिलाओंने अेक कला-प्रदर्शनीका आयोजन किया था, और गोखलेजी द्वारा अुसका अुद्घाटन होनेवाला था। कलाके विषयमें भी अुन्होंने सोच रखा था। मैं अुनका वह भाषण सुनने गया, और वहाँ मैंने गोखलेजीको पहले-पहल मराठीमें बोलते सुना। अुसी समय मनमें विचार आया कि अगर यह राष्ट्रपुरुष लेजिस्लेटिव कौंसिलकी अपेक्षा समाजमें और अंग्रेज़ीके बदले मराठीमें काम करे, तो अिसकी देशसेवा भी बढ़े और कीर्ति भी बढ़े। लेकिन फिर मुझे अैसा लगा कि लेजिस्लेटिव कौंसिलमें ठोस

काम करनेवाले लोग कम थे। शायद अिसीलिअे गोखलेजीको कौंसिलमें अधिक समय देना पड़ा होगा।

अन्त्यजोद्धारके बारेमें अुनका अेक भाषण अिसी अरसेमें मैंने बम्बअीके टाअुनहॉलमें सुना। अुसके बाद देशमें आतंकवादी प्रवृत्तियाँ बढ़ीं। लोकमान्य माँडले जेलमें 'गीता-रहस्य' लिखते थे, और देशमें ग्लानि फैल गयी थी। मैं गुजरात गया और वहाँ थोड़े दिनों तक अध्यापनमें व्यस्त रहा। गोखलेजी कहाँ हैं, क्या करते हैं, अिसके बारेमें मैं कुछ भी जानता न था। रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द, भगिनी निवेदिता आदिके ग्रथोंमें ही मेरी दिलचस्पी बढ़ गअी थी। सन् १९११ या १२ में भगिनी निवेदिताका स्वर्गवास हुआ, अुस समय गोखलेजीकी अेक श्रद्धांजलि प्रकट हुअी। वह छोटी ही थी, पर अितनी सुन्दर थी कि मेरी श्रद्धा पुनः जाग अुठी। मुझे न्यायमूर्ति रानडे पर दिये गये अुनके भाषणों और लेखोंका स्मरण हो आया, और गोखलेजीके प्रति मेरे हृदयमें जो आदर था, वह फिर जाग्रत हुआ। मैं गोखलेजीका अधिक अध्ययन करने लगा। विद्यार्थी और राजनीति, हिन्दू-मुस्लिम अेकताके प्रश्न, दुनियाके समस्त राष्ट्रोंकी कांग्रेसमें दिया हुआ अुनका भाषण, आदि पढ़कर मुझे पूरा विश्वास हो गया कि गोखलेजी पाँच-दस सालका विचार करनेवाले 'पॉलिटीशियन' (राजनीतिज्ञ) नहीं, दीर्घदृष्टिसे राष्ट्रहितका विचार करनेवाले अेक राष्ट्रोद्धारक हैं। खासकर हिन्दू-मुसलमानोंकी अेकताके विषयमें अुन्होंने जो नीति अख्तियार की थी, अुसे देखकर ही अुनके ध्येय और अुनकी दीर्घदृष्टिका मुझे पूरा यक़ीन हो गया। वे यह देख सके कि हिन्दू-मुसलमानोंकी अेकता ही भारतीय राजनीतिकी बुनियाद है। अिस अेक कार्यके लिअे भी हिन्दुस्तानको गोखलेजीके प्रति कृतज्ञ रहना चाहिये।

वे देशकी राजनीतिको जड़-मूलसे शुद्ध और आध्यात्मिक बनानेके आग्रही थे। देशकी स्थितिको देखते हुअे गोखलेजीने यह महसूस किया

कि जब तक रात-दिन देशकी सेवाका ही विचार करनेवाले लोगोंका वर्ग देशमें पैदा न होगा, तब तक देशकी राजनीति अिसी तरह भटकती रहेगी। अपने अनुभवसे वे यह बात अच्छी तरह देख सके थे कि दुनियादार बनने और फुरसतके वक़्त देशसेवा करनेकी वृत्तिसे देशसेवा नहीं हो सकती। दूसरी अेक चीज़ जो हिन्दुस्तानियोंके स्वभावमें — भारतीय संस्कृतिमें — अनादि कालसे चली आयी है, अुसे अुन्होंने विशेष आग्रहके साथ देशसेवाके काममें भी दाखिल किया और देशके सामने विशेष रूपसे रखा। वह चीज़ थी, 'गरीबीका महत्त्व'! देशसेवाके लिअे पैसेकी ज़रूरत है, पैसेके बगैर किया हुआ काम अटक जाता है, सदुपयोग करने पर अेक हद तक संपत्ति आशीर्वादरूप बन सकती है, सो सब सच है। फिर भी देशसेवक स्वयं जिस हद तक निर्धन रहेगा, अुस हद तक अुसकी देशसेवा अधिक ठोस होनेकी संभावना रहती है। गोखलेजी अिस बातको अच्छी तरह जानते थे। बाबा-बैरागी बनकर यात्रा करते हुअे घूमना अपेक्षाकृत आसान है; लेकिन समाजमें घुलमिलकर, समाजको साथ लेकर देशोन्नतिके कार्य करना, देशका नेतृत्व करना और साथ ही दरिद्रताका व्रत लेकर, थोड़ेमें गुजारा करके, द्रव्यलोभको अेक तरफ़ रखकर निस्पृहताकी आदत डालना बहुत मुश्किल है। जो लोग विद्वान् होते हुअे भी नम्र, ग़रीब होते हुअे भी तेजस्वी और तपस्वी होते हुअे भी दयालु हैं, वे समाज पर, और ख़ास कर भारतीय समाज पर, प्रभुत्व प्राप्त कर सकते हैं। धन कमानेकी शक्ति होने पर भी जो मनुष्य ग़रीबीको पसन्द करता है, लाखों रुपये हाथमें होते हुअे भी जो पैसेसे मिलनेवाली सहूलियतोंका अुपयोग करनेके लालचमें नहीं फँसता, वही मनुष्य समाजकी सच्ची सेवा कर सकता है, और स्वयं स्वतंत्र रह सकता है। ग़रीबीका आदर्श सामने न रहने पर देशसेवकके पैसेका सेवक, पैसेवालेका आश्रित और देशहितका द्रोही बन जानेका डर हमेशा रहता है।

ग़रीबीके आदर्शके साथ अखंड अुद्योगका व्रत न रहे, तो वह ग़रीबी जड़ताका रूप धारण कर लेती है। तमोगुणी ग़रीबी किसी कामकी नहीं। मनुष्य सन्तोष रखकर अपने निजी मतलबके लिअे या अैश-व-अिशरतके लिअे चाहे मेहनत न करे, लेकिन अुसे मेहनत तो करनी ही चाहिये। सकाम हो या निष्काम, कर्म तो किया ही जाना चाहिये। अगर हम कर्म न करें, तो हमें जीनेका कुछ भी अधिकार न रहे। परिश्रम करनेका अवसर न मिलना तो अीश्वरका सबसे बड़ा शाप समझा जाना चाहिये। यह सोचना ठीक नहीं कि अुद्योग सिर्फ़ पेट भरनेके लिअे है। मैं मानता हूँ कि अुद्योग तो जीवनका आनन्द है; कायिक, वाचिक और मानसिक शक्तियोंको विकसित करनेका साधन है; और पवित्रता तथा मोक्षकी साधना है। देशभक्तिको फुरसतका वक़्त बितानेका अेक अुपाय या नाम कमानेका अेक तरीक़ा समझकर कोअी व्यक्ति या संस्था अखंड रूपसे देशकी सेवा कर ही नहीं सकती। दिखावेके लिअे किया हुआ काम भड़कीला चाहे हो, लेकिन वह ज़्यादा देर तक टिक नहीं सकता।

देशसेवा करनेका मुख्य अुपाय यही है कि हम अपना जीवन निष्पाप बनावें। समाजमें जो दुःख हम देखते हैं, अुनमें आधेसे भी अधिक दुःख तो स्वयं हमारे ही पैदा किये हुअे होते हैं। यदि प्रत्येक व्यक्ति अपना जीवन सुधारनेका प्रयत्न करे, तो समाज-सेवकका बहुत-कुछ काम हलका हो जाय। दूसरी दृष्टिसे देखें तो जब तक हम स्वयं निष्पाप नहीं बनते, हमें समाज-सेवाका अधिकार या सामर्थ्य प्राप्त ही नहीं हो सकता। अिस बातका अनुभव करके ही गोखलेजीने भारत-सेवक-समाज (सर्वेण्ट्स ऑफ अिण्डिया सोसाअिटी) की योजना और कार्यप्रणालीमें सादगी, ग़रीबी, आज्ञाकारिता आदि व्रतोंको विशेष रूपसे स्थान दिया है।

गोखलेजीके दक्षिण अफ्रीका जानेका हाल तो सबको मालूम ही है। अुस समय जनरल स्मट्स और गांधीजीके बीचकी बातचीतके संबंधमें

जब ग़लतफ़हमी पैदा हुअी, तो विलायतके पत्रोंको हमारे गोखलेजी ही अधिक विश्वासपात्र आप्त मालूम हुअे। यह देखकर मेरा हृदय अभिमानसे फूल अुठा, और मुझे पूरा विश्वास हो गया कि यह गोखलेजीके निर्मल चरित्रका ही प्रभाव है। दक्षिण अफ्रीकाका काम बढ़ा। महात्माजीने वहाँ युद्धकी घोषणा की और हिन्दुस्तानमें देशभक्त गोखलेजीने अुस यज्ञके लिअे ब्राह्मणोचित भिक्षा माँगना शुरू किया। वह अपूर्व अवसर मेरी स्मृतिमें आज भी ताज़ा है।

वह यज्ञ पूरा हुआ। गांधीजी हिन्दुस्तान वापस आये और कवीन्द्रसे मिलने शान्तिनिकेतन गये। वहाँ गांधीजीका स्वागत हो ही रहा था कि अितनेमें गोखलेजीके परलोक सिधारनेका तार मिला। शान्तिनिकेतनके अेक आम्रवृक्षके नीचे हम कुछ लोग गांधीजीके आस-पास बैठे थे। अुस समय गांधीजीकी आँखोंमें आँसू तो नहीं थे, किन्तु आँसुओंसे भी मृदु और गंभीर श्रद्धाका सागर छलक रहा था। अुन्होंने हमें गोखलेजीके जीवनकी धार्मिकता समझायी। राजनीतिके लिअे भी हमें अपनी ख़ानदानियतका त्याग नहीं करना चाहिये, गोखलेजीके अिस आग्रहका रहस्य अुन्होंने हमें समझाया, और अुसी क्षण गोखलेजीकी श्रद्धा-निर्मित मूर्तिकी मेरे हृदयमें प्रतिष्ठापना हुअी। मैं गोखलेजीका अनुयायी नहीं हूँ, अुनका शिष्य भी नहीं हूँ, लेकिन अुनके शिष्यका शिष्य हूँ; गोखलेजीका पूजक हूँ और अुनको समझनेकी कोशिश करता हूँ। गोखलेजीके सच्चे अनुयायियोंकी देशसेवा, धर्मनिष्ठा और निडरता देखकर मनमें गोखलेजीकी मूर्ति अधिकाधिक स्पष्ट और दृढ़ होती जा रही है। आज अुस मूर्तिका ही श्राद्ध कर रहा हूँ और अुस मूर्तिसे आशीर्वाद माँग रहा हूँ।

यह जानकर कि भगिनी-समाज अिस मूर्तिका अेक मंदिर है, मैं यहाँ अपनी श्रद्धांजलि लेकर आया हूँ। गोखलेजीकी देशभक्ति अुनकी देशसेवासे बड़ी थी। पचास सालसे भी कमकी आयुमें अुनकी देश-भक्तिको पूर्ण अवसर कहाँसे मिलता? शिक्षा और राजनीतिके दो

क्षेत्रोंमें ही अुन्होंने कुछ देशसेवा की थी। लेकिन जो भी की, वह अपूर्व और अुज्ज्वल थी। फिर भी अुन्हें अुससे संतोष न था। वे हमेशा कहा करते थे कि कामके पहाड़ पड़े हैं, जिन्हें अुठानेके लिअे हज़ारों देश-सेवकोंकी ज़रूरत है। स्त्री-शिक्षाके महत्त्वपूर्ण विभागकी गोखलेजीकी देशभक्ति भगिनी-समाज द्वारा कार्यमें परिणत हो रही है; अिसीलिअे मैं अिस मंदिरमें श्राद्ध करने आया हूँ। आपने मुझे आजका यह अवसर दिया, अिसे मैं आप सबका प्रसाद ही समझता हूँ।

१९-२-'२२

गोपालकृष्ण गोखले

देशसेवक, अध्यापक, अर्थशास्त्री और राजदरबारमें जनताके प्रतिनिधि आदिके नाते की हुअी गोखलेजीकी सेवायें भुलायी नहीं जा सकतीं। हिन्दुस्तानकी आर्थिक स्थितिके विषयमें अुनकी मीमांसा आज भी ताज़ी है। लाजिमी और मुफ्त प्राथमिक शिक्षाको देशमें दाखिल कराने और नमक-कर कम करवानेके अुनके प्रयत्नोंसे ग़रीबोंके साथ अुनका मेल स्पष्ट हो जाता है। भारत-सेवक-समाजकी स्थापना करके अुन्होंने राजनीतिक आन्दोलनको दीक्षाका रूप दे दिया। वे स्वयं ग़रीबीमें पले और बड़े थे; फिर भी देशके कामके लिअे वे प्रसन्नता-पूर्वक ग़रीबीसे ही चिपटे रहे। ये सब बातें आज भी विद्यार्थी-वर्गके मन पर अंकित की जानी चाहियें। यह भी ज़रूरी है कि गांधीजीके साथ अुनके संबंधकी जानकारी विद्यार्थियोंको रहे। न्यायमूर्ति रानड़ेका गोखलेजी पर बहुत असर था, अिसलिअे रानड़ेजीका भी अिस दिन परिचय कराया जाय।

दाँडी-कूचके कारण नमक-कर पर जो असर हुआ है, अुसकी चर्चा भी की जा सकती है।

चोखामेळा

मंगलवेढ़े गाँवके चारों ओर अेक चहार-दीवारी बनानी थी। बादशाह ग़रीबोंको बेगारमें पकड़ लाया और अुनसे गाँवकी रक्षाके लिअे दीवार बनवायी गयी। जिन्हें गाँवमें रहनेकी अिजाज़त नहीं थी, जिन्हें गाँवके रास्तों पर चोरोंकी तरह डर-डरकर चलना पड़ता था, और जिन्हें गाँवके बाहरके क़तवारख़ानेके पास रहना पड़ता था, अुन हरिजनोंको भी गाँवकी दीवार बनानेमें बेगार करनी पड़ी। जिस तरह अीसा मसीहको वह क्रूस, जिस पर अुसे चढ़ना था, अपने ही हाथों अुठाना पड़ा था, अुसी तरह अपनेको गाँवसे बहिष्कृत करनेवाली दीवारें भी हरिजनोंको अपने ही हाथों बनानी पड़ीं।

राजोंकी कोअी गफ़लत हुअी होगी, अधिकारियोंने जल्दबाज़ी की होगी, गारा पतला बना होगा, किसी भी कारणसे हो, लेकिन वह दीवार गिर गयी और हरिजनोंकी अेक टोली अुसके नीचे दब गयी। चन्द लोगोंने अफ़सोस ज़ाहिर किया, कुछ लोग दुःखी भी हुअे, लेकिन अुन्होंने अुन मरनेवालोंको अुस मिट्टीके ढेरके नीचे ही पड़ा रहने दिया। अुन श्रमजीवी ग़रीबोंकी नींदमें वे क्यों बाधा डालें? अुस मिट्टीके नीचे अुनके मुर्दे सड़ गये, अुनकी मिट्टी बन गयी, और सिर्फ़ हड्डियाँ ही रह गयीं। अपनी ही मिट्टीके साथ मिलकर रहनेवाली अुन हड्डियोंको कितनी शान्ति मिली होगी !

लेकिन अुनकी अिस शान्तिमें बाधा डालनेवाली अेक घटना घटी। कुछ अच्छे 'अभंग' (दोहे) पढ़कर अेक संतको स्फूर्ति हुअी। वह खोज करता हुआ मंगलवेढ़े आया और कहने लगा — "चोखोबाकी हड्डियाँ कहाँ पड़ी हैं? मैं अुनको गति देना चाहता हूँ।" अुसने वह प्राचीन ढेर खोदना शुरू किया। अेकके बाद अेक हड्डियाँ मिलने लगीं। वह सन्त पुरुष हाथमें अेक-अेक हड्डी लेकर अुसे अपने कानों तक ले

जाता और जिन हड्डियोंसे 'विट्ठल! विट्ठल !!' नामकी ध्वनि सुनायी देती, अुन्हें अलग रखता जाता। अैसा करते-करते अुसने चोखा-मेळाकी सब हड्डियाँ खोज लीं और अुन पर अेक समाधि बनायी।

आज अुन हड्डियोंकी भी मिट्टी बन गयी होगी। लेकिन अखण्ड रूपसे 'विट्ठल, विट्ठल' का गान करनेवाले चोखोबाके अभंग आज भी महाराष्ट्रकी अनास्थाके ढेरके नीचे छिपे हुअे मिलेंगे। किसी-किसीने अुन्हें जमा करके किताबोंकी ज़िल्दोंमें गाड़ दिया है; लेकिन अिससे तो चोखोबाका श्राद्ध न होगा।

चोखोबाकी वाणी शुद्ध मराठी, करुणरससे भरी हुअी, अपनी जाति पर होनेवाले अत्याचारोंसे पीड़ित, किन्तु अीश्वर-कृपाके संबंधमें आत्मविश्वासके साथ बोलनेवाली है। वर्ण और जाति, शास्त्र और पुराण, आदि सब अूपरके स्वाँग हैं, अुनमें नहीं फँसना चाहिये। आन्तरिक मर्मको पहचानना चाहिये — अपने और पराये — जी हाँ, हम सब अत्याचारी सवर्ण हिन्दू बेचारे हरिजनोंके लिअे पराये ही हैं! — सब लोगोंको अैसा अुपदेश देनेवाली चोखोबाकी वाणी जिससे हमारे कण्ठों और हृदयोंमें अखण्ड निवास करती रहे, वैसा कोअी कार्य हमें करना चाहिये। कहते हैं कि अीसाने मनुष्य-जातिके लिअे प्रायश्चित्त किया था; किया होगा। लेकिन अिसमें शक नहीं कि चोखोबाकी नम्र सेवाने महाराष्ट्रके हरिजनोंके लिअे चक्रवृद्धि ब्याजके हिसाबसे प्रायश्चित्त किया है। चोखामेळाकी पुण्यतिथिके दिन हरिजनोंको बुलाकर अुनसे भजन कराया जाय; हम सब बैठकर भजन सुनें, और हरिजन हमें जो प्रसाद दें, अुसका सेवन करके हम अुन्हें अिस बातका विश्वास दिलायें कि अब वे हमारे लिअे पराये नहीं, बल्कि अपने ही हैं।

१९-१२-'३९

जनाबाअी

जनाबाअीके माता-पिताने अुसे अेक भगवद्-भक्तके घर दासीकी तरह रख दिया। जनाबाअी जीवनभर अुस घरमें रही। अुसने घरके छोटे-मोटे काम करके अपना गुज़ारा किया और अीश्वर-भक्ति करके अपने जन्मको सार्थक बनाया।

जनाबाअीका ब्याह नहीं हुआ था। जिनके घर वह रहती थी, वे सब अीश्वरपरायण तथा धर्मभीरु लोग थे। जिस तरह मीराबाअीने भगवान्से विवाह कर लिया था, अुसी तरह जनाबाअीने भी किया था। मीराबाअी राजवंशकी थीं, अिसलिअे अुन्हें बहुत सताया गया, और अपने बलिदानके बाद वे पूजी जाने लगीं। बेचारी जनाबाअीको कौन पूछता या पूजता?

यों देखा जाय, तो जनाबाअी महाराष्ट्रकी मीराबाअी है। अुसने नम्रताके साथ नामदेवके कुटुम्बियोंकी सेवा की और विवाहके अभावमें जो प्रेम-जीवन अतृप्त था, अुसको हृदयसे विठोबाके साथ रममाण होकर समृद्ध बनाया। विठोबा स्वयं आकर अुसके बाल सँवारते थे, दलने-पीसनेके काममें अुसकी मदद करते थे, और जाड़ेके दिनोंमें अुसकी गुदड़ी ओढ़कर सो जाते थे।

मीराबाअीके काव्यमें जो प्रेमोत्कट भक्ति है, बिलकुल वही भक्ति भोली-भाली भाषामें जनाबाअीके अभंगोंमें दिखाअी देती है। यदि भक्तिकाव्यमें स्त्री-सहज भाषा देखनी हो, तो वह जनाबाअीके अभंगोंमें देखी जा सकती है। जनाबाअीने शरीर धारणके लिअे अन्त तक शरीरश्रम किया। सचमुच जनी जनताकी प्रतिनिधि थी, और अुसने जनता-जनार्दनको अपना जीवन समर्पित करके कृतार्थता प्राप्त की थी।

लड़कियोंके स्कूलमें जनाबाअीका दिन मनाकर अुस दिन अुनके अभंग गाते हुअे दलने-पीसनेका कार्यक्रम रखा जाय।

१९-१२-'३९

नरसिंह मेहता

गुजरातके अिस आदिकविकी जयन्ती अुत्कट भक्तके रूपमें मनाअी जानी चाहिये। यदि रास-दर्शन, 'मामेरु', हुण्डी, हारमाला आदि चमत्कारोंसे कोअी आध्यात्मिक सार निकालने बैठे, तो वह असंभव न होगा। लोक-हृदयको ये कहानियाँ जैसी हैं वैसी ही, दृश्य अर्थमें, रोचक मालूम पड़ी हैं। लेकिन मेहताजीकी जयन्ती मनाते समय हम लोग अिस झंझटमें न पड़ें तो अच्छा हो। अुनकी दृढ़ भक्ति, सादा जीवन, हरिजन-प्रेम और ग़रीबीमें संतोष — ये ख़ास-ख़ास बातें अुनकी जयन्तीके दिन विद्यार्थियोंके दिल पर अंकित करायी जायँ।

अिस दिन नरसिंह मेहताकी अुत्तमोत्तम 'प्रभातियाँ' गानेका रिवाज रखा जाय। दूसरा भी अेकाध आख्यान विवेचनके साथ गाया जाय। अिस दिन सवर्ण हिन्दुओंको चाहिये कि वे हरिजन-निवासमें जाकर हरिजनोंके साथ भजन-भोजन वग़ैराके कार्यक्रम रखें।

मीरा

हिन्दुस्तानके सन्त कवियोंमें आध्यात्म-स्वातंत्र्यवादी मीराका स्थान कुछ निराला ही है। सामान्य विवाह-संबंध धर्म, अर्थ और कामके लिअे ही है। लेकिन सच्चा विवाह तो अन्तरात्माके साथ ही हो सकता है। मीराने हिन्दुस्तानको यह चीज़ दी है। यदि बुद्धका राज-त्याग कीर्त्तन करने योग्य है, तो मीराका अमीरी छोड़ना भी अुतना ही कीर्त्य है। विद्यार्थियोंके मन पर मीराकी भक्ति, निर्भयता और संसार-विमुखता अंकित करनेके लिअे अुसके वैसे भजन चुन कर अिस दिन गाये जायँ। 'विपदो नैव विपदः' श्लोकमें मीराकी मनोवृत्ति प्रकट होती है।

अमर शहीदोंमें भी मीराका नाम अमर है।

सूचना

अिसी तरह दूसरे सन्त-कवियों, सेवावीरों और राष्ट्रपुरुषोंकी जयन्तियाँ मनायी जा सकती हैं। लेकिन यह ध्यान रखना चाहिये कि सारा साल त्योहारमय न बन जाय। हमने सारे समयका विचार करके यह नीति निश्चत की है कि पचाससे ज्यादा दिन त्योहारोंमें खर्च न हों। अगर नये त्योहार बढ़ते हैं, तो पुराने कम होने चाहियें। लेकिन अधिकतर त्योहार स्थायी होने चाहियें; वरना परंपरा नामकी कोअी वस्तु बन ही न पायेगी। और संस्कृति क्षीण होगी।

जीवित अितिहास

हिन्दुस्तानका अितिहास हिन्दुस्तानियों द्वारा नहीं लिखा गया है। रामायण और महाभारत आजके अर्थमें अितिहास नहीं कहे जा सकते। आधुनिक दृष्टिसे तो वे अितिहास हैं भी नहीं। रामायण, महाभारत और पुराणोंमें भी कुछ अितिहास तो है, लेकिन वह सब धर्मका निश्चय करनेके लिअे दृष्टान्तरूप है। महावंश और दीपवंश अितिहास माने जा सकते हैं, पर वे लंकाके हैं; और अुनमें अितिहासकी चर्चा बहुत कम हुअी है। काश्मीरकी राजतरंगिणीके विषयमें भी यही कहना पड़ता है। तो फिर हमारा अितिहास क्यों नहीं है? जीवनके किसी भी अंगको लीजिये, हम लोगोंने अुसमें असाधारण प्रवीणता प्राप्त की है; फिर भी हमारे यहाँ अितिहास क्यों नहीं है?

अितिहासका अर्थ है मनुष्य-जातिके सम्मुख अुपस्थित हुअे प्रश्नोंका अुल्लेखन। अिनमें से कुछ प्रश्नोंका निराकरण हुआ है और कुछ अभीतक अनिर्णीत हैं। जिन प्रश्नोंका निश्चय हो सका है, वे अब प्रश्न नहीं रहे; अुनका निराकरण हो चुका; अब वे समाजमें — सामाजिक जीवनमें — संस्काररूपसे प्रविष्ट हो गये हैं। जिस प्रकार पचे हुअे अन्नका रक्त बन जाता है, अुसी प्रकार अिन प्रश्नोंने राष्ट्रीय

मान्यता या सामाजिक संस्कारका रूप प्राप्त कर लिया है। खाना हज़म हो जाने पर मनुष्य अिस बातका विचार नहीं करता कि कल अुसने क्या खाया था। ठीक अिसी तरह जिन प्रश्नोंका अुत्तर मिल चुका है, अुनके विषयमें भी वह अुदासीन रहता है।

अब रहा सवाल अनिर्णीत प्रश्नोंका। हम लोग परमार्थी (Serious) हैं। हम अनिर्णीत प्रश्नोंको कागज पर लिखकर छोड़ देना नहीं चाहते। अनिर्णीत प्रश्नोंमें मतभेद होते हैं। जितने मतभेद होते हैं, अुतने ही सम्प्रदाय हम खड़े कर देते हैं। वेदोंके अुच्चारणमें मतभेद हुआ, तो हमने भिन्न-भिन्न शाखायें खड़ी कर दीं! ज्योतिषमें मतभेद हुआ, तो वहाँ भी हमने स्मार्त और भागवत अेकादशियाँ अलग-अलग मानीं। दर्शनशास्त्रमें तत्त्वभेद मालूम हुआ, तो हमने द्वैतवादी तथा अद्वैतवादी संप्रदायोंका निर्माण किया। आहार या व्यवसायमें भेद हुआ, तो हमने भिन्न-भिन्न जातियाँ बना लीं। जहाँ सामाजिक रीति-रिवाजोंमें मतभेद हुआ, वहाँ हमने झट अुपजातियाँ खड़ी कर दीं। अगर ग़लतीसे कोअी आदमी किसी रिवाजको तोड़ दे या बड़े-से-बड़ा पाप करे, तो अुसके लिअे भी प्रायश्चित्त है; सिर्फ़ अुसके लिअे नयी जाति खड़ी नहीं की जाती। महान् अैतिहासिक और राष्ट्रीय महत्त्वकी घटनाओंके अितिहासको हम लोग त्योहारों द्वारा जाग्रत रखते हैं। अिसी तरह हरअेक सामाजिक आन्दोलनके अितिहासको, अुस आन्दोलनके केन्द्रको, तीर्थका रूप देकर हम लोगोंने जीवित रखा है। अिस तरह अितिहास लिखनेकी अपेक्षा अितिहासको जीवित रखना, अर्थात् जीवनमें अुसे चरितार्थ कर दिखाना, हमारे समाजकी ख़ूबी है। चिथड़ोंके बने काग़ज़ पर अितिहास लिखकर अुसे सुरक्षित रखना अच्छा है या जीवनमें ही अितिहासका संग्रह करके रखना अच्छा है? क्या यह कहना मुश्किल है कि अिन दोनोंमें से कौनसा मार्ग अधिक सुधरा हुआ है? जब तक हमारी परंपरा टूटी नहीं थी, तब तक हमारा अितिहास हमारे जीवनमें जीवित था! आज भी यदि लोगोंके रीति-रिवाजों, अुनकी धारणाओं,

जातीय संगठनों और त्योहारोंकी खोज की जाय, तो बहुतसा अितिहास मिल सकता है। हाँ, यह ठीक है कि वह अधिकांशमें राजकीय या राजनीतिक नहीं, बल्कि सामाजिक और राष्ट्रीय होगा। क्या अितिहासके संशोधक अिस दिशामें परिश्रम न करेंगे ?

आवश्यक वाचन

अिस पुस्तकमें त्योहारों पर जो छोटी-छोटी टिप्पणियाँ दी गअी हैं, वे कोअी त्योहारका निबंधन (Code) तैयार करनेके लिअे नहीं, बल्कि त्योहारोंकी तहमें रहे परम्परागत रहस्य और अुनमें जोड़े जा सकनेवाले तत्त्वोंकी तरफ़ नयी पीढ़ीका ध्यान खींचनेके लिअे हैं। अिसके सिलसिलेमें पढ़ने लायक़ बहुत-सा साहित्य है भी, और नहीं भी है। सिर्फ़ त्योहारोंका महत्व समझानेवाली किताबें हिन्दीमें बहुत कम होंगी। मराठीमें लिखी गअी 'आर्योंके त्योहारोंका अितिहास' नामकी अेक ही किताब अिस क्षेत्रको व्याप्त करती है। अिसके लेखकने नयी जानकारी जोड़कर अिसका अेक नया संस्करण भी प्रकाशित किया है। त्योहारोंकी स्वतंत्ररूपसे छान-बीन करके और हिन्दीमें अिस विषय पर जो अेक-दो किताबें लिखी गयी हैं, अुनका अुपयोग करके अिसका नया संस्करण तैयार करनेकी आवश्यकता है। 'Hindu Fasts and Feasts' जैसी किताबें भी कुछ नयी दृष्टि दे सकती हैं। लोक-जीवन और समाज-विज्ञानका अध्ययन करनेवाले कुछ गोरे लोग अलग-अलग त्योहारों पर कुछ तो समभावपूर्वक और कुछ मनोविनोदके लिअे लिखते हैं। अुसमें से भी तुलना करने लायक़ कुछ अंश मिल जाते हैं। बंगाली लेखकोंने भी अंग्रेज़ी और बँगलामें बहुत-सी जानकारी अिकट्ठी की है। जामनगरके श्री मणिशंकर शास्त्रीकी गुजराती किताब बिलकुल पुराने ढंगकी है, लेकिन शोध-खोज करनेवाला अुसमें से भी कुछ-न-कुछ जानकारी अवश्य प्राप्त कर सकता है। अिसी ढंगकी 'आर्योत्सवप्रकाश'

नामकी अेक मराठी किताब है। लोकमान्य तिलककी 'ओरायन' (मृग-शीर्ष) नामकी किताब पर से सूझी हुअी और होलीके त्योहार पर लिखी गअी 'शिमगा' नामकी अेक मराठी किताब है। अुसके बारेमें यह कहा जाता है कि संशोधनकी दृष्टिसे वह मूल्यवान् है। सूरतमें भाअी क़ाज़ीने त्योहारों पर अेक व्याख्यान दिया था, वह भी पढ़ जाने लायक है। हमारे त्योहारोंके साथ देशकी आबहवाका, ऋतु-चक्रका, व्यापारियों और प्रवासियोंकी आवश्यकताओंका और किसानों आदिके जीवनका संबंध है। विदेशी लोगोंमें हिन्दू-जीवनका बहुत गहरा अध्ययन भगिनी निवेदिताने किया है। अुनके कुछ लेख भी मूल्यवान् सूचनायें दे सकेंगे।

हमारा प्राचीन राष्ट्रीय जीवन प्रधानतया रामायण, महाभारत और भागवतमें प्रतिबिम्बित हुआ है। देवीके अुपासकोंकी विशेषता देवी-भागवतसे प्राप्त हो सकती है। अिन महाग्रंथोंका परिचय सभीको होना चाहिये। श्री किशोरलालभाअीकी अवतारमालाकी 'राम और कृष्ण', 'बुद्ध और महावीर', तथा 'सहजानन्द' नामकी किताबें बालकोंके कामकी हैं। 'सीताहरण' भी बालकोंके लिअे अच्छी किताब है। कृष्णचरित्रके लिअे श्री चिन्तामणराव वैद्यकी 'कृष्ण-चरित्र' तथा बंकिमबाबूकी 'कृष्ण-चरित्र' नामक दोनों पुस्तकें विशेष अुपयोगी हैं।

अिसी संबंधमें जैन-साहित्य विशेषरूपसे देखने लायक है। 'त्रिष-ष्टिशलाकापुरुष' में तीर्थंकरोंकी जानकारी तो मिलेगी ही। जैसे-जैसे जैन आगमोंके सुलभ सारानुवाद आजके पाठकोंके सामने आते जायँगे, वैसे वैसे जैन-जीवन-पद्धति अधिकाधिक समझमें आती जायगी। जब यह बात समझमें आ जायगी कि जैन सिर्फ़ अेक सम्प्रदाय नहीं, बल्कि अेक अैसी जीवनदृष्टि है, जो विश्वव्यापी होनेकी योग्यता रखती है, तो अुसका असर न्यूनाधिक मात्रामें सभी त्योहारों पर पड़ेगा ही।

हमारे यहाँ थोड़ा-बहुत बौद्धसाहित्य तैयार हुआ है। 'बुद्ध-लीला,' 'धम्मपद', 'सुत्तनिपात', 'बौद्ध संघका परिचय', 'समाधि

मार्ग', 'बुद्ध, धर्म और पंथ', 'बुद्ध-चरित'— आदि पुस्तकोंसे बौद्ध धर्म और अुसके 'अवेर' के महान् संदेशका वायुमण्डल आसानीसे ध्यानमें आ जायगा। श्री धर्मानन्दजीने शान्तिदेवाचार्यके 'बोधिचर्यावतार' से अच्छे-अच्छे श्लोक चुनकर हमें दिये हैं। वे पारायण करने योग्य हैं। दुनियाकी शिक्षित जनताको बौद्धधर्म और ब्राह्मधर्म अधिकसे अधिक मात्रामें आकर्षित करते हैं, क्योंकि अुनमें धारणाओं और वादोंका साम्राज्य कम-से-कम है। अुनमें सदाचारकी साधना ही मुख्य है।

सदाचारकी साधना पर अुग्रताके साथ जोर देनेवाला अेक बड़ा धर्म अिस्लाम है। फिर भी अुसमें खास तौर पर यह दृष्टि रखी गयी है कि मनुष्य-स्वभाव पर अधिक नियंत्रण न रखा जाय। अिस्लाममें त्योहार ज्यादा नहीं हैं। दो अीदें अिब्राहीमके धर्मसे ली गयी हैं। मुहर्रम अैतिहासिक त्योहार माना जायगा। मुहम्मद पैग़म्बर साहबकी वफ़ात (मृत्यु) का दिन कहीं-कहीं मनाया जाता है। यह अेक अलग सवाल है कि अिस्लामी संस्कृतिमें विलासिताके लिअे कितना अवकाश है। अिस्लामी धर्म तो संयम-धर्मी (Puritan) ही है। क़ुरान शरीफ़, मुहम्मद साहबकी जीवनी और हदीसके पढ़नेसे अुस संस्कृतिका ख़याल आ सकेगा। अमीरअलीकी 'Spirit of Islam' और आर्नोल्डकी 'Preaching of Islam', ये दो किताबें शिक्षकोंको पढ़ लेनी चाहियें। 'कसस-अल्-अंबिया' का अनुवाद कोअी कर दे, तो बड़ी सहूलियत हो जाय। अुससे हमें अिस्लाममें प्रतिष्ठा पाये हुअे पैग़म्बरोंके जीवन-चरित्र मिलेंगे। 'मुस्लिम महात्माओ' नामकी किताब गुजरातमें बहुत मशहूर है।

अीसाअी धर्मके लिअे 'नया अहदनामा' और 'सेण्ट जॉनका भागवत', डीन फेरारकी 'अीसाकी जीवनी', केम्पीसकी 'अिमिटेशन ऑफ क्राअिस्ट' और बनियनकी 'पिल्ग्रिम्स प्रोग्रेस' नामकी किताबें अवश्य पढ़ लेनी चाहियें। सेण्ट पॉल, अिग्नेशियस लॉयला, मार्टिन ल्यूथर आदिके बारेमें हिन्दीमें लिखनेकी आवश्यकता है। टॉलस्टॉयने बावन

परिच्छेदोंमें बच्चोंके लिअे ओीसाकी जीवनी लिखी है, वह भी अच्छी चीज़ है। रोमन कैथोलिक दृष्टिसे लिखी पापीनी-कृत अीसाकी जीवनी खास पढ़ने योग्य है।

शिक्षकोंको ब्रह्मसमाज, आर्यसमाज, प्रार्थनासमाज, रामकृष्ण मिशन जैसे व्यापक और आधुनिक धर्म-संस्करणके प्रयोगोंके बारेमें अच्छी जानकारी होनी चाहिये। क्योंकि हमें अिसीसे भविष्यकी दिशा मिलती रही है। थियोसॉफ़ीने भी अनेक धर्मोंके अध्ययनके लिअे अुपयुक्त साहित्य प्रकाशित किया है। आचार्य श्री आनन्दशंकर ध्रुवने गुजरातीमें जो किताबें लिखी हैं, वे प्रत्येक शिक्षकको पढ़नी चाहियें; खासकर अुनकी 'धर्म-शिक्षण' नामकी पुस्तकमें सब धर्मोंके बारेमें थोड़ी-थोड़ी जानकारी दी गयी है।

सिक्ख धर्मके कार्य बहुत क़ीमती हैं। अुसके बारेमें हमें अधिक जानना चाहिये। श्री मगनभाओी देसाओीकी 'सुखमनी' तथा 'जपजी' नामक गुजराती किताबोंकी भूमिकाओंसे अिसमें काफ़ी मदद मिलेगी।

हिन्दुस्तानके प्रमुख सन्त-कवियोंका अध्ययन प्रत्येक संस्थामें हमेशा होता रहना चाहिये। त्योहारोंकी योजना बनानेका काम अेक तरहसे हिन्दुस्तानकी विविधरंगी संपूर्ण संस्कृतिका प्रतिबिंब पैदा करनेका काम है; और सो भी साहित्यके द्वारा नहीं, बल्कि जीवनके अुत्सवों द्वारा। यह महान् काम प्रस्तुत कार्यक्षेत्रके बाहरका है, और अिस कामके अेकदम हो जानेकी अपेक्षा अिसका धीरे धीरे बढ़ना ही अच्छा है।

व्यापक दृष्टिसे अध्ययन करनेके लिअे आवश्यक वाचनकी यह सूची यथेच्छ बढ़ाओी जा सकती है। फ्रेज़रकी 'Golden Bough' नामकी किताब नास्तिक दृष्टिसे लिखी गयी है, फिर भी वह अत्यन्त पठनीय है। मूल ग्रंथके १०-१२ हिस्से पढ़नेकी ज़रूरत नहीं। स्वयं ग्रंथकारने सारांशका अेक हिस्सा तैयार किया है, वह पढ़ लेना काफ़ी है।
